# वाङ्मयसूची प्रलेखन एवं सूचना विज्ञान

द्वारका प्रसाद शास्त्री

# वाङ्मयसूची, प्रलेखन
## एवं
# सूचना विज्ञान

( Bibliography, Documentation
and
Information Science )

द्वारका प्रसाद शास्त्री
पूर्व संग्रहाध्यक्ष
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

साहित्य भवन प्रा० लि०
जीरोरोड, इलाहाबाद 211003

Bibliography, Documentation and Information Science

By

DWARKA PRASAD SHASTRI



प्रथम संस्करण : १९९५  मूल्य : पुस्तकालय संस्करण : ७५-००
विद्यार्थी संस्करण : ५५-००

---

साहित्य भवन प्रा० लि०, ९३, जीरो रोड, इलाहाबाद द्वारा प्रकाशित तथा
एस० ए० प्रिन्टर्स, दरियाबाद, इलाहाबाद द्वारा मुद्रित।

# भूमिका

आजकल किसी भी शिक्षित व्यक्ति को पुस्तकालय विज्ञान का परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। इस विज्ञान के अन्तर्गत अध्ययन और अनुसन्धान में लगे हुए लोगों का समय और श्रम बचाने के लिए अनेक तकनीकी विधियों का आविष्कार किया गया है। उनमें से वर्गीकरण आदि प्रमुख विधियाँ हैं। इनके अतिरिक्त पुस्तकालय में सन्दर्भ सेवा प्रदान करके अध्येताओं का समय बचाने की भी व्यवस्था है किन्तु अनुसन्धान और शोध कार्य में लगे विद्वानों, योजना-निर्माताओं, प्रौद्योगिकी और अभियान्त्रिकी आदि के क्षेत्र में लिप्त व्यक्तियों के लिए केवल ग्रन्थ सम्बन्धी सहायता ही पर्याप्त नहीं होती। वे लोग यह जानना चाहते हैं कि उनके विषयांश (टापिक) पर विश्व में कितना कार्य हो चुका है। उससे सम्बन्धित सामग्री कहाँ और कैसे प्राप्त हो सकेगी। किन-किन पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओं से कहाँ-कहाँ उनके अभीष्ट विषय की सामग्री मिलेगी जिससे उनको मार्गदर्शन मिल जाय और आगे शोध कार्य करने का मार्ग प्रशस्त हो सके।

इस आवश्यकता का अनुभव सबसे पहले वैज्ञानिकों ने किया और उन्होंने पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का विवरण ले कर उनको वर्गीकृत करने और सूचीबद्ध करने की बात सोची। इस ओर पुस्तकालय वैज्ञानिकों ने भी ध्यान दिया और उन्होंने जिन तीन टेकनिकल विषयों को इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक समझा, उनका नाम बिब्लियोग्राफी, डाकुमेंटेशन और इन्फार्मेशन साइंस रखा गया।

हिन्दी भाषा में इन तीनों का नाम वाङ्मयसूची, प्रलेखन और सूचना विज्ञान रखा गया है। इस पुस्तक में इन्हीं तीनों टेकनिकल विधियों का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

वाङ्मयसूची मुख्यतः ग्रन्थों की सूची है। इसकी तीन शाखायें हैं। ऐतिहासिक वाङ्मयसूची, पाठालोचनात्मक वाङ्मयसूची और व्यवस्थित वाङ्मयसूची। इनमें से व्यवस्थित वाङ्मयसूची के अन्तर्गत लेखक वाङ्मयसूची, विषय वाङ्मयसूची, चयनीकृत वाङ्मयसूची, आदिमुद्रित ग्रन्थों की वाङ्मयसूची, राष्ट्रीय वाङ्मयसूची, सार्वभौम वाङ्मयसूची आदि का विस्तृत विवरण इस पुस्तक में दिया गया है। साथ ही इन सभी प्रकार की वाङ्मयसूचियों के बनाने की विधि भी बताई गई है।

प्रलेखन पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों आदि की सूची है। इस पुस्तक के द्वितीय भाग में प्रलेखन (डाकुमेंटेशन) का परिचय दिया गया है। इसमें प्रलेखन की आवश्यकता, परिभाषा, सूचना प्रतिस्थापन के विविध माध्यमों का वर्णन किया गया है। प्रलेखन के उद्भव और विकास का भी संक्षिप्त इतिहास दिया गया है। प्रलेखन कार्य में कार्यरत राष्ट्रीय और

अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्रों का भी परिचय दिया गया है। इसके साथ ही प्रलेखन कार्य की विधि भी बताई गई है।

एक समय था जब भारत में वाङ्मयसूची और प्रलेखन से लोग परिचित नहीं थे, किन्तु अब भारत में राष्ट्रीय वाङ्मयसूची का प्रकाशन हो रहा है। महात्मा गाँधी, जवाहरलाल नेहरू, विनोबा और भूदान, इण्डियन नेशनल कांग्रेस पर डा० जगदीशशरण शर्मा द्वारा वाङ्मयसूचियाँ प्रकाशित हो गई हैं। इनके अतिरिक्त भी कई वाङ्मयसूचियाँ प्रकाशित हुई हैं। इसी प्रकार डा० रंगनाथन जी के अथक प्रयास से राष्ट्रीय स्तर पर प्रलेखन केन्द्र की स्थापना हो गई है। इन्सडॉक, इन्स्सडाक, आइस्लिक तथा अन्य केन्द्रों द्वारा प्रलेखन की दिशा में अच्छा कार्य हो रहा है।

सूचना विज्ञान (Information Science) एक नवीनतम विज्ञान है। इसको अंग्रेजी में 'इन्फार्मेशन साइंस' कहते हैं।

इस विज्ञान के अन्तर्गत स्वतन्त्र या संस्थाओं से संलग्न सूचना केन्द्र स्थापित करके स्व-सम्बन्धित विषय के विषयांशों पर पुस्तकों, हस्तलिखित पोथियों, पुस्तिकाओं, विशिष्ट पत्रिकाओं, विचार गोष्ठियों, सम्मेलन की कार्यवाहियों आदि से विशेष अध्ययन और अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिए नवीनतम ताजी सूचनायें श्रम विधि तथा यान्त्रिक विधियों के द्वारा तथा माँग की प्रत्याशा में भी संग्रह करके उनको व्यवस्थित रख कर पूर्ति की व्यवस्था की जाती है।

पुस्तकालय विज्ञान के साथ ही सूचना विज्ञान को भी अब विश्वविद्यालयों में पढ़ाया जाता है। प्रशिक्षणार्थी तथा जिज्ञासु लोग इस विषय का ज्ञान भी प्राप्त करना चाहते हैं। अतः इस नये विषय को इस पुस्तक के तृतीय खण्ड में स्थान देकर इसका परिचय दिया गया है।

हिन्दी में यह अपने विषय की प्रथम पुस्तक है। इसके लिखने में अंग्रेजी भाषा में लिखित अनेक ग्रन्थों से सहायता ली गई है। मैं उन सभी ग्रन्थकारों और प्रकाशकों के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

अन्त में मैं साहित्य भवन प्रा० लि०, प्रयाग के संचालक महोदय के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने पुस्तकालय विज्ञान विषय में विशेष अभिरुचि रखते हुए इस विषय की पूर्व प्रकाशित पुस्तकों की शृङ्खला में यह एक नई कड़ी जोड़ दी है। इस पुस्तक की प्रेस कापी मेरे पुत्र श्री महेन्द्रनाथ मिश्र ने तैयार की है और इसके प्रूफ देखने में मेरे मित्र श्री भोलानाथ जी मालवीय ने हार्दिक सहयोग प्रदान किया है। अतः मैं इनको तदर्थ धन्यवाद देता हूँ। फिर भी पुस्तक में यत्र-तत्र मुद्रण सम्बन्धी त्रुटियाँ मिलें तो विद्वज्जन कृपया क्षमा करेंगे।

२६ जनवरी, १९९५ —द्वारका प्रसाद शास्त्री

# विषय–सूची

## प्रथम भाग : वाङ्मय सूची



## द्वितीय भाग : प्रलेखन

## तृतीय भाग : सूचना विज्ञान



□ □

# प्रथम भाग

# वाङ्मयसूची

# ( Bibliography )

## वाङ्मयसूची (Bibliography)

- —सामान्य परिचय
- —वाङ्मयसूचियों के प्रकार
- —ऐतिहासिक वाङ्मयसूची
- —आलोचनात्मक वाङ्मयसूची
- —परिगणनात्मक या व्यवस्थित वाङ्मयसूची
- —वाङ्मयात्मक विवरण
- —वाङ्मयसूची का निर्माण, सम्पादन और व्यवस्थापन
- —वाङ्मयसूची का मूल्यांकन

## अध्याय १

# सामान्य परिचय

### पृष्ठभूमि

आधुनिक काल में ज्ञान-प्राप्ति के लिए सब को समान अधिकार प्राप्त है। इसके लिए पुस्तकालय प्रमुख साधन हैं। वे अनेक रूप धारण कर के पाठकों एवं शोधकर्ताओं की सहायता कर रहे हैं। पुस्तकालय-विज्ञान ने ये सिद्धान्त स्थापित किये हैं कि पुस्तकालयों में संग्रहीत सभी पुस्तकें तथा अन्य अध्ययन-सामग्री उपयोग के लिए हैं। वे सब के लिए हैं। प्रत्येक उपयोगकर्त्ता को उसकी रुचि के अनुसार अभीष्ट पुस्तकें मिलनी चाहिये। इसके अतिरिक्त सब से महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त यह है कि पुस्तकालय के उपयोगकर्त्ताओं के समय की बचत होनी चाहिये। पुस्तकालय में उनका बहुमूल्य समय नष्ट न होना चाहिये। इसके लिए पुस्तकालय विज्ञान ने पुस्तकालयों के संगठन, संचालन, अध्ययन-सामग्री के चयन, उनके वर्गीकरण और सूचीकरण के लिए अनेक टेकनिकल विधियों का आविष्कार कर के पुस्तकालय-सेवा को सक्षम और प्रभावशाली बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इस विज्ञान में उपयोगकर्त्ताओं का समय बचाने के उद्देश्य से सामान्य पाठकों से ले कर शोधकर्त्ताओं तक को विभिन्न प्रकार के संदर्भ ग्रन्थों से सहानुभूतिपूर्वक सहायता और मार्ग-दर्शन के लिए 'संदर्भ सेवा' नामक एक मानवीय विधि की भी खोज की है जो कि पुस्तकालयों में अपनायी गयी है। उसके द्वारा पुस्तकालयों को अद्भुत लोकप्रियता प्राप्त हुई है। इन सबके अतिरिक्त इस विज्ञान के अन्तर्गत एक अन्य महत्त्वपूर्ण विद्या का आविष्कार किया गया है जो कि सामान्य पाठकों, साहित्यकारों, योजना-निर्माताओं, राष्ट्र-सेवियों और ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में विशेष अध्ययन और अनुसंधान करने वाले व्यक्तियों के लिए परम सहायक और अनिवार्य रूप में उपयोगी है और यह है बिब्लियोग्रेफी (Bibliography)। इसको पुस्तकालय विज्ञान की एक महत्त्वपूर्ण शाखा के रूप में मान्यता प्राप्त है।

बहुत से शब्द ऐसे होते हैं, जो अपने शाब्दिक अर्थ के अनुसार प्रयोग में लाये जाते हैं और उनका व्यवहार निरन्तर उसी अर्थ में होता रहा है, जैसे वर्गीकरण और सूचीकरण, आदि। कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी विषय के लिए किसी शब्द का प्रयोग कर लिया जाता है किन्तु जब उस विषय का क्षेत्र अधिक व्यापक हो जाता है तो वह पहिले से प्रयोग में लाया गया शब्द पूर्ण अर्थ का बोधक नहीं रह जाता है। विद्वान् लोग उस शब्द के बदले किसी अधिक उपयुक्त शब्द की खोज करते हैं और सुझाव देते हैं। कभी-कभी वह शब्द मान्य हो जाता है और कभी-कभी विद्वान् द्वारा मान्य नहीं भी होता है। बिब्लियोग्रेफी (Bibliograhy) एक ऐसा ही शब्द है।

बिब्लियोग्रेफी शब्द ग्रीक भाषा के बिबलोन (Biblion) तथा ग्रेफिन (Graphein) इन दो शब्दों से मिल कर बना है। बिबलोन का अर्थ है पुस्तक और ग्रेफिन का अर्थ है लिखना (to write)। अतः बिब्लियोग्रेफी का अर्थ हुआ पुस्तक-लेखन (Writing of Books)। जब ग्रन्थ हाथ से लिखे जाते थे तो उस हस्तलिखित ग्रन्थ-काल (Manuscript Period) में कुछ लोग ग्रन्थकारों द्वारा लिखित ग्रन्थों की प्रतिलिपि (Copy) करने का काम किया करते थे। ऐसे लोगों को बिब्लियोग्राफर कहा जाता था। १६५६ ई० में प्रकाशित 'दि एकेडेमिक ऑफ इलोक्वेंस' (The Academic of Eloquence) नामक पुस्तक में बिब्लियोग्राफर को पुस्तकों का लेखक (A writer of books) कहा गया है किन्तु १६७८ ई० में प्रकाशित 'दि न्यू वर्ल्ड आफ इंग्लिश वर्ड्स' (The New World of English-Words) पुस्तक में बिब्लियोग्राफर को प्रतिलिपिकार (Copyist) कहा गया है। १७६१ ई० में प्रकाशित फेनिंग (Fenning) की इंग्लिश डिक्शनरी में पुस्तकों को लिखने या प्रतिलिपि करने वाले को बिब्लियोग्राफर कहा गया। आगे चल कर यह प्रश्न उठा कि बिब्लियोग्राफर तो ग्रन्थकार नहीं हो सकता क्योंकि ग्रन्थकार तो वह है जो ग्रन्थ की रचना करता है। बिब्लियोग्राफर तो ग्रन्थकारों द्वारा लिखित ग्रन्थों की सूची, आदि बनाता है या उनकी प्रतिलिपि करता है इसलिए बिब्लियोग्रेफी शब्द का अर्थ भ्रामक है। उस समय अर्थात् १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में जब बिब्लियोग्रेफी का क्षेत्र विस्तृत होने लगा तब लुईस जैकब डे सेन्ट चार्ल्स (Louis Jacob de Saint Charles) ने (१६४५-५० ई० में) अपनी पुस्तक 'बिब्लियोग्रेफिया परिसियाना' (Bibliographia Parisiana) में बिब्लियोग्रेफी की परिभाषा ग्रन्थ लेखन (Writing of books) के स्थान पर ग्रन्थ विषयक लेखन (Writing about books) कर दी। यह परिभाषा उस समय मान्य हुई किन्तु कालान्तर में इसको भी अपर्याप्त समझा गया। तत्कालीन फ्रांस के बिब्लियो-ग्राफर पेगलेट (Peiglet) ने १८०२ ई० में बिब्लियोग्राफर की परिभाषा इस प्रकार की। 'वह व्यक्ति जो साहित्य के इतिहास का, पुस्तकों के ज्ञान का, विशेष अध्ययन किये हो और मुद्रण की कला से सम्बन्धित सब प्रक्रियाओं का जानकार हो।' प्रसिद्ध जर्मन बिब्लियोग्राफर एबर्ट (Ebert) ने पहिले तो बिब्लियोग्रेफी की परिभाषा इस प्रकार की—'वह विज्ञान जो कि साहित्यिक उत्पादन के साथ सम्बन्ध रखता है।' किन्तु आगे चल कर उन्होंने बिब्लियोग्रेफी को ग्रन्थ-विज्ञान (The Science of books) के रूप में परिभाषित किया। फिर भी बिब्लियोग्रेफी की परिभाषा के सम्बन्ध में मतभेद बना ही रहा। कुछ लोगों ने उसके स्थान पर कुछ नये शब्द सुझाये, जैसे, Book-arts, Booklore, Bibliology, Bibliognosy, Lexicon, Thesaurus, Repertorium, Calendar—आदि किन्तु इनमें से किसी शब्द को स्थायी मान्यता नहीं प्राप्त हुई और बिब्लियोग्रेफी शब्द का प्रयोग पूर्ण अर्थबोधक न होते हुये भी पूर्ववत् होता रहा और अब भी हो रहा है।

## परिभाषा

बिब्लियोग्रैफी की परिभाषा १९वीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर अब तक विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित रूप में की है—

'साहित्य की सूचियों का अध्ययन; साहित्य सूचियाँ स्वयं सामान्यतया वाङ्मयसूची कहलाती हैं। उसी सूची बनाने को वाङ्मय सूचीकरण कहते हैं।'[१]

जार्ज स्नाइडर का यह भी मत है कि 'बिब्लियोग्रैफी महत्तर या न्यूनतर स्तर पर सभी विज्ञानों से सम्बद्ध है।'[२]

'बिब्लियोग्रैफी किसी विषय के प्रारम्भिक अध्ययन के लिए सामग्री का सूचीकरण और वर्णन है।'[3] —जे० डी० कावले

'यह साहित्यिक अन्वेषण (खोज) का व्याकरण (मूलाधार) है।'[४] —कोपिंगर

'बिब्लियोग्रैफी मानवीय ज्ञान के संचरण के लेख का क्रमबद्ध सूचीकरण है।'[५] —वी० डब्ल्यू० क्लेप

'पुस्तकों की सूची जो कि कुछ स्थायी सिद्धान्तों के अनुसार व्यवस्थित हो।'[६] —वेस्टरमैन

---

1. 'Study of lists of literature; the lists themselves are generally termed bibliography.'

   —Schneider, George. Theory and history of bibliography, Translated by Ralph Robert Shaw, New York, Columbia university press, 1934, p. 16.
2. Ibid, p. 20.
3. 'Cataloguing and description of material for a preliminary study of a subject.'

   —J. D. Cowley. Bibliographical description and Cataloguing, 1939, p. 7.
4. Bibliography : The grammar of literary investigation.

   —Copinger : Presidential address of 1892, V. 1, p. 34.
5. 'Bibliography is the systematic listing of records of human communication.' —V. W. Clapp
6. 'Bibligrophy is a list of books arranged according to some permanent principles.'

   —Besterman Theodore. A World bibliography of bibliographies and of bibliographical catalogues, calendars, abstracts, digests, indexes and the like. 2nd ed. rev. and greatly enlarged throughout. London, priv. Pub. by the author, 1947-49. 3 V.

'लिखित, मुद्रित या अन्य रूप में प्रसूत (उत्पादित) सभ्यता के रेकार्डों की सूची, जिसके अन्तर्गत पुस्तकें, धारावाहिक प्रकाशन, चित्र, मानचित्र, चलचित्र, रिकार्डिङ्ग, संग्रहालय की वस्तुएँ, हस्तलिखित ग्रन्थ और ज्ञान के संचरण का कोई अन्य माध्यम सम्मिलित किया जा सकता है, उसे बिब्लियोग्रेफी कहते हैं।'[1]

—लुइस सोर्स

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि बिब्लियोग्रेफी सामान्य अर्थ में पुस्तकों तथा अन्य अध्ययन-सामग्री की सूची सम्बन्धी अध्ययन है और यह कुछ सिद्धान्तों के आधार पर बनाई जाती है जिसका व्यवस्थापन-क्रम उपयोग-कर्त्ताओं के अनुकूल हो।

**हिन्दी पर्याय**

'बिब्लियोग्रेफी' पद (Term) के लिए हिन्दी में अनेक पर्याय आविष्कृत हुये हैं। उनमें से ग्रन्थपुटी, संदर्भिका, ग्रन्थवर्णना, ग्रन्थ विज्ञान, ग्रन्थ निर्माण विज्ञान, ग्रन्थ-सूची और वाङ्मयसूची प्रमुख हैं। बिब्लियोग्रेफी में ग्रन्थों का एक निश्चित और उपयोगी क्रम से सूचीबद्ध करने के कार्य को ध्यान में रख कर इसको 'ग्रन्थपुटी' नाम दिया गया है। बिब्लियोग्रेफी संदर्भ बतलाती है, इसलिए इसको 'संदर्भिका' कहा गया है। बिब्लियोग्रेफी में ग्रन्थों का वर्णन किया जाता है, इसलिए कुछ विद्वान् इसको 'ग्रन्थ वर्णना' कहते हैं। 'ग्रन्थ विज्ञान' और 'ग्रन्थ निर्माण विज्ञान' शब्द तो Science of books और Science of making books के हिन्दी अनुवाद मात्र हैं और अंग्रेजी के ये दोनों पद (Term) बिब्लियोग्रेफी के पश्चात्य विद्वानों द्वारा ही मान्य नहीं हुये हैं। ये अपने अर्थ में पूर्ण नहीं हैं। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी में लिखित बिब्लियोग्रेफी के ग्रन्थों में इन दोनों शब्दों का प्रयोग केवल बिब्लियोग्रेफी की व्याख्या करने के लिए किया गया है। इनके रहते हुये भी इस विधा की कला या विज्ञान को 'बिब्लियोग्रेफी' ही कहा गया है। 'ग्रन्थ सूची' शब्द भी अंग्रेजी के 'लिस्ट ऑफ बुक्स' का हिन्दी अनुवाद मात्र है। किसी भी विषय की बिब्लियोग्रेफी में केवल पुस्तकें ही नहीं रहतीं बल्कि उस विषय की सभी प्रकार की अन्य अध्ययन-सामग्री भी सम्मिलित की जाती है जैसा कि लुइस सोर्स की परिभाषा में बताया गया है। अतः अत्यन्त सामान्य 'ग्रन्थ सूची' शब्द को बिब्लियोग्रेफी का पर्याय नहीं माना जा सकता।

'बिब्लियोग्रेफी' शब्द का हिन्दी रूपान्तर 'वाङ्मयसूची' शब्द सबसे अधिक

---

1. Bibliography : a list of written, printed or otherwise produced records of eivilisation, which may include books, serials, pictures, maps, films, rocordings, museum objects, manuscripts and any other media of communication.

—Lauis Sourse.

उपयुक्त है। किसी विषय पर प्रकाशित, अप्रकाशित ग्रन्थों तथा अन्य सभी प्रकार की अध्ययन-सामग्री को उस विषय का 'वाङ्मय' कहते हैं, जैसे 'सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय', 'तुलसी वाङ्मय', 'भारतीय वाङ्मय' आदि। इसकी सूची को वाङ्मयसूची कहते हैं। बिब्लियोग्रैफी के हिन्दी पारिभाषिक शब्द के रूप में डा० रंगनाथन ने भी 'वाङ्मय-सूची' को ही सबसे उपयुक्त माना है। अतः इस पुस्तक में आगे बिब्लियोग्रैफी के लिए 'वाङ्मयसूची' शब्द का प्रयोग किया गया है।

**विज्ञान या कला**

वाङ्मयसूची विज्ञान है या कला, यह विवादग्रस्त है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि यह विज्ञान और कला दोनों है। इसके सिद्धान्त पक्ष का प्रतिपादन वैज्ञानिक होने के कारण यह विज्ञान है और उन सिद्धान्तों के अनुसार विविध प्रकार की वाङ्मयसूचियाँ बनाने का कार्य कला है।

इस सम्बन्ध में कुछ परिभाषायें निम्नलिखित हैं—

'यह एक विज्ञान है जो कि अन्य विज्ञानों, कलाओं और सार्वभौम अभि-रुचियों को सम्मिलित करता है; यदि यह उनका जनक नहीं है तो भी कम से कम सब कलाओं का भण्डार तो है।'[1] —जे० डी० ब्राउन

'वाङ्मयसूची विज्ञान और इसके व्यावहारिक अनुप्रयोग (Application) से बना हुआ एक मिश्रण है।'[2] —जार्ज स्नाइडर

'वाङ्मयसूची (१) एक विज्ञान (२) एक कला (३) कला का एक विलक्षण उत्पादन है।'[3] —इन्साइक्लोपीडिया अमेरिकाना

'वाङ्मयसूची एक कला है और एक विज्ञान भी है। ग्रन्थों का वाङ्मयात्मक विवरण देना उसका कलापक्ष है और उनको ग्रन्थ का स्वरूप देना तथा वर्तमान रूप में लाना उसका विज्ञान पक्ष है।'[4] —अरुण्डेल ईस्डेल

---

1. 'It is a science which comprehends all other sciences, arts and interests of universe : being, if not the parent, at least the store-house of all arts.

   —Brown, James Duff : A manual of practical bibliography, London, George Routlege and Sons, Ltd. p. 1.

2. 'Bibliography is a mixture consisting of science and its practical application.' —George, Schneider.

3. 'Bibliography is : (1) a science, (2) an art, (3) the most typical product of the art.'—Verner Clapp.

   —Encyclopaedia Americana, Vol. 3, p. 674-677.

4. 'Bibliography is an art and also science. The art is that of recording books; the science, necessary to it, is that of the

'वह विज्ञान जो कि साहित्यिक उत्पादन से सम्बन्धित है।'[1] —एबर्ट
'ग्रन्थ विज्ञान'[2] —एबर्ट
'लेखाबद्ध ज्ञान के संगठन का विज्ञान है।[3] —ह्यूम
'साहित्यिक प्रलेखों के प्रेषण (संचरण) का विज्ञान है।'[4] —सर वाल्टर ग्रेग

'ग्रन्थों के साहित्यिक प्रतिपाद्य विषय, भौतिक स्वरूप का शुद्धतापूर्वक वर्णन करने की कला या विज्ञान। इसको ग्रन्थ विज्ञान अथवा ग्रन्थ निर्माण विज्ञान के रूप में भी पारिभाषित किया जा सकता है।'[5] —वार्टलेट

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि वाङ्मयसूची न तो विशुद्ध विज्ञान है और न तो विशुद्ध कला है। यह विज्ञान और कला दोनों का सम्मिश्रण है। इसमें पुस्तकों के लेखाबद्ध करने का कार्य और स्रोत-सामग्रियों (Source Materials) के संकलन का कार्य कला है। वह विज्ञान है जो परख, खोज, आलोचनात्मक-परीक्षा करने के पश्चात् सामान्य सिद्धान्तों के रूप में प्राप्त होता है। ऐसे सिद्धान्त ग्रन्थों के विषयों और उनकी समस्याओं के मंथन करने के पश्चात् प्राप्त होते हैं। उन सिद्धान्तों के अनुसार विषय वाङ्मयसूचो और ग्रन्थनामों (Titles) का अनुवर्ग व्यवस्थापन विज्ञान के रूप में मान्य है। इसीलिए स्नाइडर का कथन है कि 'Its chief claim to recognition as a science is that it does not represent a rule of thump technique, but rather a well ordered field. यह स्मरण रखना आवश्यक है कि वाङ्मयसूची में कला और विज्ञान सह-सम्बन्ध नहीं है बल्कि अन्योन्याश्रित (Interdependent) हैं। किसी विषय पर वाङ्मयसूची तैयार करने में उस विषय की प्रत्येक पुस्तक से कुछ निश्चित सूचना या संग्रह किया जाता है। लेकिन सभी पुस्तकें अभीष्ट सूचना की पूर्ति नहीं करती हैं। अतः विभिन्न पहलुओं

---

making of books and of their extant record.'

—Esdaile Arundell : A student's manual of bibliography, revised by Roy Stokes, London, George Allen and Unwin Ltd. 1954.

1. 'Science that deals with literary production.' —Ebert.
2. 'The science of books.' —Ebert.
3. 'Scienee of the organisation of recorded knowledge.' —Hume.
4. Science of transmission of literary documents.'
   —Sir Walter Greg : Bibliography or retrospects, studies in retrospect, p. 115.
5. The art or science of correctly describing books (their literary contents; physical make up) 'It may also be defined as the science of books or the science of making books.'—Van Hoeson Henry Bartlett.

से उन पुस्तकों का वैज्ञानिक अध्ययन करना पड़ता है। आलोचनात्मक या विश्लेषणात्मक दृष्टिकोण से किया गया यह अध्ययन विज्ञान से सम्बन्ध रखता है। अतः संलेखों के लिए आवश्यक तथ्यों को निश्चित करने में कागज की परीक्षा, टाइप, छपाई और जिल्दबन्दी, तिथि विहीन पुस्तकों में तिथि या प्रकाशन वर्ष का निर्धारण ये सब पुस्तक की विश्लेषणात्मक जाँच से संभव होती है। इसीलिए स्नाइडर महोदय का मत है कि वाङ्मयसूची मुद्रण के इतिहास और साहित्य के इतिहास की ओर जितना ही अधिक बढ़ती है और पुस्तक के साहित्यिक मूल्यांकन करने, उसकी प्रामाणिकता की खोज करने, सही लेखक का पता लगाने आदि की ओर ध्यान देती है उतना ही वह विज्ञान के निकट पहुँचती है और इस दृष्टिकोण से वाङ्मयसूची विज्ञान है। ऐसा कहना उचित प्रतीत होता है। वाङ्मयसूची का प्रस्तुतीकरण कला है। पुस्तकों से संलेखों के लिए समस्त सूचनाओं को प्राप्त कर लेने और संकलित कर लेने के बाद उनका सन्दर्भ और अध्ययन के लिए तर्कपूर्ण और लाभकर व्यवस्थापन एक कला है। यह व्यवस्थापन कालक्रम, अनुवर्णक्रम, लेखकक्रम, विषयक्रम में से कोई भी हो किन्तु वह ऐसा होना चाहिये जो पाठकों के लिए पूर्णरूप से लाभदायक हो और बिना समय नष्ट किये हुये पाठक को अपने अभीष्ट ज्ञान क्षेत्र के विषय में जानकारी प्राप्त हो सके।

**पुस्तकालयसूची एवं वाङ्मयसूची में अन्तर**

दोनों में निम्नलिखित दृष्टिकोण से अन्तर परिलक्षित होता है—

(१) परिभाषा (Definition), (२) क्षेत्र (Scope), (३) उद्देश्य (Object), (४) उपयोगकर्त्ता (Users), (५) संहिता (Code), (६) भौतिक आकार (Physical Form), (७) सूचना (Information), (८) प्रविष्टियों की संख्या (Number of entries), (९) स्रोत (Source), (१०) व्यवस्थापन (Arrangement), (११) निर्गम (Issue)।

इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

(१) परिभाषा— किसी विशिष्ट विषय या विषयों पर हस्तलिखित ग्रन्थों या मुद्रित पुस्तकों की सूची को सामान्य रूप से वाङ्मयसूची कहते हैं और किसी विशिष्ट संग्रह की सूची को पुस्तकालयसूची कहते हैं।

(२) क्षेत्र—पुस्तकालय सूची के विषय में यह कहा जा सकता है कि यह किसी विशिष्ट पुस्तकालय में संग्रहीत अथवा कतिपय पुस्तकालयों में संग्रहीत प्रलेखों (Documents) तक सीमित रहती है जबकि वाङ्मयसूची की सामग्री किसी विशेष पुस्तकालय तक सीमित नहीं होती है। इस तरह इसका क्षेत्र व्यापक होता है, जब कि पुस्तकालय सूची का क्षेत्र संकुचित होता है। वाङ्मयसूची की व्यापकता का आभास इस प्रकार हो सकता है कि वाङ्मयसूची से तात्पर्य ऐसे ग्रन्थादि की सूचियों से है, जिसमें आदि से लेकर आज तक समस्त विषयों, समस्त भाषाओं, संसार में प्रकाशित समस्त प्रकार की पाठ्य सामग्री की सूची के रूप में समाहित किया गया

हो। सार्वभौम वाङ्मयसूची ऐसी ही होती है, इसके विपरीत ये समस्त पाठ्य-सामग्री किसी एक पुस्तकालय में प्राप्त होना सम्भव नहीं है। पुस्तकालय सूची की विशिष्टता यह है कि वह नवीन पाठ्य-सामग्री को अपने में समाहित कर सके और जीर्ण-शीर्ण एवं गतावधि (out of date) सामग्री को निकालना भी संभव हो सके। वाङ्यमयसूची में इसका प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि उसमें सभी प्रविष्टियाँ स्थायी होती हैं।

(३) **उद्देश्य**—पुस्तकालय सूची का उद्देश्य पाठकों के विभिन्न प्रकार के अभिगमों (Approaches) को सन्तुष्ट करना है, इसके विपरीत वाङ्मयसूची का उद्देश्य उसके विभिन्न प्रकार पर आधारित है, व्यावसायिक, राष्ट्रीय, विषय आदि वाङ्मयसूचियों का उद्देश्य भिन्न-भिन्न है।

(४) **उपयोगकर्त्ता**—पुस्तकालय सूची का उपयोग प्रायः सभी श्रेणी के पाठक (Reader) करते हैं, चाहे वे सामान्य हों या विशिष्ट। पर, वाङ्मयसूची का उपयोग केवल विशिष्ट श्रेणी के पाठक ही करते हैं। यथा, व्यावसायिक वाङ्मय-सूची का उपयोग प्रायः बुकसेलर आदि ही करते हैं।

(५) **संहिता**—आज पुस्तकालय सूची का निर्माण प्रायः किसी न किसी संहिता (Code) पर अवश्य आधारित होता है, ये प्रायः दो हैं सी० सी० सी०, ए० एल० ए० अथवा ए० ए० सी० आर०। वाङ्मयसूची में इस तरह की संहिता का उपयोग आवश्यक नहीं है। किसी-किसी वाङ्मयसूची के निर्माण में इसका उपयोग होता है जैसा भारतीय राष्ट्रीय वाङ्मयसूची में, और किसी में नहीं—जैसे व्यावसायिक वाङ्मयसूची में।

(६) **भौतिक आकार**—आज पुस्तकालय सूची के रूप में पत्रक सूची (Card catalogue) ही मान्य है, इसके विपरीत वाङ्मयसूची का आकार प्रायः पुस्तक-आकार में ही होता है, जो मुद्रित एवं प्रकाशित होती है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि आज विदेशों में पुस्तकालय सूची का रूप कहीं-कहीं पुनः पुस्तकाकार अपनाया जा रहा है, इधर डॉ० रंगनाथन वाङ्मयसूची के रूप में कार्ड फार्म के ही समर्थक हैं।

(७) **सूचना**—सूचना की दृष्टि से सबसे बड़ा अन्तर यह है कि वाङ्मयसूची में 'मूल्य' दिया जाता है, इसके विपरीत पुस्तकालय सूची में इसका उल्लेख नहीं किया जाता है।

(८) **प्रविष्टियों की संख्या**—पुस्तक की प्रविष्टियों की संख्या निर्माण में भी स्पष्ट अन्तर दृष्टिगोचर होता है। पुस्तकालय सूची में विभिन्न अभिगमों की संतुष्टि हेतु अनेक प्रविष्टियाँ निर्मित की जाती हैं जैसे लेखक, आख्या, विषय आदि। इसका औसत प्रति पुस्तक छह अथवा चार कार्ड माना जाता है, जबकि वाङ्मयसूची में कतिपय प्रमुख प्रविष्टि (प्रायः एक प्रति) ही बनाई जाती है।

(९) **स्रोत**—पुस्तकालय सूची का मुख्य स्रोत पुस्तक का मुखपृष्ठ (Title page) माना जाता है, जो प्रायः निश्चित स्रोत है, जबकि गौण (Secondary)

वाङ्मयसूची का स्रोत इससे भिन्न होता है। वह एक प्रकार से अनिश्चित होता है।

(१०) व्यवस्थापन—पुस्तकालय सूची का व्यवस्थापन प्रायः किसी न किसी पद्धति के अनुसार किया जाता है। आज मुख्यतया दो रूप ही प्रचलित हैं—डी० सी० अथवा सी० सी०। यह व्यवस्थापन वाङ्मयसूची में परिलक्षित नहीं होता है। इसमें वाङ्मयसूची की विभिन्नता के कारण अनिश्चितता पायी जाती है। ये आवश्यकता के अनुसार प्रकाशित पुस्तक के क्रम से, लेखक, आख्या, विषय आदि के क्रम से भी व्यवस्थित की जाती हैं।

(११) निर्गम—पुस्तकालय सूची को पाठक के नाम निर्गम करना सम्भव नहीं है, विशेषकर फलक सूची को जबकि वाङ्मयसूची अपनी विभिन्न विशिष्टताओं के कारण निर्गम की जा सकती है।

**वाङ्मयसूची के उद्देश्य एवं कार्य**

वाङ्मयसूची के निम्नलिखित उद्देश्य एवं कार्य हैं—

(१) किसी लेखक द्वारा लिखित उसके सम्पूर्ण साहित्य की सूचना देना।

(२) किसी विषय, उपविषय अथवा किसी विषयांश (टॉपिक) पर लिखित पुस्तकों तथा अन्य अध्ययन-सामग्री की जानकारी देना।

(३) शोध छात्रों एवं विद्वानों को यह जानकारी देना कि उसके अभीष्ट विषय या विषयांश पर कितनी अध्ययन-सामग्री कहाँ-कहाँ उपलब्ध है।

(४) पाठकों को उनके अभीष्ट विषय पर आधारभूत पठनीय सामग्री संकलन में सहायक होना।

(५) सभ्यता के प्राचीन अभिलेखों की सूची बनाना।

(६) प्रतिवर्ष प्रकाशित होने वाली पुस्तकों तथा अन्य अध्ययन-सामग्री की जानकारी देना।

(७) बुद्धिजीवियों को उनकी अभिरुचि के अभीष्ट विषयों पर अपने देश और अन्य देशों में (सम्पूर्ण विश्व के) हुये विकासों की जानकारी देना।

(८) अनुसंधान और शोध की विशिष्ट योजनाओं को गतिशील बनाने में सहायता करना।

(९) ज्ञान और संस्कृति के अभिलेखों से खोजने योग्य सामग्री को खोज कर उसके द्वारा सांस्कृतिक विकास में सहयोग करना।

(१०) वर्तमान ज्ञान के लाभकारी उपयोग की प्रोन्नति करने में सहायता देना और देश-देशान्तर तक उसकी जानकारी देने एवं विकसित करने में सहायता करना।

**वाङ्मयसूची से लाभ**

वाङ्मयसूची से निम्नलिखित लाभ होते हैं :—

(१) यह किसी विषय के साहित्य की जानकारी के लिए सामान्य रूप में पथ-प्रदर्शक का काम देती है।

(२) यह वांछित विषय पर प्रकाशित सम्पूर्ण अध्ययन सामग्री की जानकारी देती है।

(३) यह विद्वानों एवं शोधछात्रों को यह जानने में सहायता करती है कि उनके अभीष्ट विषय या विषयांश पर कितना कार्य हो चुका है। इससे उनके समय एवं श्रम की बचत होती है।

(४) यह पुस्तकालयाध्यक्षों, विद्वानों और सामान्य पाठकों तक को किसी विषय पर उपलब्ध तथ्य तथा आंकड़ों की जानकारी देती है।

(५) यह अपने अध्ययन के योग्य प्रलेखों (Documents) के चयन में पाठकों की सहायता करती है।

(६) यह आख्या (Title) के सत्यापन (Verificatiou) में सहायता करती है।[1]

(७) यह किसी लेखक द्वारा रचित सम्पूर्ण साहित्य की सूचना देती है।

(८) यह साहित्यिक उत्पादन (Literary production) को नियन्त्रित करती है।

(९) यह प्रतिवर्ष प्रकाशित होने वाले ग्रन्थों तथा अन्य अध्ययन-सामग्री की जानकारी देती है।

(१०) पुस्तकालयाध्यक्ष या किसी विद्वान् को यदि किसी विशेष उद्देश्य से अधिक संख्या में पुस्तकें या लेखों आदि को जानने की आवश्यकता होती है तो यह उनकी सहायता करती है।

(११) यह अपने भीतर दी गयी पुस्तक सम्बन्धी टिप्पणियों एवं सन्दर्भों के द्वारा उन पुस्तकों के मर्म का ज्ञान कराती है।

(१२) किसी विषय पर उत्तम एवं आधारभूत पुस्तकें ज्ञात करने अथवा चयन करने में सहायता पहुँचाती है।

(१३) सभ्यता के पुराने रिकार्डों की सूची प्रस्तुत करती है जिससे किसी भी देश के प्रत्येक क्षेत्र में हुये क्रमिक विकास को जानने मे सहायता मिलती है।

(१४) यह वर्गकारों, सूचीकारों और सन्दर्भ सहायकों को विविध प्रकार से सहायता पहुँचाती है।

---

1. 'The aim of bibliography·····is to assist an inquirer in discovering the existence or determining the identity of books or other documentary material which may be of interest to him'

—Robinson, A. M. Lewin. Systematic Bibliography, Bombay, Asia Publishing House, 1966. p. 12.

□ □

अध्याय २

# वाङ्मयसूची के प्रकार

## विकास-क्रम (ऐतिहासिक)

एक सीमित परिधि में वाङ्मयसूची का प्रारम्भ हस्तलिखित ग्रन्थों के अंतिम काल से होता है। वाङ्मयसूची मुख्यतया पुस्तक सूची (List of books) के रूप में सामने आयी। द्वितीय शताब्दी में गैलेन (Galen) ने अपनी रचनाओं की वर्गीकृत वाङ्मयसूची सम्पादित करने की आवश्यकता का अनुभव किया था। वेनरेबुल बीड (Venerable Bede) ने Ecclesiastical history of Britain नाम से ४० ग्रन्थों की एक सूची स्थूल रूप से वर्गीकृत क्रम में बनाई थी। मुद्रण कला के आविष्कार से पहले क्रिश्चियन चर्च मेन की वाङ्मयसूची का प्रमाण मिलता है जिसमें इंग्लैण्ड के ईसाई पवित्र स्थानों के पुस्तकालयों में प्राप्त पुस्तकों के नामों की लेखाबद्ध सूची मिलती है। इस संघीय सूची (Union list) में १६५ संग्रहों या पुस्तकागारों की सामग्री को सम्मिलित किया गया था और ग्रन्थकार को अनुवर्ण क्रम से क्रमबद्ध किया गया। इस प्रकार विषय वाङ्मयसूची की प्राचीनता पुस्तकालय कार्य के समानान्तर ही मिलती है। पुस्तकालय पुस्तकों तथा हस्तलिखित ग्रन्थों के भण्डारमात्र थे किन्तु मुद्रण कला के पश्चात् पुस्तकों तथा अन्य अध्ययन-सामग्री के प्रकार में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी। तब यह अनुभव किया जाने लगा कि यदि इनके द्वारा किसी सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति करना है तो इस संग्रहीत अध्ययन-सामग्री का संगठन भी आवश्यक है। इसके फलस्वरूप स्थूल रूप से पुस्तकों का विषयक्रम से व्यवस्थापन प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार विषय वाङ्मयसूची बनाने की एक प्रकार से नींव पड़ गई। कोनार्ड गेस्नर (Konard Gesner) ने अपनी बिब्लियोथिका यूनिवर्सलिस (Bibliotheca Universalis) १५४५ ई० में प्रकाशित की। यह सार्वभौम वाङ्मय-सूची की दिशा में प्रथम प्रयास था। इस ग्रन्थ में १३०० पृष्ठों में टिप्पणियों सहित लगभग १२००० ग्रन्थों का संकलन किया गया जिनमें लैटिन, ग्रीक और हिब्रू भाषाओं की वे सब पुस्तकें थीं जिनकी जानकारी संग्रहकर्त्ता को थी। इसका व्यववस्था-पन लेखकों के अनुवर्ण क्रम से किया गया। इसके तीन वर्ष बाद Pandectasrum-sive partitionum universalism द्वारा उसका अनुसरण किया गया, जिसमें ग्रन्थ नामों को लगभग २० मुख्य वर्गों में पुनर्व्यस्थित किया गया है। ट्रिथिम (Tritheim) और गेस्नर (Gesner) की कृतियों का भी अनुसरण किया गया किन्तु १७वीं शताब्दी के अन्त तक लेखाबद्ध साहित्य में इतनी अधिक वृद्धि हुई कि विद्वानों को उतने सीमित विषयों से सन्तोष नहीं हुआ। व्यावसायिक वाङ्मयसूचियाँ विशेष

रूप से पुस्तकों की वे सूचियाँ थीं जो बिक्री के लिए तैयार होने लगी थीं किन्तु उनमें दिया हुआ विषयक्रम का व्यवस्थापन भी विद्वानों को सन्तोष न दे सका।

इस प्रकार वाङ्मयसूची के संगठन में तकनीकी विधियों के सुधार की समस्यायें सामने आयीं। पुस्तकों के चयन और उनकी अवाप्ति के लिए भी पुस्तकालयाध्यक्ष वाङ्मयसूची को महत्त्व देने लगे और स्वयं उस पर निर्भर हो गये। पुस्तकालयों की विविधता और साहित्य में निरन्तर वृद्धि होने से भी वाङ्मयसूची के संगठन और पुस्तकालय की तकनीकी विधियों के सुधार पर दबाव पड़ा। ब्रिटेन में १८४१ ई० में सूचीकरण के प्रसिद्ध ९१ नियम बनाये गये, जिससे व्यावहारिक रूप में पुस्तकों के सूचीकरण में सुविधा हो। अमेरिकन लाइब्रेरी एसोसिएशन के प्रथम सम्मेलन १५८३ ई० में इस सम्बन्ध में विचार किया गया और यह अनुभव किया गया कि पुस्तकालयों में प्रचलित तकनीकी विधियों में सुधार आवश्यक है। इसी पृष्ठभूमि में विचार एवं चिन्तन के पश्चात् मेलविल ड्यूई की दशमलव वर्गीकरण पद्धति का प्रथम संस्करण १८७६ ई० में प्रकाशित हुआ। विषयानुसार ग्रन्थों के वर्गीकरण की इस पद्धति का स्वागत किया गया। चार्ल्स एमी कटर ने 'रूल्स फार ए डिक्शनरी कैटलॉग' का निर्माण किया जो विषय सूचीकरण के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर अपनाया गया। उसके बाद लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस ने विषयानुसार वर्गीकरण की अपनी अलग पद्धति का निर्माण किया। आगे चल कर भारतीय विद्वान् डॉ० रंगनाथन ने भी वर्गीकरण एवं सूचीकरण के क्षेत्र में नयी पद्धतियों का निर्माण किया। १८९५ ई० में बेलजियम के La Fortaine और Paul Otlet ने सामयिकों में प्रकाशित लेखों तथा अन्य अणु प्रलेखों के सूक्ष्म वर्गीकरण की आवश्यकता का अनुभव किया। विशेषज्ञों को उनके अध्ययन और अनुसंधान में सहायता देने के लिए यह आवश्यक समझा गया। ब्रुशेल्स में १८९५ ई० में एक इण्टरनेशनल कांफ्रेन्स का आयोजन किया गया। उसके फलस्वरूप बेलजियम सरकार की आर्थिक सहायता से 'इण्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ बिब्लियोग्रेफी' की स्थापना की गई।

इस प्रकार निम्नलिखित चरणों में क्रमशः बिब्लियोग्रेफी का विकास हुआ—

**प्रथम चरण**—व्यावसायिक सूचियाँ तथा कुछ पुस्तकालयों की पुस्तक-सूचियाँ।

**द्वितीय चरण**—क्षेत्रीय ग्रन्थ-सूचियाँ (रीजनल कैटलॉग) तथा इसी चरण में गेस्नर महोदय का 'बिब्लियोथिका यूनिवर्सलिस' का प्रकाशन, १६वीं शती।

**तृतीय चरण** (१) राष्ट्रीय ग्रन्थ सूची का विकास १७वीं शती मध्य।

(२) पुस्तकों में विवरणात्मक टिप्पणी देने की प्रथा चालू हुई।

(३) आलोचनात्मक ग्रन्थ सूची का सम्पादन १८वीं शती के मध्य भाग से प्रारम्भ।

(४) १८वीं शती के अन्त से पत्र-पत्रिकाओं के लेखों की सूचियों का सम्पादन।

(१) २०वीं शती से विषयपरक वाङ्मयसूची जिसमें पुस्तकों तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख दोनों सम्मिलित हों, का प्रकाशन।

**वाङ्मयसूची के प्रकार** (Types of Bibliography)

**विकास**—रूपात्मक वाङ्मयसूची अनेक प्रकार की होती है। मुद्रण कला के आविष्कार के बाद इसके प्रकार में वृद्धि हुई है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से अब तक वाङ्मयसूची की कुछ परिभाषायें ऐसी की गई हैं जिनमें वाङ्मयसूची के प्रकार का भी उल्लेख किया गया है। उनमें से कुछ परिभाषायें निम्नलिखित हैं—

'वाङ्मयसूची का अर्थ पुस्तकों के भौतिक रूप के अध्ययन से है।'[1]

'क्रमबद्ध विवरण और पुस्तकों का इतिहास, उनकी ग्रन्थकारिता, मुद्रण, प्रकाशन और संस्करण आदि।'[2]

'वाङ्मयसूची किसी विशेष लेखक, मुद्रक या देश या किसी विशिष्ट विधा (Theme) या किसी विषय के साहित्य के ग्रन्थों की सूची है।'[3]

—आक्सफोर्ड डिक्शनरी

वाङ्मयसूची अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत अर्थ में ग्रन्थों का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत करती है। जहां तक ग्रन्थों के ज्ञान का सम्बन्ध है, प्रथम तो वह सामग्री जिससे ग्रन्थ की रचना हुई है, द्वितीय, उन ग्रन्थों के ग्रन्थकारों द्वारा अपने-अपने ग्रन्थों में प्रतिपादित विषय, तृतीय, ग्रन्थों के विभिन्न संस्करणों का ज्ञान उनकी दुष्प्राप्यता, विलक्षणता और उनका मूल्य (महत्व) और अन्त में पुस्तकालय में अपनाई गई वर्गीकरण पद्धति में उनका यथोचित स्थान जो कि उनको मिलना चाहिये, प्रदर्शित करती है।[4]

—टी० एच० हॉर्न

---

1. The bibliography means study of books as material object.
2. Systematic description and history of books, their authorship, printing, publishing, editions, etc.—O.E.D.
3. A list of books of a particular author, printer or country or of those dealing with any particular theme, the literature of a subject. —Oxford English Dictionary
4. Bibliography literally signifies the description of books in a more extended sense. It denotes the knowledge of books, as it regards First, the materials of which they are composed, secondly, the subject discussed by their respective authors, thirdly, the knowledge of different editions of books. Their degrees of rarity, curiousity, and their value and lastly, the rank which they ought to hold in the system of classification, adopted for arranging a library.

—Horne, T. H. 'Introduction to the study of Bibliography' London, 1814.

'पुस्तकों की सूची और कभी-कभी अन्य अध्ययन-सामग्री की सूची भी, जैसे लेखों, चित्रणों, एक ग्रन्थकार द्वारा एक विषय पर, एक मुद्रक द्वारा मुद्रित, एक स्थान में या एक काल में एक विषय का साहित्य। वाङ्मयसूची (क) पूर्ण (ख) सामान्य या सार्वभौम अर्थात् प्रत्येक देश और काल में प्रकाशित पुस्तकों को सम्मिलित करने का प्रयास करते हुए और सब विषयों पर (ग) राष्ट्रीय, जो कि किसी विशेष देश में मुद्रित या प्रकाशित हो, (घ) चुनी हुई उत्तम पुस्तकें या एक विशेष उद्देश्य की पूर्ति करने वाली पुस्तकों (ङ) विशिष्ट, जैसे एक लेखक या विषय तक सीमित, (च) क्रय या विक्रय की सुविधा के लिए व्यापारिक उद्देश्य से संपादित।'[1]

—एल० एम० हैरॉड

(अ) ग्रन्थ के मूल का संचरण और विभिन्न संस्करणों और प्रतियों की तुलना के द्वारा एक साधन के रूप में इतिहास के निर्धारण के साथ ग्रन्थों के भौतिक स्वरूप का अध्ययन (ब) ग्रन्थकारिता, संस्करण, शारीरिक रूप आदि (स) ग्रन्थों, मानचित्रों आदि की सूचियाँ तैयार करना (द) पुस्तकों, मानचित्रों आदि की सूची जो कि किसी एक पुस्तकालय या पुस्तकालयों में संग्रहीत ग्रन्थों की सूची (कैटलॉग) से आवश्यक रूप में अन्तर रखती हो।[2]

—थामसन इलजावेथ

---

1. 'A list of books and sometimes of other material too, such as articles and illustrations, by an author on a subject, printed by one printer, in one place, or during one period the literature of a subject. Bibliographies may be (a) complete (b) general or universal, i.e., attempting to include books published in every country and age, and on all subjects (c) national, i.e., those printed or published in a specific country, (d) select, usually 'best books' or books suited to a special purpose, (e) special, i.e., limited to one author or subject (f) trade, compiling primarily to facilitate the sale or purchase of books.'

   —Harrod, L. M. The library glossary : Terms used in Librarianship and the book crafts, London, Grafton & Co., 1959, p. 5.

2. (a) 'The study of the material form of books, wiih comparison of variations in issues and copies as a means of determining in history and transmission of texts., (b) the art of describing book correctly with respect to authorship,

(शेष फुटनोट अगले पृष्ठ पर देखें)

सर वाल्टर ग्रेग की परिभाषा ऐतिहासिक वाङ्मयसूची (Historical Bibliography) की ओर संकेत करती है। टी० एच० हॉर्न की परिभाषा में ऐतिहासिक वाङ्मयसूची के अतिरिक्त उन दो प्रकार की अन्य वाङ्मयसूचियों की ओर संकेत किया गया है जिनको बाद में क्रमबद्ध वाङ्मयसूची (Systematic Bibliography) और आलोचनात्मक वाङ्मयसूची (Critical Bibliography) कहा गया। हेनरी वार्टलेट वाल हासन की परिभाषा में नाम निर्देश पूर्वक ऐतिहासिक, परिगणनात्मक या क्रमबद्ध और प्रैक्टिकल वाङ्मयसूचियों का उल्लेख किया गया है।

श्री एल० एम० हैरॉड की परिभाषा व्यापक है। इसमें पुस्तकों के साथ-साथ वाङ्मयसूची में अन्य प्रकार की अध्ययन-सामग्री को भी सम्मिलित करने का संकेत दिया गया है। साथ ही ग्रन्थकार वाङ्मयसूची, विषय वाङ्मयसूची, मुद्रक वाङ्मयसूची, राष्ट्रीय वाङ्मयसूची, चयनीकृत वाङ्मयसूची और व्यावसायिक वाङ्मय सूचियों आदि के प्रकार का भी उल्लेख किया है। इन सब प्रकार की वाङ्मयसूचियाँ परिगणनात्मक या क्रमबद्ध वाङ्मयसूची (Systematic Bibliography) के अन्तर्गत आती हैं। थामसन इलिजाबेथ की परिभाषा में विश्लेषणात्मक या आलोचनात्मक वाङ्मयसूची (Critical Bibliography) की ओर संकेत किया गया है।

इस प्रकार वाङ्मयसूची की तीन प्रमुख शाखायें हुईं :—

(१) ऐतिहासिक वाङ्मयसूची (Historical Bibliography)

(२) विश्लेषणात्मक या आलोचनात्मक (Analytical or Critical)

(३) परिगणनात्मक या क्रमबद्ध (Numerative or Systematic)

इन शाखाओं का विकास क्रमशः इस प्रकार हुआ है :—

### विकास-क्रम

वाङ्मयसूची (Bibliography) का विकास क्रमशः हुआ है। इस शब्द के के साथ अनेक विशेषण लगे हुये हैं जो इसके प्रकार को बतलाते हैं। जैसे— Literary, Material, Critical, Historical, Intellectual, Subject, Reference, Physical, Document, Retrospective, Current, Comprehensive, Closed, Open, Analytical, Numerative, Texual,

---

editions, physical form, etc; (c) the preparation of lists of books, maps, etc, (d) a list of books, maps, etc; differing from a catalogue in not being necessarily a list of material in a collection, a library or a group of libraries.'

—Thompson, Eligabeth : A L A. Glossary of library terms, with a selection of terms in related field, Chicago, A. L. A., 1943.

Systematic, Pure, Selective, National, Regional, Trade, Primary, Secondary, Author, etc. इनके विकास का संक्षिप्त इतिहास इस प्रकार है :—

प्रारम्भ में अठारहवीं शताब्दी के पूर्व वाङ्मयसूची मुख्यतया 'पुस्तक सूची' (list of books) के रूप में सामने आई।

प्रत्येक ग्रन्थ में वर्णित विषय होता है और इस ग्रन्थ के उत्पादन की एक तकनीकी कला भी होती है जिसके अन्तर्गत कागज का प्रकार, पुस्तक की साज-सज्जा, जिल्दबन्दी तथा कुछ अन्य तत्त्व भी सम्मिलित रहते हैं। स्पष्ट है कि ये दोनों अलग-अलग पक्ष हैं। अतः प्रारम्भ में सुविधा की दृष्टि से एक को पदार्थ वाङ्मयसूची (Material Bibliography) और दूसरे को साहित्यिक वाङ्मयसूची (Literary Bibliography) नाम दिया गया। उन दिनों ग्रन्थ विज्ञान (Science of books) के अन्तर्गत ये दोनों सम्मिलित थे। कालान्तर में पदार्थ वाङ्मयसूची (Material Bibliography) के आधार पर आलोचनात्मक वाङ्मयसूची (Critical Bibliography) और ऐतिहासिक वाङ्मयसूची (Historical Bibliography) दो रूप विकसित हुये। अर्थात् ग्रन्थ का अध्ययन इन दोनों दृष्टिकोणों से किया जाने लगा। इसके अन्तर्गत टाइपोग्रेफी को भी सम्मिलित कर लिया गया। ऐतिहासिक वाङ्मयसूची (Historical Bibliography) को मैटेरियल बिब्लियोग्रेफी और भौतिक वाङ्मयसूची (Physical Bibliography) भी कहने लगे क्योंकि ये दोनों एक ही हैं। आलोचनात्मक वाङ्मयसूची (Critical Bibliography) का अनुप्रयोग (Application) दो रूपों में हुआ। बाह्य रूप के अन्तर्गत ग्रन्थ का वर्णन, वर्णनात्मक वाङ्मयसूची (Descriptive Bibliography) कहा गया और ग्रन्थ के मूल (Text) का अध्ययन, पाठात्मक वाङ्मयसूची (Textual Bibliography) कहा गया। इसी साहित्यिक वाङ्मयसूची (Literary Bibliography) के आधार पर परिगणनात्मक वाङ्मयसूची (Numerative Bibliography) का विकास हुआ। इसी को क्रमबद्ध वाङ्मयसूची (Systematic Bibliography), संदर्भ वाङ्मयसूची (Reference Bibliography), बौद्धिक वाङ्मयसूची (Intellectual Bibliography) और प्रलेख वाङ्मयसूची (Document Bibliography) भी कहते हैं।

इस प्रकार वाङ्मयसूची की तीन प्रमुख शाखायें हुईं :—

(१) ऐतिहासिक वाङ्मयसूची (Historical Bibliography)

(२) आलोचनात्मक वाङ्मयसूची (Critical Bibliography)

(३) क्रमबद्ध वाङ्मयसूची (Systematic Bibliography)

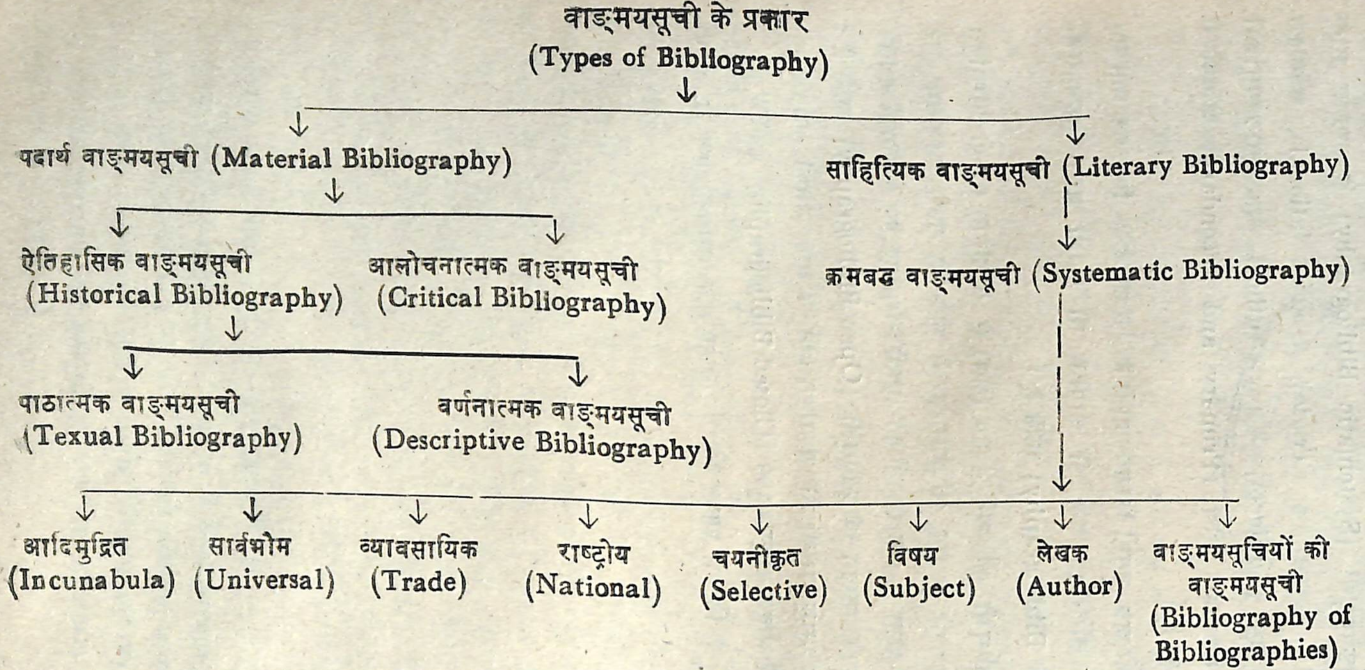
इनमें आलोचनात्मक वाङ्मयसूची के पाठात्मक (txtual) और वर्णनात्मक (Descriptive) ये दो भेद होते हैं।

क्रमबद्ध वाङ्मयसूची (Systematic Bibliography) के अन्तर्गत सार्वभौम (Universal), व्यावसायिक (Trade), राष्ट्रीय (National), चयनीकृत (Selective), विषय (Subject), लेखक (Author) आदि वाङ्मयसूचियाँ आती हैं। इनको मुख्य और गौण (Primary and Secondary) दो वर्गों में विभाजित किया गया है।

वाङ्मयसूची जब इतनी विस्तृत होती है कि छपाई के दिन तक प्राप्त सब सम्बन्धित सामग्री सम्मिलित कर ली जाती है तो उसको बृहद् वाङ्मयसूची (Comprehensive Bibliography) कहते हैं।

जिस वाङ्मयसूची को अपने विषय (क्षेत्र) से सम्बन्धित सामग्री सम्मिलित कर के प्रकाशित कर देने के बाद भी कालान्तर में जैसे-जैसे उससे सम्बन्धित नई सामग्री का प्रकाशन होता है, उस सामग्री को उसमें सम्मिलित कर के उसको अद्यतन बनाते जाते हैं, उसको अनावृत वाङ्मयसूची (Open Bibliography) कहते हैं। इसके विपरीत जिस वाङ्मयसूची को प्रकाशित होने के बाद उसको अद्यतन नहीं बनाया जाता उसको आवृत वाङ्मयसूची (Closed Bibliography) कहते हैं।

वाङ्मयसूची के विभिन्न प्रकार को दर्शाते हुए एक तालिका पृष्ठ २६ पर दी जा रही है।




(१) पदार्थ वाङ्मयसूची (Material Bibliography) = भौतिक वाङ्मयसूची (Physical Bibliography),

(२) साहित्यिक वाङ्मयसूची (Literary Bibliography), क्रमबद्ध वाङ्मयसूची (Systematic Bibliography), परिगणनात्मक वाङ्मयसूची (Numerative Bibliography), सन्दर्भ वाङ्मयसूची (Reference Bibliography), बौद्धिक वाङ्मयसूची (Intellectual Bibliography), प्रलेख वाङ्मयसूची (Document Bibliography)।

अध्याय ३

# ऐतिहासिक वाङ्मयसूची

## ( HISTORICAL BIBLIOGRAPHY )

पुस्तकों का कला के दृष्टिकोण से भी अध्ययन किया जाता है। पुस्तकें तथा अन्य अध्ययन-सामग्री के द्वारा मनुष्य के कार्यों और विचारों, उसकी सफलताओं एवं असफलताओं का ज्ञान होता है। लिखित सामग्री पर हमारी सभ्यता आधारित है। इसलिए पुस्तकों का सावधानीपूर्वक समुचित विधि से अध्ययन किया जाना चाहिए जिससे यह ज्ञात हो सके कि मानव संस्कृति के उत्थान में उनका कितना योगदान रहा है। इस प्रकार इस बात का अध्ययन करना कि लेखन कला का आविष्कार कैसे हुआ, ग्रन्थों की रचना के लिए लेखन-सामग्री का विकास कैसे हुआ, ग्रन्थों को अलंकृत करने, मुद्रित करने, उनकी जिल्दबन्दी और सुरक्षा की विधियों का विकास कैसे हुआ, यह ग्रन्थ उत्पादन पक्ष है और ऐतिहासिक दृष्टिकोण से इसका अध्ययन जितना ज्ञानप्रद है उतना ही मनोरंजक भी है। इन सब का ज्ञान वाङ्मय-सूचियाँ बनाने में वाङ्मयसूचीकारों की सहायता करता है। ऐतिहासिक वाङ्मय-सूची के अन्तर्गत लेखन, मुद्रण, ग्रन्थ अलंकरण, ग्रन्थ संग्रह आदि का इतिहास आता है और इन सब का अध्ययन प्रत्यक्ष या परोक्षरूप से सभ्यता के इतिहास से सम्बन्धित है। इससे इस बात का पता लगता है कि मनुष्य ने लिपि, वर्णमाला, लेखन-सामग्री, मुद्रण, जिल्दबन्दी तथा अन्य प्रक्रियाओं के क्षेत्र में आदिकाल से निरन्तर संघर्ष किया, जिसके फलस्वरूप आज की मुद्रित पुस्तकें सुन्दर रूप में अध्ययन के लिए हमें प्राप्त हुई हैं। मानव आदिकाल से अपनी प्रगति के लिए यदि संघर्ष न करता तो आज का संसार इस रूप में न होता।

### परिभाषा

पुस्तक-उत्पादन और प्रकाशन का सामान्य रूप में अध्ययन, यह मान कर कि यह अध्ययन वाङ्मयसूची का प्रमुख पहलू है।[1]

कला के उद्देश्यों की दृष्टि से पुस्तकों का विशिष्ट अध्ययन सामान्यतया ऐतिहासिक वाङ्मयसूची के नाम से जाना जाता है।[2]

---

1. Study of book-production and publication in general, claiming that it is a major aspect of bibliography.
   —Cowley, J. D.
2. The more advanced study of books as objects of art is commonly known as historical bibliography.
   —M. L. Chakravorty

क्षेत्र

ऐतिहासिक वाङ्मयसूची के अन्तर्गत पुस्तक के भौतिक रूप (Physical form) का अध्ययन किया जाता है।[1] अतः इसके अन्तर्गत निम्नलिखित तत्त्व आते हैं :—

(१) हस्तलिपि और हस्तलिखित ग्रन्थकाल
(२) आदि लेखन सामग्री
(३) कागज और उसके निर्माण का इतिहास
(४) ब्लाक द्वारा मुद्रित पुस्तकें
(५) सचल टाइप द्वारा मुद्रण का आविष्कार
(६) जर्मनी तथा वहाँ से अन्य देशों में मुद्रण का विस्तार
(७) मुद्रण और टाइप में सुधार
(८) टाइटिल पेज और पुष्पिका का इतिहास
(९) लकड़ी के ठप्पे और उत्कीर्णन कार्य
(१०) ग्रन्थों के अलंकरण (सजावट) की अन्य विधियाँ
(११) आधुनिक अलंकरण विधियाँ
(१२) रंगीन चित्रण
(१३) जिल्दबन्दी
(१४) प्रकाशन और विक्रय कला
(१५) कापीराइट
(१६) ग्रन्थ-व्यावसायिक वाङ्मयसूचियों का विकास।

इस अध्याय में उपर्युक्त में से प्रमुख टॉपिक का परिचय दिया जा रहा है।

## वर्णमाला और लेखन कला का उद्भव और विकास
## (Origin of writing and alphabet)

मनुष्य एक ज्ञानवान प्राणी है। उसमें सोचने, समझने एवं चिन्तन करने की शक्ति अन्य प्राणियों से अधिक है। आदिकाल से ही वह अपने विचारों को प्रगट करने के लिए सुगम साधनों की खोज में रहा है। वर्णमाला एवं लिपि के आविष्कार स्वरूप उसने अपने विचार दूसरों तक पहुँचाने के लिए विभिन्न प्रकार के संकेतों का आविष्कार किया और उनका प्रयोग दैनिक व्यवहार में भी बराबर होता रहा।

---

1. An Introduction to Historical Bibliography, by Norman, E. Binns के आधार पर।

उसने उसके बाद चित्रों के माध्यम से अपने विचार प्रकट करना प्रारम्भ किया। अपने भीतर उठे हुए भावों एवं विचारों को उसने दीवारों, पत्थर के टुकड़ों और लकड़ी की पट्टियों पर भी प्रगट करना आरम्भ किया। मनुष्य के ये भाव चाहे धार्मिक रहे हों, या सौन्दर्यबोधक रहे हों किन्तु अपने भावों की अभिव्यक्ति वह किसी न किसी रूप में अवश्य करता रहा है। लेखन कला के आविष्कार का उद्भव यहीं से आरम्भ हुआ। इसमें सन्देह नहीं कि लेखन कला एक महत्त्वपूर्ण आविष्कार है। यदि आदिकाल से अब तक मनुष्य जाति के पास वर्णमाला न होती और लिपि का आविष्कार न हुआ होता तो मनुष्य आज भी बर्बर और असभ्य दशा में पशुवत् पड़ा रहता। हमारे जीवन में आज जो प्रगति हुई है, पूर्वजों के जो विचार हस्तलिखित ग्रन्थों के रूप में, मुद्रित ग्रन्थों के रूप में और अन्य अध्ययन-सामग्री के रूप में, हमें उपलब्ध हैं, ये सब लिपि के आविष्कार एवं लेखन कला की देन हैं। इन्हीं की बदौलत मानव सभ्यता एवं संस्कृति विकसित हुई है। लिपि के आविष्कार एवं लेखन कला ने वास्तव में मनुष्य जाति के विकास में एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी है।

लेखन कला का विकास क्रमशः तीन चरणों में हुआ—

(१) चित्रलेखन (Pictography)

(२) भावचित्र विषयक लेखन (Ideographic writing)

(३) ध्वन्यात्मक लेखन (Phonetic writing)

इनका परिचय क्रमशः निम्नवत् है—

**(१) चित्रलिपि**—चित्रलिपि एक संकेत लिपि है, जिसको बना कर मनुष्य अपने विचारों को अपने साथियों पर प्रगट करता था। इस प्रणाली का प्रयोग विशेष रूप से मिस्र, मैसोपोटामिया, क्रीट एवं स्पेन जाति के निवासियों द्वारा किया जाता रहा। आज भी असभ्य, जंगली जातियों में अपने विचारों को प्रगट करने की यह प्रणाली पाई जाती है।

**(२) भावचित्रविषयक लेखन**—लेखन कला की इस दशा में मनुष्य अपने विचारों को दूसरों तक चित्र के माध्यम से प्रगट करता है। बने हुए चित्र का अर्थ व्यापक होता था और इसमें कई प्रकार के प्रतीकों का भी प्रयोग किया जाता था।

**(३) ध्वन्यात्मक लिपि**—विभिन्न प्रकार की ध्वनियों के आधार पर संकेत (Symbols) बनाये गये और उन चिह्नों के संयोग से शब्द बने और इस प्रकार वर्णमाला का आविष्कार हुआ।

**यूरोपीय वर्णमाला का जन्म**—इस विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। सीरिया-पैलस्टाइन के क्षेत्र में वर्णमाला का निर्माण किया गया और उसका मानक स्थिर किया गया। इसका उद्भव द्वितीय मीलियन बी० सी० ई० (B. C. E.) के

लगभग मध्य काल में अधिकांश विद्वान् मानते हैं। यह कहना कठिन है कि कौन-सी लिपि किस लिपि के आधार पर निर्मित की गई या निर्मित करने में आधार मानी गई। किन्तु लोग ऐसा मानते हैं कि आधुनिक हिब्रू वर्णमाला मूल सिनेटिक वर्णमाला से विकसित हुई। रूसी को छोड़ कर अंग्रेजी वर्णमाला तथा अन्य आधुनिक यूरोपीय वर्णमालायें लैटिन से निकली हैं जो कि प्राचीन ग्रीक पर आधारित थीं। ग्रीक वर्णमाला स्वयं फोनीशियन से ली गई और फोनीशियन का मूल इजीप्शियन Hieroglyphics है।

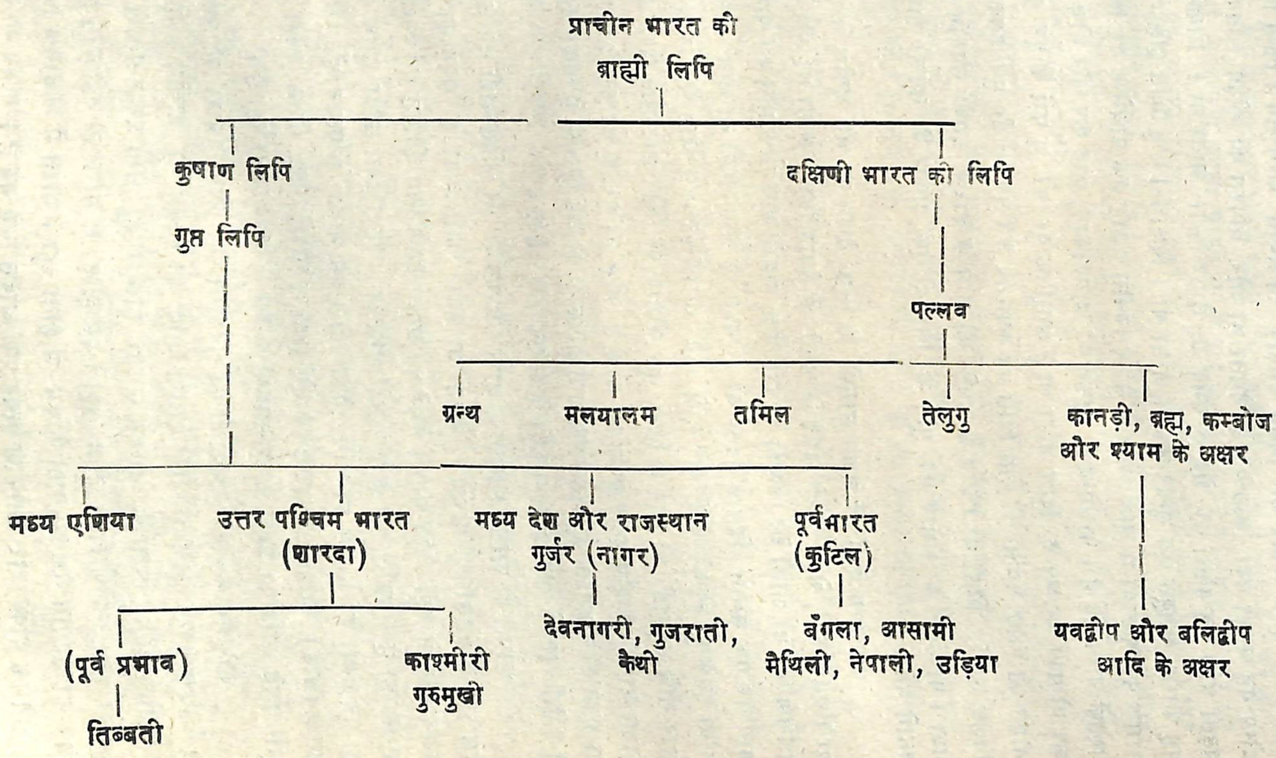
## भारतीय लिपिमाला की उत्पत्ति

चूंकि पुस्तकालयों में लिखित ज्ञान-सामग्री का संग्रह होता है, इसलिए भारतीय पुस्तकालयों की परम्परा के सम्बन्ध में यहाँ की लिपियों का ज्ञान आवश्यक है। प्राचीन काल में भारत में ब्राह्मी (पाली बंभी] और खरोष्ठी नामक दो लिपियाँ प्रचलित थीं। इनमें से ब्राह्मी एक प्रकार से राष्ट्रीय लिपि थी। इसका प्रचार पश्चिमोत्तर प्रदेश को छोड़ कर समस्त भारतवर्ष में था। यह बायीं ओर से दाहिनी ओर को लिखी जाती थी। पश्चिमोत्तर प्रदेश में खरोष्ठी लिपि का प्रचार था और यह दाहिनी ओर से बायीं ओर को लिखी जाती थी। खरोष्ठी लिपि का सम्बन्ध विदेशी सेमिटिक अरमइक लिपि से है। लेकिन ब्राह्मी लिपि आर्यों का मौलिक आविष्कार था। यद्यपि आर्य सभ्यता बहुत पुरानी है फिर भी ई० पू० ३०० के पूर्व आर्य भाषा में लिखा हुआ कोई भी लेख न तो अभी तक मिला है और न पढ़ा ही गया है। इसलिए बहुत विद्वान् मौर्य युग की ब्राह्मी लिपि को ही आधुनिक भारतीय लिपियों में आदि लिपि मानते हैं। मध्य एवं आधुनिक कालों की समस्त भारतीय लिपियाँ इस ब्राह्मी लिपि से निकली हैं। इसको पृष्ठ ३१ के चित्र से समझा जा सकता है।

भारतीय प्राचीन पुस्तकालयों में भी ब्राह्मी लिपि में लिखे ग्रन्थ नहीं मिलते किन्तु शिलालेख आदि कुछ फुटकर नमूने प्राप्त हैं। पुस्तकालयों में ब्राह्मी लिपि से उत्पन्न अन्य प्रसिद्ध लिपियों मे लिखे एवं छपे ग्रन्थ पाये जाते हैं।

## लेखन सामग्री
## (Writing Materials)

मनुष्य जब अपने विचारों को लिखित रूप में प्रगट करना चाहता है तो उसको लेखन-सामग्री की आवश्यकता पड़ती है। यह लेखन-सामग्री विश्व के जिस देश में जिस रूप में सुलभ होती है उसी का प्रयोग उस देश में किया जाता रहा है। पश्चिमी देशों में कागज के आविष्कार से पूर्व पेपिरस (Papyrus), पार्चमेन्ट (Parchment) और वेलम (Vellum) का प्रयोग किया जाता था। पेपिरस का प्रयोग प्रारम्भ से ११वीं शताब्दी तक होता रहा। पेपिरस एक प्रकार की घास है जो मिस्र में नील नदी के डेल्टा में पाई जाती थी। पाश्चात्य देशों में इतिहास के मध्य-काल में धार्मिक तथा राजनीतिक संघर्षों के कारण 'पेपिरस' का प्रयोग कठिन और


प्राचीन भारत की
ब्राह्मी लिपि
कुषाण लिपि
गुप्त लिपि
दक्षिणी भारत की लिपि
पल्लव
ग्रन्थ
मलयालम
तमिल
तेलुगु
कानड़ी, ब्रह्म, कम्बोज
और श्याम के अक्षर
मध्य एशिया
उत्तर पश्चिम भारत
(शारदा)
मध्य देश और राजस्थान
गुर्जर (नागर)
पूर्वभारत
(कुटिल)
(पूर्व प्रभाव)
तिब्बती
काश्मीरी
गुरुमुखी
देवनागरी, गुजराती,
कैथी
बँगला, आसामी
मैथिली, नेपाली, उड़िया
यवद्वीप और बलिद्वीप
आदि के अक्षर

मँहगा हो गया। अतः योरोपीय लेखक पेपिरस को अधार्मिक घोषित करके पार्चमेन्ट और वेलम (एक प्रकार का विशेष चमड़ा) का प्रयोग करने लगे। किन्तु लिखने के योग्य यह चमड़ा बड़ी कठिनाई से बनता था और पेपिरस की अपेक्षा अधिक मँहगा पड़ता था। यह बकरी या भेड़ के चमड़े से तैयार किया जाता था। लिखने के पूर्व यह पतला, मजबूत एवं सुन्दर बनाया जाता था। गिर्जाघरों में सुरक्षित इस्क्रिप्टोरियम नामक पुस्तकालयों में आठ हजार से लेकर पच्चीस हजार तक पार्चमेन्ट पर लिखी गई पुस्तकें प्राप्त हुई हैं। पार्चमेन्ट के टुकड़े को आयताकार काट कर और बीच के मोड़ कर दो पत्रों का रूप दे दिया जाता था। आधुनिक पुस्तकों में फर्मे के पूरे पृष्ठों को मोड़ने की विधि सम्भवतः उसी विधि का रूपान्तर है। १५०० ई० पूर्व इसका प्रयोग विशेष रूप से होता था। बाद में चमड़े की कमी के कारण इसका उपयोग बन्द हो गया। पार्चमेन्ट के अभाव की पूर्ति के लिए दो एक प्रकार के नकली कागज भी बनाये गये।

पाश्चात्य देशों में लेखन सामग्री के लिए वेलम का भी प्रयोग किया जाता था। यह बकरी, भेड़, बछड़े आदि के चमड़े से तैयार किया जाता था और उस पर पालिश कर दी जाती थी जिसका भीतरी एवं बाहरी भाग साफ होने एवं पालिश हो जाने पर एक समान दिखाई पड़ता था। भारतीय जन्मपत्रियों या अन्य फरमानों की भाँति इनके टुकड़ों को जोड़ कर लम्बे शीट तैयार कर लिए जाते थे। किन्तु इन पर ऊपर नीचे लम्बाई की ओर न लिख कर चौड़ाई की ओर छोटे-छोटे खण्ड बना कर लिखा जाता था और इन्हीं खण्डों को बीच से मोड़ कर पुस्तक का रूप दे दिया जाता था। आजकल इसका सूक्ष्मतम रूप माइक्रोफिल्म की गई पुस्तकों में देखा जा सकता है। ऐसी पुस्तकें मिस्र के पिरामिडों के भीतर पाई गई हैं।

**भारत में लेखन सामग्री**—भारत प्रारम्भ से ही अहिंसावादी एवं धर्मप्रधान देश रहा है। इसलिए पार्चमेन्ट, वेलम या अन्य किसी प्रकार के चमड़े का उपयोग लेखन कार्य में नहीं किया गया। चमड़े का प्रयोग इसके लिए निषिद्ध एवं निन्द्य माना जाता रहा है। प्रकृति की कृपा से यहाँ भोजपत्र और ताड़पत्र सर्वदा सुलभ रहे और इन पर ग्रन्थों के लिखने का कार्य होता रहा। वैसे भारत में पत्थर, ईंट, लकड़ी के फलक (बोर्ड), विविध प्रकार की धातुएँ (सोना, चाँदी, ताँबा, पीतल, लोहा, टिन), सूती कपड़े आदि का प्रयोग लेखन-सामग्री के रूप में किया जाता रहा है।

भारतीय कलाकार गुफाओं की दिवालों पर अपने विचारों को प्रगट करते रहे। जिस प्रकार अजन्ता और एलोरा आदि की गुफाओं में प्राचीन कलाकारों ने अपने विचारों को चित्रों के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है, उसी प्रकार पत्थरों पर भी विचारों को उत्कीर्ण किया जाता रहा। इस दृष्टि से भारत ही नहीं वरन् विश्व में पत्थर का उपयोग लेखन-सामग्री के रूप में होता रहा। भारत में शिलालेख लिखे गये हैं। धार्मिक वाक्य और धर्मोपदेश पत्थर पर अंकित किये गये हैं। पत्थर को समुचित

आकार में काट कर और उसे साफ करके उस पर लेखन कार्य किया जाता था। महापर्यटक राहुल सांकृत्यायन ने अपने तिब्बत एवं लद्दाख के यात्रा विवरण में लिखा है कि पत्थर की शिलाओं पर अनेक समूचे ग्रन्थ उत्कीर्ण कर दिये जाते थे। जो लोग उन ग्रन्थों की प्रतिलिपि करना चाहते थे वे उन उत्कीर्ण अंशों को स्याही से भर देते थे और उस पर कागज या कपड़ा फैला देते थे और पत्थर से दबा देते थे। इस प्रकार वे उनकी प्रतिलिपि उतार लेते थे। आज भी पत्थरों का उपयोग भवनादि के शिला-न्यास कार्य में, सड़कों के नाम निर्देश में, राजमार्गों पर स्थान की दूरी सूचित करने तथा व्यक्तिगत नामों, आदि में किया जाता है।

ईंटों का भी प्रयोग लिखने की सामग्री के रूप में भारत में होता रहा। मन्दिरों में ईंटों पर ऐसे लेख मिलते हैं। कच्ची ईंटों पर लेख्य विषय को पहले लिख दिया जाता था बाद में उनको पका लिया जाता था। फिर उन्हें यथोचित स्थान पर लगाया जाता था। सभ्यता एवं संस्कृति की खोज में इस प्रकार की सामग्री सहायक सिद्ध होती है।

काष्ठ फलक या लकड़ी का बोर्ड भी लिखने की सामग्री के रूप में प्रयोग किया जाता था। संस्कृत के प्राचीन अनेक ग्रन्थ इन काष्ठ फलकों पर लिखे हुये पाये गये हैं। इनमें धार्मिक ग्रन्थ; कानूनी दस्तावेज आदि भी हैं। लकड़ी की तख्ती पर लिखने की प्रथा अब धीरे-धीरे उठती जा रही है किन्तु अब भी पाटीपूजन करा कर बालक-बालिकाओं का अक्षरारम्भ कराया जाता है।

भारत में लिखने की सामग्री के रूप में सबसे सुलभ भूर्जपत्र (भोजपत्र) (Birth Bark) रहा है। यह हिमालय प्रदेश में बहुतायत से पाया जाता है। भूर्ज नाम के वृक्ष की भीतरी छाल को भूर्जपत्र कहा जाता है। पेड़ से उसको निकाल कर अभीष्ट आकार में काट कर और मुलायम बना कर उसमें सिरकण्डे की कलम और एक विशेष प्रकार की स्याही से लिखा जाता था। इन पत्तों के मध्यभाग में थोड़ा स्थान बिना लिखा हुआ छोड़ दिया जाता था, बाद में पत्रों को बराबर कर के और उसी मध्यभाग में छेद कर के, उसमें डोरी (तागा) डाल दी जाती थी और लकड़ी के समान आकार वाली दो पटरियों के बीच में रख कर उसी डोरी से कस कर बांध दिया जाता था। भूर्जपत्र पर खरोष्ठी लिपि में लिखी 'धम्मपद' की एक प्रति खोतान में पाई गई है जिसका काल द्वितीय या तृतीय शताब्दी माना गया है। भारत में और विदेशों में अनेक हस्तलिखित ग्रन्थालयों में भूर्जपत्र पर लिखित ग्रन्थ पाये जाते हैं। आज भी भूर्जपत्र का प्रयोग यन्त्र-मन्त्र लिखने के लिए किया जाता है। अनार की कलम से भोजपत्र पर विशेष स्याही या लाल चन्दन को घिस कर उसके घोल से पंडित लोग यन्त्र-मन्त्र लिखते हैं। हिन्दुओं की दृष्टि में इसकी पवित्रता आज भी पूर्ववत् बनी हुई है।

भारत में ताड़पत्रों (Palm Leaves) का प्रयोग प्रचुर मात्रा मे होता रहा

है। ताड़ के वृक्ष के पत्तों को काट कर, सुखा कर पानी में मुलायम कर के और उसे पत्थर से हलके-हलके रगड़ कर अभीष्ट आकार में काट लिया जाता था। तब उस पर लिखा जाता था। उनके दोनों सिरों में छेद करके मजबूत तागा पिरो कर बांध दिया जाता था। पढ़ने के समय इसको खोल कर पढ़ा जाता था।

भारत में सोने, चांदी, तांबे, पीतल, लोहे और टिन का प्रयोग भी लेखन-सामग्री के रूप में किया जाता रहा है। इनमें से सोने चांदी का प्रयोग ग्रन्थों को लिखने के लिए बहुत ही कम होता था किन्तु मानपत्रों, उपाधियों, यन्त्रों-मन्त्रों आदि के लिए इनका प्रयोग किया जाता रहा है, ऐसे उदाहरण मिलते हैं।

तांबा एक पवित्र और सस्ती धातु है और इसका प्रयोग स्थायी महत्त्व के अभिलेखों को उत्कीर्ण करने में किया जाता रहा है। ताम्रपत्रों पर उपाधियों, भूमि-दान-पत्रों का उत्कीर्णन प्रचुर मात्रा में होता रहा है। आज भी विशिष्ट व्यक्तियों को विशिष्ट सेवाओं के लिए ताम्रपत्र भेंट किये जाते हैं। ताम्रपत्र पर लिखित कुछ ग्रन्थ भी मिले हैं। ताम्रपत्रों का प्रयोग ग्रन्थ लेखन कार्य के लिए चौथी से बारहवीं शताब्दी तक होता रहा है। तांबे के ठोस टुकड़े को हथौड़े से पीट कर पतला कर लिया जाता है और उसको अभीष्ट आकार में काट लिया जाता है। फिर उन ताम्रपत्रों को साफ कर के उन पर जो कुछ लिखना होता है उसे अच्छी लिखावट में लिख लिया जाता है। उसके बाद कलाकार या स्वर्णकार उन अक्षरों को ताम्रपत्र पर उत्कीर्ण कर देता है।

पीतल के प्लेटों पर लिखावट मन्दिरों में दरवाजों आदि पर और नामपट्टों पर होती रही है। मन्दिरों में बजाये जाने वाले कांस और पीपल के घण्टों पर दान-दाताओं के नाम लिखे हुये मिलते हैं। लोहे के खम्भों पर लिखे अभिलेख और प्रशस्तिपत्र भी मिलते हैं। सूती कपड़े पर लिखने का प्रयोग भी भारत में होता रहा है। आज भी उत्सवों एवं समारोहों के अवसर पर कपड़े पर लिखवा कर उनका प्रयोग किया जाता है। वैदिक ब्राह्मणों के परिवारों में सर्वतोभद्र चक्र, नवग्रह चक्र, मातिका चक्र आदि बना कर पूजा हेतु रखे जाते थे किन्तु ग्रन्थों के लिखने के काम में सूती कपड़ों का उपयोग नहीं के बराबर होता रहा। जैन मन्दिरों में सूती वस्त्रों पर लिखे चौदहवीं शताब्दी के एक-दो ग्रन्थ पाये गये हैं।

चमड़े पर लिखने का कार्य भारत में अमान्य रहा क्योंकि चमड़ा अशुद्ध माना जाता रहा है और धर्मग्रन्थों को चमड़े पर लिखना कल्पनातीत बात थी। यहाँ भोज-पत्रों एवं ताड़पत्रों की अधिकता के कारण चमड़े का उपयोग वैसे भी आवश्यक प्रतीत नहीं हुआ। फिर भी जैसलमेर के जैन पुस्तकालय में 'वृहत्ज्ञान कोष' नामक बौद्ध ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति उपलब्ध है।

भारत में उपर्युक्त लेखन-सामग्री के अतिरिक्त हाथ से बने हुये कागज का निर्माण एवं उसका प्रयोग ईसा पूर्व चौथी शताब्दी से होता रहा है। सिकन्दर महान्

के साथ भारत में ३२७ ई० पूर्व आये हुये ग्रीक लेखक निकोलस ने इसकी पुष्टि की है।

**कागज (Paper)**

कागज के आविष्कार और उसके प्रचुर मात्रा में निर्माण के कारण ज्ञान-विज्ञान के विकास और विश्व की चतुर्मुखी प्रगति में अभूतपूर्व सफलता मिली है। विश्व आज जो कुछ भी है और जिस रूप में है उसमें कागज का महत्त्वपूर्ण योगदान है। भारतीय इतिहासकार डॉ० राजबली पाण्डेय का मत है कि रुई से कागज बनाने का कार्य संसार में सबसे पहले भारत में प्रारम्भ हुआ। ग्रीक लेखक निकोलस के बयान से इसकी पुष्टि होती है। वह सिकन्दर के साथ ईसवी पूर्व ३२७ में भारत आया था। इसका समर्थन डॉ० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा आदि विद्वानों ने भी किया है। किन्तु भोजपत्रों एवं ताड़पत्रों के सुलभ होने और कागज के निर्माण में असुविधा होने के कारण भारतीयों ने इसके विकास की ओर ध्यान नहीं दिया। पाश्चात्य विद्वानों (डगलस, नौरिस, स्डेल) का मत है कि कागज का आविष्कार चीन निवासी ट्‌-साई लुन (T.SAI Lun) ने १०५ ई० में चीन में किया। इधर नवीनतम सूचना के अनुसार चीनी पुरातत्त्ववेत्ताओं को कागज के तीन टुकड़े मिले हैं जो ईसा पूर्व ७५ और ४९ वर्ष के हैं। इससे पूर्व यह माना जाता था कि कागज का आविष्कार सन्‌ १०५ ई० में पूर्वी हान वंश के ट्‌-साई लुन ने किया था। अब मिले कागज के टुकड़े उससे भी डेढ़ सौ वर्ष पहले के हैं। इनमें से सबसे बड़ा टुकड़ा ६.८ सेन्टीमीटर चौड़ा और ७.२ सेन्टीमीटर लम्बा है जो शेन सी प्रदेश में फोंकेंग में मिला है।[1] धीरे-धीरे इसके निर्माण कला का विकास चीनी तुर्किस्तान और तुर्फान में हुआ और अन्त में पाँचवी शताब्दी के अन्त तक पूरे चीन में कागज का निर्माण होने लगा। मुसलमानों ने आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में तुर्किस्तान पर आक्रमण किया। वहाँ एक युद्ध में उन्होंने कागज बनाने की कला जानने वाले कुछ चीनियों को बन्दी बनाया। उनको अपने साथ ले गये। उन्होंने उनसे उस कला को सीखा। इस प्रकार समरकन्द में ७५१ ई० में, बगदाद में ७९३ ई० में, मिस्र में ९०० ई० के लगभग, मुरक्को में १००० ई०, स्पेन में ११५० ई०, इटली में १२७० ई०, नूरेंगबर्ग जर्मनी में १३९० ई०, स्विटजरलैण्ड १४०० ई०, इंग्लैण्ड में १४७४ ई०, फिलाडेलफिया (अमेरिका) में १६९० ई० में कागज निर्माण की कला पहुँच गई।

**भारत में कागज**—भारत में कागज दो प्रकार का बनता है—एक हाथ से और एक मशीन से। हाथ से बनाये गये कागज को हैण्डमेड पेपर कहते हैं और मशीन से बनाये गये पेपर को मशीनमेड पेपर कहते हैं। दोनों का विकास अलग-अलग समय में अलग-अलग विधियों से हुआ। पाश्चात्य विद्वान्‌ डगलस के अनुसार तुर्फान से गिलगिट (कश्मीर) में छठवीं शताब्दी में कागज निर्माण की कला आई। सी० कि०

---

1. दिल्ली के दैनिक 'नवभारत टाइम्स' के १४ मई, १९७९ के अंक में प्रकाशित।

नारायण स्वामी का मत है कि १४२० ई० से १४७० ई० के बीच कश्मीर के नवसेरा स्थान में कागज का निर्माण प्रारम्भ हुआ और बाद में यह उद्योग देश के विभिन्न प्रदेशों में फैला। बाद में मुगल साम्राज्य के पतन के साथ-साथ इस कला की भी अवनति हो गई क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने इसको कोई प्रोत्साहन नहीं दिया। महात्मा गांधी ने हैण्डमेड पेपर के उद्योग को बढ़ाने की ओर ध्यान दिया। उन्होंने १९२५ ई० में अखिल भारतीय ग्राम उद्योग संघ की स्थापना की जिसके अन्तर्गत हैण्डमेड पेपर के निर्माण को बढ़ावा देने के लिए वैज्ञानिक विधियों की खोज का कार्य भी शामिल किया गया। बाद में खादी और ग्राम उद्योग बोर्ड ने भी इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उसने हैण्डमेड पेपर बनाने के केन्द्रों की स्थापना की जिनमें कागज का उत्पादन प्रचुर मात्रा में होने लगा और कई हजार लोगों को इस काम में रोजगार भी मिला। हैण्डमेड पेपर में चिथड़े, रद्दी कागज, गन्ने की खोई, केले का पेड़, सनई, जूट, भूसा, कुछ लकड़ी की छालें, रुई के लिंटर, जेनेवा घास आदि का प्रयोग कच्ची सामग्री के रूप में किया जाता है।

**लुगदी बनाने की विधि**—लुगदी बनाने में निम्नलिखित क्रियाओं को करना पड़ता है :—

(१) अवांछित पदार्थों (बटन, हुक आदि) को चिथड़ों आदि से पृथक् करना क्योंकि लुगदी के साथ रहने पर इनसे हानि की सम्भावना रहती है।

(२) अवांछित पदार्थों की छँटाई हो जाने के उपरान्त सभी सामग्रियों को उपयुक्त साधनों (मशीन आदि) से छोटे-छोटे रूपों में विभक्त करना।

(३) तदुपरान्त सभी सामग्रियों को टंकी के समान बड़े-बड़े बर्तनों में उनकी क्षमता के अनुसार भर कर पानी एवं कास्टिक सोडा के साथ उबालना चाहिये। यह उबालने की क्रिया करते समय पानी को एक दो बार बदल देना चाहिये और उसमें नया कास्टिक सोडा मिलाना चाहिये। ऐसा करने से मूल पदार्थ के उबालने से उसकी मिट्टी, रंग तथा अन्य गन्दगी पानी में घुल कर बाहर निकल जाती है और विशुद्ध लुगदी निर्मित होती है।

(४) सभी कच्ची सामग्रियों की पानी के साथ पिटाई भी करना चाहिये। यह कार्य मशीन अथवा डंडे आदि से किया जा सकता है। इससे पदार्थ कोमल एवं टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं। जब सभी पदार्थ पानी में घुल कर एक रूप में हो जाते हैं तो उसे खुली टंकी आदि में रख देते हैं क्योंकि यह रूप कागज बनाने के योग्य हो जाता है।

**हस्तनिर्मित कागज में प्रयुक्त सामग्री**

ये सामग्रियाँ निम्नलिखित हैं :—

(१) लुगदी रखने की टंकी (२) सांचा (३) नमदा (ब्लैंकेट) (४) प्रेस (५) फिटकरी (६) रबर का चौखटा (डेकल बैंड) (७) सरेस या माड़ी (८) चिकना पदार्थ या लोहा (प्रेस का पाल)।

**क्रियाविधि**—सम्पूर्ण लुगदी को लुगदी रखने की खुली टंकी में भर कर उसके घोल को खूब मिलाना चाहिये। तत्पश्चात् कागज बनाने के सांचे को टंकी में डुबो कर ऊपर उठाना चाहिये। यह सांचा जालीदार होने से पानी तो नीचे बह जाता है और सांचे पर लुगदी के रेशे रह जाते हैं जिनकी एक पतली परत-सी जम जाती है। इसके पश्चात् डेकल बैंड को सांचे में लगी लकड़ी पर रख कर दबाते हैं। डेकल बैंड एक प्रकार से रबर का चौखटा होता है। इसके पश्चात् लुगदी की सतह के साथ ही पूरे सांचे को एक नमदा (ब्लैंकेट) के ऊपर पलट देते हैं और पुनः इसके ऊपर दूसरा नमदा रख देते हैं। इस तरह की क्रिया ४०-५० बार की जाती है। उसके बाद नमदों के मध्य रखी हुई लुगदी के सतहों को प्रेस की मशीन आदि से दबा कर प्रेस करते हैं। ऐसा करने से लुगदी का पानी सूख जाता है और अन्त में एक-एक नमदे को हटा-हटा कर कागज निकालते जाते हैं और सूखने हेतु धूप में रख देते हैं। यहीं पर कागज का सज्जीकरण (ट्रेडमार्क आदि) भी करते हैं। इसके उपरान्त सभी कागजों को एक साथ रख कर उसे विभिन्न मापक माप में काटते हैं और रिम बना कर बिक्री हेतु तैयार करते हैं।

**मशीन मेड पेपर**—मशीन मेड पेपर बनाने के लिए एक ईसाई मिशनरी द्वारा सिरामपुर बंगाल में १८३२ ई० में कागज मिल की स्थापना की गई। बाद में लखनऊ, टीटागढ़, रानीगंज आदि पेपर्स मिलों की स्थापना हुई। मशीन मेड पेपर बनाने में बांस, विभिन्न प्रकार की घास, गन्ने की खोइया (Bagasse), रद्दी कागज, कुछ पेड़ों की लकड़ियां जो मुलायम होती हैं, भूसा, चिथड़े, जूट तथा इनके अतिरिक्त कागज के निर्माण योग्य कई प्रकार के रासायनिक रसों का भी उपयोग किया जाता है जिनमें कास्टिक सोडा, सरफुरिक एसिड, चूना और सलफर आदि उल्लेखनीय हैं।

मशीन से कागज बनाते समय भी लुगदी तैयार की जाती है। इसके पश्चात् मशीन द्वारा कागज बनाने में निम्नलिखित क्रियायें की जाती हैं—

(१) मशीन में ही छिलाई, सफाई, धुलाई, आदि करना।
(२) मशीन में रील को सुखाना—रील की आर्द्रता को कम करना।
(३) सज्जीकरण (साईजिंग) करना।
(४) सुखाना।
(५) काटना।
(६) बांधना।

**कागज निर्माण के कारखाने एवं बोर्ड मिलें**—'१९७४ ई० में भारत में ५९ कागज उत्पादन केन्द्र तथा कागज बोर्ड थे जिनकी उत्पादन क्षमता ९.५३ लाख टन वार्षिक थी।'[1] जिनमें कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं—

---

1. India : a reference annual, 1974. New Delhi, Publication Division, Ministry of Information and Broadcasting, Govt. of India, 1974, p. 239.

बंगाल पेपर मिल, इण्डिया पेपर मिल, टीटागढ़ पेपर मिल, त्रिवेणी लूज पेपर, ओरिएण्ट मिल कलकत्ता। दक्षिण पेपर मिल, अरविंद पेपर मिल, गुजरात पेपर मिल---बम्बई। लखनऊ पेपर मिल, भोपाल पेपर मिल, मैसूर पेपर मिल, आन्ध्र पेपर मिल, मीनाक्षी पेपर मिल, वृजराज नगर पेपर मिल, आदि।

सिटी पेपर एण्ड बोर्ड मिल—कलकत्ता, स्टार पेपर मिल, अपर इण्डिया पेपर मिल, वालन पेपर एण्ड स्ट्रा बोर्ड मिल, रोहतास इण्डस्ट्रीज, डालमिया नगर आदि हैं।

**कागज के प्रकार**—आज मुद्रण आदि प्रक्रियाओं की अत्यन्त अधिक प्रगति के कारण विभिन्न प्रकार की पाठ्य-सामग्री प्रकाशित की जाती है। उनके विभिन्न उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेकानेक प्रकार के कागज बनाये जाते हैं जिनमें से प्रमुख प्रकार निम्नलिखित हैं :—

(१) **न्यूज प्रिन्ट**—यह लकड़ी की लुगदी से बनाया जाता है। यह सभी कागजों से सस्ता और बहुत अधिक शुष्कीय होता है। शुष्कीय अधिक होने के कारण ही यह दैनिक समाचार पत्रों, प्रूफ उठाने आदि के काम में आता है, इस पर पुस्तकीय कार्य नहीं के बराबर होता है।

(२) **कार्ट्रिज**—यह कागज दृढ़ एवं टिकाऊ होता है। यह विशेष रूप से चित्रकारी एवं रेखांकन कार्यों हेतु उपयोगी होता है।

(३) **फैदरवेट**—यह मोटा परन्तु वजन में हलका होता है। पुस्तकीय कार्यों हेतु इसका उपयोग बहुत होता है। इस पर स्याही नहीं फैलती किन्तु विशेष प्रकार के चित्र (हाफटोन आदि) अच्छे नहीं छपते हैं।

(४) **ऐंटीक**—यह कागज मोटा, कोमल, हलका एवं कमजोर होता है। इस पर पुस्तक कम पृष्ठों की होने पर भी बहुत मोटी लगती है।

(५) **डुप्लैक्स**—यह कागज एक ओर खुरदरा एवं दूसरी ओर चिकना होता है। इस कागज की दोनों सतह विभिन्न रंगों की होती हैं। देखने में दो लगती है परन्तु होती एक है। एक ओर लिखा जाता है और दूसरी ओर से स्याही सुखने का काम लिया जाता है।

(६) **टिस्सू**—इसे पतंगी कागज भी कहते हैं। यह पतला एवं कुछ पारदर्शी होता है। इसका पैकिंग, झंडी, पतंग आदि बनाने में बहुत उपयोग होता है।

(७) **आर्ट पेपर**—यह मोटा, चिकना एवं भारी होता है। यह मुद्रण एवं रंगीन छपाई आदि के लिए उपयोगी होता है। प्रायः कलेण्डर इसी पर छपते हैं।

(८) **क्राफ्ट**—यह बांस की लुगदी से बनाया जाता है। यह एक ओर चिकना और दूसरी ओर असमान, लचीला एवं मजबूत होता है। इसे 'बांस का कागज' भी कहते हैं।

(९) कवर—यह प्रायः रंगीन एवं विभिन्न आकार का होता है। इसका उपयोग प्रायः कापी एवं पुस्तकों के आवरण के रूप में करते हैं।

(१०) एम० एफ० प्रिन्ट—इसे मशीन फिनिशिंग पेपर कहते हैं। वह न्यूज प्रिन्ट की अपेक्षा थोड़ा अच्छा होता है। सामान्य पुस्तकों का मुद्रण कार्य इसी पर होता है।

(११) ब्लाटिंग—यह मोटा, खुरदरा तथा शुष्कीय होता है। यह विशेष रूप से हस्तलिखित स्याही सुखाने के काम में आता है। इसे सोखता कहते हैं।

(१२) लेजर—यह मजबूत एवं टिकाऊ होता है। इसका उपयोग लेखा तथा बही खाता आदि के रूप में होता है। यह कागज हल्का नीला, हरा, लाल आदि कई रंग में आता है।

(१३) बैंक पेपर—यह कागज विभिन्न रंगों एवं विभिन्न आकारों में मिलता है। यह प्रायः लेटरपैड, डायरियाँ आदि छपाने के काम में आता है।

(१४) व्हाइट पेपर—यह कागज भी विभिन्न आकारों में प्राप्त होता है। प्रायः पाठ्य-पुस्तकों के प्रकाशन में इसका उपयोग किया जाता है। यह सभी प्रकार की मुद्रण की स्याहियों के लिए उपयोगी होता है।

इसके अतिरिक्त आफसेट, क्रीमलेड, इमीटेशन आर्ट, पोस्टर पैपर आदि भी बनाये जाते हैं जिनका उपयोग विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है।

**कागज के आकार**—कागज के आकार-प्रकार का ज्ञान मुद्रक एवं वाङ्मय-सूचीकार दोनों के लिए आवश्यक है। आजकल कागज के जो प्रकार होवे हैं उनकी लम्बाई चौड़ाई भी निर्धारित है। तद्नुसार ही वे काट कर पैक किये हुये बाजार में मिलते हैं। पुस्तक के लिए विभिन्न प्रकार के कागज जो सामान्य रूप से प्रयोग में लाये जाते हैं, वे निम्नलिखित हैं :—

| आकार का नाम | फुल शीट | डबल | |
|---|---|---|---|
| फुलस्केप | १३½" × १७" | १७" × २७" | २७" × ३४" |
| क्राउन | १५" × २०" | २०" × ३०" | ३०" × ४०" |
| लार्ज पोस्ट | १६" × २१" | २१" × ३३" | ३३" × ४२" |
| डेमी (डिमाई) | १७" × २२½" | २२½" × ३५" | ३५" × ४५" |
| मीडियम | १८" × २३" | २३" × ३६" | ३६" × ४६" |
| रायल | २०" × २५" | २५" × ४०" | ४०" × ५०" |
| लार्ज रायल | २०" × २७" | २७" × ४०" | ४०" × ५४" |
| इम्पीरियल | २२" × ३०" | ३०" × ४४" | ४४" × ६०" |

इनमें से प्रत्येक कागज की एक सीट को एक बार मोड़ने से दो पन्ने एवं चार पृष्ठ हो जाते हैं। इसको फोलियो (Folio) कहते हैं। दूसरी बार मोड़ने पर चार पन्ने एवं आठ पृष्ठ हो जाते हैं, तो इसको (Quarto) कहते हैं। तीसरी बार मोड़ने पर आठ पन्ने एवं सोलह पृष्ठ हो जाते हैं तो इसको (Octavo) कहते हैं। चौथी बार मोड़ने से सोलह पन्ने एवं बत्तीस पृष्ठ हो जाते हैं तो उसे १६ M O कहते हैं। मोड़ने का कार्य सदा लम्बाई की जोर से किया जाता है।

सामान्य कागज जो लिखने के काम में आता है सादा या रूलदार २४ शीट का एक क्वायर होता है। २० क्वायर का एक रिम (Ream) होता है। छपाई वाले कागज के एक रिम में ५१६ शीट या ५०४ शीट (२१ क्वायर) होते हैं। हाथ के बनाये हुये कागज और आर्ट पेपर का ४८० शीट का एक रिम होता है। कागज का वजन कागज के एक रिम तौल में जितने पौण्ड होता है तदनुसार व्यवहार में कहा जाता है। हलका एवं मुलायम कागज का वजन तौल में कम होता है जब कि मोटे कागज एवं आर्ट पेपर का वजन ज्यादा होता है। एक नाम से प्रसिद्ध कागज का वजन एक समान न हो कर अलग-अलग होता है। जैसे क्वाड क्राउन जिसकी नाप ३०" × ४०" होती है उसका वजन प्रति रिम ५० से १२० पौण्ड तक होता है। पुस्तक की जितनी प्रतियाँ छापनी होती है और जिस आकार में छापनी होती है (जैसे डबल क्राउन, डिमाई आदि) तदनुसार प्रकाशक हिसाब लगा कर कागज क्रय करता हैं। जैसे ३२० पृष्ठ की पुस्तक क्वाड क्राउन पेपर पर १००० प्रतियाँ छापनी हो तो १० रिम कागज की आवश्यकता पड़ेगी।

### अन्तर्राष्ट्रीय कागज की माप
### (International Paper Sizes)

आजकल कागज की निम्नलिखित अन्तर्राष्ट्रीय माप मान्य है और यह तीन श्रेणियों में उपयोग की दृष्टि से विभक्त किये गये हैं—

**(ए आकार)**—इसके अन्तर्गत जो पेपर आते हैं, उसका प्रयोग केवल छपाई के लिए ही किया जाता है।

**(बी आकार)**—इसके अन्तर्गत जो पेपर आते हैं, उसका प्रयोग स्टेशनरी कार्य में होता है।

**(सी आकार)**—इसमें जो पेपर आते हैं उसका प्रयोग पोस्टर व कवर पेपर के रूप में होता है।

**ए आकार**

ए ०=८४१ × ११८९ M M.

ए १=५९४ × ८४१ M M

ए २=४२० × ५९४ M M.

ए ३=२९७ × ४२० M M.

ए ४=२१० × २९७ M M.

ए ५ = १४८ × २१० M M.
ए ६ = १०५ × १४८ M M.
ए ७ = ७४ × १०५ M M.
ए ८ = ५२ × ७४ M M.
ए ९ = ३७ × ५२ M M.
ए १० = २६ × ३७ M M.

ऊपर उल्लिखित मापों में से ए ४ माप के कागज का प्रयोग मैगजीन के काम के लिए, ए ५ माप के कागज का प्रयोग कानून की पुस्तक, डायरी आदि में होता है।

**बी आकार**

बी ० = १००० × १४१४ M M.
बी १ = ७०७ १००० M M
बी २ = ५०० × ७०७ M M.
बी ३ = ३५३ × ५०० M M
बी ४ = २५० × ३५३ M M.
बी ५ = १७६ × २५० M M.
बी ६ = १२५ × १७६ M M.
बी ७ = ८८ × १२५ M M.
बी ८ = ६२ × ८८ M M.
बी ९ = ४४ × ६२ M M.
बी १० = ३१ × ४४ M M.

उपर्युक्त मापों में से बी ४ माप के कागज का उपयोग रजिस्टर तथा बी ५ माप के कागज का उपयोग अभ्यास पुस्तिका बनाने में प्रयोग किया जाता है।

**सी आकार**

सी ० = ९१७ × १२९७ M M.
सी १ = ६४८ , ९१७ M M.
सी २ = ४५८ × ६४८ M M.
सी ३ = ३२४ × ४५८ M M.
सी ४ = २२९ × ३२४ M M.
सी ५ = १६२ × २२९ M M.
सी ६ = ११४ × १६२ M M.
सी ७ = ८१ × ११४ M M.
सी ८ = ५७ × ८१ M M.
सी ९ = ४० × ५७ M M.
सी १० = २८ × ४० M M.

उपर्युक्त मापों में प्रायः सी ४, सी ५, सी ६ माप का उपयोग होता है।

**मुद्रणकला (Printing)**

आवश्यकता आविष्कार की जननी है। मुद्रणकला के आविष्कार की आवश्यकता भी इसलिए पड़ी क्योंकि ग्रन्थों को हाथ से लिखना पड़ता था और उसकी प्रतियाँ हाथ से तैयार करने में बहुत समय एवं श्रम लगता था। इस प्रकार ग्रन्थ सुलभ नहीं हो पाते थे और मूल्य देने पर भी तत्काल नहीं मिल सकते थे। विभिन्न देशों में धीरे-धीरे व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होने एवं व्यापारियों तथा व्यक्तियों द्वारा एक-दूसरे देशों की कला, साहित्य और संस्कृति से थोड़ा परिचय होने पर यह उत्कण्ठा लोगों के मन में जगी कि इन सब ग्रन्थों का परस्पर आदान-प्रदान कैसे सुलभ हो? प्रचुर मात्रा में लिखित धर्मग्रन्थों के प्रति जनता का अनुराग था किन्तु वे सुलभ न हो पाते थे। इन सब कारणों से मुद्रणकला का आविष्कार आवश्यक हो गया।

मुद्रणकला एक महत्त्वपूर्ण आविष्कार है। इसका आविष्कार किस देश में प्रथम हुआ, इस सन्दर्भ में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि मुद्रणकला का उद्गम भारत में हुआ और यहाँ से चीन में यह कला पहुँची और वहाँ से मुस्लिम देशों में, फिर यूरोप में पहुँची। मोहनजोदड़ो की खुदाई में कलात्मक मुद्रायें (Seal) मिली हैं जिनसे पुष्टि होती है कि वे ही मुद्रण के प्राचीन रूप हैं। कौटिल्य के 'अर्थ-शास्त्र' में भी और विशाखदत्त के 'मुद्राराक्षस' में मुद्रा शब्द का प्रयोग मिलता है। पाश्चात्य विद्वान् डगलस, अरुण्डेल स्डेल आदि मानते हैं कि चीन में मुद्रणकला का आविष्कार हुआ और प्रथम पुस्तक 'हीरकसुत्त' ८६८ ई० में छपी। वहाँ उस समय बुद्ध धर्म का प्रचार जोरों पर था, इसलिए धार्मिक पुस्तकें और बुद्ध के चित्र छापे गये। 'हीरकसुत्त' में छः शीट हैं। प्रत्येक शीट २½ फिट लम्बा है एवं एक फुट चौड़ा है। यह ग्रन्थ सर ए० स्टीन को १९०७ ई० में प्राप्त हुआ था। चाऊ सियांग क्वांग द्वारा लिखित 'चीन में बौद्ध धर्म का विकास' नामक पुस्तक में उन्होंने लिखा है कि काष्ठ के उत्कीर्ण ठप्पों से छपाई की विधि चीन में भारतवर्ष से सुई काल में आई। बौद्ध भिक्षुओं ने मुद्रण में इस विधि का उपयोग किया। इस पद्धति से पहली पुस्तक ८६८ ई० में 'प्रज्ञा-पारमिता सूत्र' छापी गई। इसकी एक प्रति चीनी तुर्किस्तान के एक मन्दिर की दीवार पर चिपकाई गई अभी कुछ दिन पूर्व प्राप्त हुई है। काष्ठ फलकों से छपाई की यह विधि चीन से यूरोप पहुँची जिससे सुन्दर ताम्र मुद्रण का विकास हुआ।[1] पि शिंग (Pi Shang) नामक चीनी निवासी ने टिन और गीली मिट्टी से टाइप बनाये। १३१४ ई० में लकड़ी तथा १३९२ ई० में धातु के 'टाइप' बनाये गये। जर्मनी में जॉन गुटेनबर्ग ने १४५४ ई० में MAINZ

---

१. चाउ सियांग क्वांग, 'चीन में बौद्ध धर्म का विकास', भारती भण्डार, प्रयाग, २०१७ वि०।

पर ४२ लाइन की बाइबिल की प्रति छापी जिसे गुटेनबर्ग बाइबिल भी कहते हैं। यह पेरिस के राष्ट्रीय पुस्तकालय 'बिब्लियोथिक नेशनल' में सुरक्षित है। ग्रन्थ से अगस्त १४५६ ई० में उसके मुद्रण के पूरा होने का संकेत मिलता है। जर्मनी के MAINZ स्थान से मुद्रणकला इटली १४६५ ई०, फ्रांस १४७० ई०, स्पेन १४७४ ई०, इंग्लैण्ड १४७७ ई०, डेनमार्क १४८२ ई०, स्वीडेन १४८३ ई०, पुर्तगाल १४८५ ई०, रूस १५५३ ई०, भारत १५५६ ई० और अमेरिका १६४० ई० में पहुँची। अन्य देशों में इसके बाद प्रचार हुआ।

**मुद्रणकला की अवस्थाएँ**—पुस्तक की छपाई का काम सीधे टाइप बना कर कागज पर नहीं हुआ। यह कई अवस्थाओं से गुजरते हुए, इस अवस्था में पहुँचा। वे अवस्थायें निम्नलिखित हैं—

(१) लकड़ी के ब्लाक द्वारा कपड़े पर छपाई।

(२) लकड़ी के ब्लाक द्वारा ताश के पत्तों पर छपाई।

(३) लकड़ी के ब्लाकों द्वारा सन्त-महात्माओं के छोटे चित्रों की छपाई (हस्त-लिखित ग्रन्थों में यथोचित स्थानों पर लगाने हेतु)।

(४) ब्लाक द्वारा पुस्तकों की छपाई।

(५) सचल टाइप द्वारा पुस्तकों की छपाई।

ब्लाक प्रिंटिंग १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक होती रही जिसमें चित्रों में धार्मिक ग्रन्थ मुद्रित हुए।

**भारत में मुद्रणकला**—भारत में आधुनिक मुद्रणकला का प्रवेश ६ सितम्बर, १५५६ ई० को हुआ। ईसाई धर्म के प्रचार के लिए मिशनरियों ने भारतीय भाषाओं के माध्यम से भारतीयों को ईसाई मत का ज्ञान कराने के लिए गोवा में १५५६ ई० में पहला प्रेस स्थापित किया। सबसे पहले पुर्तगाली भाषा में दो पुस्तकें प्रकाशित की गयीं। उसके बाद भारतीय भाषाओं के टाइप फेस कास्ट किये गये और तमिल भाषा में एक पुस्तक छापी गई। १५५६ ई० से १६७४ ई० के बीच में अनेक पुस्तकें भारतीय भाषाओं में छपीं। १६वीं शताब्दी से उत्तरोत्तर अंग्रेज एवं फ्रांसीसी ईसाई मिशनरियों ने ईसाई धर्म प्रचार के लिए गोवा, कोचीन, बम्बई, मद्रास, सिरामपुर, फोर्ट विलियम कलकत्ता में प्रेसों की स्थापना की। १७९९ ई० में सिरामपुर में प्रेस की स्थापना हुई। डॉ० विलियम कैरी ने इसमें अथक परिश्रम किया। वहाँ एक टाइप फाउण्ड्री भी स्थापित की गई जिसमें भारतीय भाषाओं के टाइप फॉन्ट बनाये जाने लगे। इस कार्य में पंचानन नामक मिस्त्री एवं उसके दामाद मनोहर ने सराहनीय कार्य किया। उन्होंने बंगाली, नागरी, परसियन, अरेबिक तथा अन्य लिपियों के टाइप बनाये। १८०१ ई० से १८३२ ई० के बीच में सिरामपुर मिशन ने ४० भाषाओं में बारह हजार पुस्तकें प्रकाशित की। उसके बाद धीरे-धीरे भारत में मुद्रणकला का विस्तार होता गया।

**कम्पोजिशन**—विभिन्न प्रकार के टाइप से प्रकाशित होने वाली जो सामग्री तैयार की जाती है, उसे कम्पोजिंग कहते हैं। कम्पोजिटर सामग्री (मैटर) को कम्पोज करते हैं। यह कम्पोजिशन का कार्य दो प्रकार से होता है—

(१) हाथ से।

(२) मशीन से।

पहले को हैण्ड कम्पोजिशन एवं दूसरे को मैकेनिकल कम्पोजिशन कहते हैं। कम्पोजिटर हैण्ड कम्पोजिशन में धातु की बनी एक कम्पोजिंग स्टिक को बायें हाथ में लिए रहता है और लकड़ी की बनी एक ट्रे में से अभीष्ट टाइप को दाहिने हाथ से निकाल-निकाल कर लगाता जाता है। लकड़ी के बने उस लगभग ३२½'' लम्बी, १४½'' चौड़ी, १½'' गहरे ट्रे में बड़े और छोटे अक्षरों के अलग-अलग खाने बने रहते हैं, जिसको अपर केस और लोवर केस कहते हैं। कम्पोजिटर कम्पोजिंग स्टिक भर जाने पर उसको अलग खाली ट्रे में रख देते हैं जिसको 'गैली' कहते हैं। गैली की ट्रे जब भर जाती है तो उसका प्रूफ कागज पर उतार कर प्रूफ रीडर को दिया जाता है। वह हस्तलिखित या टाइप की हुई मूल सामग्री (मैटर) से प्रूफ का मिलान एवं संशोधन करता है। इस प्रकार अन्तिम रूप से प्रूफ शुद्ध हो जाने पर छापने का आदेश (प्रिंट आर्डर) दिया जाता है।

मैकेनिकल कम्पोजिशन का कार्य मशीनों के माध्यम से किया जाता है। यह मशीनें निम्नलिखित प्रकार की होती हैं—

(१) लिनोटाइप, (२) मोनोटाइप, (३) इण्टर टाइप, (४) टाइपोग्रैफ, (५) लुडलो, (६) इनरोड कास्टर, (७) इण्टर टाइप फोटो सेंटर, (८) फोटोन, (९) रोटो फोटो टाइप सेटिंग मशीन, (१०) मोनो फोटो फिल्म सेटिंग, (११) हेंडगो मशीन।

इन सब मशीनों की अपनी-अपनी विशेषतायें हैं।

**टाइप फेस के प्रकार**—मुख्य रूप से टाइप फेस चार श्रेणियों के अन्तर्गत विभाजित किये जा सकते हैं—

(१) गुथिक, (२) रोमन, (३) इटेलिक्स (४) ग्रीक।

**छपाई की मशीन**—विभिन्न प्रकार के मुद्रण कार्य के लिए प्रिंटिंग मशीनों का आविष्कार किया गया है। इन मशीनों को निम्न श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

(१) प्लेटेन, (२) ऑटोमेटिक्स, (३) सिलिण्डर्स, (४) रोटरीज, (५) आफसेट-लीथोग्रैफिक, ग्रेवोर, एक्सरेग्रैफी, एलेक्टोनो ग्रैफिक।

**(१) प्लेटेन मशीन**—प्लेटेन मशीनों की खोज सन् १८५० ई० में जी० पी० जोर्डन ने किया था। भारत में छोटे-मोटे मुद्रण कार्यों में इसी का उपयोग किया जाता है। इनकी बनावट के अनुसार इसे दो भागों में बांटा जा सकता है :

(अ) लाइट प्लेटेन।

(ब) हैवी प्लेटेन (गोल अथवा चौकोर लोहे कपाट प्लेट)।

लाइट प्लेटेन—प्लेटेन हल्का होने के कारण ही इन्हें लाइट (हल्की) प्लेटेन कहा जाता है क्योंकि इस मशीन के प्लेटेन का खुलना तथा बन्द होने का कार्य सीप के समान होता है और इसका आकार भी सीप के घोंघे के समान होता है। इसी कारण इसकी क्रियाविधि को क्लैमशेल क्रिया एवं मशीन को क्लैमशेल सिद्धान्त की मशीन कहते हैं। लाइट अथवा क्लैमशेल मशीनों के कतिपय नाम इस प्रकार हैं—आटो फल्कन, अरब प्लेटेन, गोल्डिंग, जाबर, ग्रिम्मर प्लेटेन आदि।

हैवी प्लेटेन मशीनों में प्लेटेन के साथ-साथ पूरी मशीन भारी होती है। हैवी प्लेटेन मशीनों के मुख्य नाम इस प्रकार हैं विक्टोरिया, कैक्सटन, मोनोपाल, द कोल्ट आदि। इसकी विशेषता यह है कि यह केवल विद्युत् से चलती है, जबकि लाइट प्लेटेन मशीनें पैर एवं विद्युत् दोनों से चलती हैं।

**सिलिण्डर्स मशीनें**—प्लेटेन मशीनों में कागज के दबाव देने का कार्य प्लेटेन करता है परन्तु सिलिण्डर मशीनों में इसके लिए गोल सिलिंडर लगा होता है, जिससे दबाव अधिक होने के कारण छपाई उत्तम होती है। इन्हीं गोल सिलिण्डर के कारण इसे सिलिण्डर मशीन कहते हैं। आजकल यह बहुत उपयोग की जाती है। इसके निर्माता एवं सुधारक क्रमशः कोईनिग (१८१० ई०) तथा जर्मनी के आड्रेफ्रेड-रिक (१८१२ ई०) थे।

**स्याही**—स्याही का भी अपना एक अद्‌भुत इतिहास है। मिस्र के लोगों ने सबसे पहले स्याही का प्रयोग करना सीखा था। इतिहासकारों के मतानुसार सबसे पुरानी स्याही का प्रमाण पैपिरस के ऊपर की लिखाई से मिलता है। ब्रिटिश आजयबघर में ढाई हजार वर्ष पुरानी स्याही रखी हुई है। इस युग के वैज्ञानिकों ने उस युग की स्याहियों को ले कर परीक्षण किये हैं, फिर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि उस जमाने में स्याही मुख्यतः कार्बन द्वारा बनायी जाती थी। स्याही विशेषज्ञ कहते हैं कि प्राचीन काल की स्याही कार्बन में गोंद मिला कर तैयार की जाती थी। आजकल हम लोग जिस 'चाइनीज इंक' का प्रयोग करते हैं, वह भी प्राचीनकाल से चली आ रही है। ईसा पूर्व २५९७ में इस स्याही का आविष्कार किया गया था। यह भी कार्बन से ही बनायी जाती थी।

आजकल प्रयोग में लायी जाने वाली स्याही और प्राचीनकाल की स्याही में कोई समानता नहीं है।

आधुनिक युग में साधारण स्याही दो तत्वों से मिलकर बनती है : 'गलटैनिक एसिड' और 'फेरस सल्फेट'। फेरस सल्फेट को चलती भाषा में 'हीराकण' भी कहते हैं। यह लोहे से निकला लवण है। 'गलटैनिक एसिड' 'गलनैट' नामक फल से निकाला गया एसिड होता है। 'गलनैट' नामक फल विदेशी है।

'ओक' के पेड़ पर 'गॉल वाप्स' नामक एक कीड़ा लगता है। ये कीड़े

'ओक' यानी बांज के पेड़ के पत्तों पर अण्डे देते हैं, जिनसे पत्तों की शिरायें नष्ट हो जाती हैं। तब पेड़ के उस स्थान से रस टपकता है और वही रस जमकर गलनैट बन जाता है। गलनैट को पीस कर एलकोहल के साथ फेंटने पर गलटैनिक एसिड तैयार होता है। स्याही बनाने के लिए पहले गलटैनिक एसिड में फेरांस सलफेट, सलफियूरिक एसिड, गोंद और फेनल मिलाया जाता है। साथ ही एक रंग, जिसका नाम एनिलिन है, मिलाया जाता है। कागज पर लिखने के बाद ही स्याही का सूखना बहुत जरूरी है। स्याही के साथ थोड़ी सी स्पिरिट मिला दी जाती है जिससे जैसे-जैसे हम लिखते जाते हैं वैसे ही स्याही सूखती जाती है।[1]

स्याही का रंग—प्रायः सामान्य रूप के सभी रंगों का ठीक-ठीक नामकरण कठिन होता है क्योंकि नित्य ही नये-नये रंगों का निर्माण होता है तथापि विद्वानों ने इसे मुख्य रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया है—

(१) मौलिक (Primary Colour)—गुलाबी, पीला तथा आसमानी। इसी को प्रायः लोग लाल, पीला और नीला कहते हैं।

(२) माध्यमिक (Secondary Colour)—नारंगी, बैंगनी और हरा।

(३) तृतीय रंग (Tertiary Colour)—बादामी भूरा रंग (रस्सेट), जैतून रंग (ओलिव), नींबुई रंग (सिट्रिन)।

विभिन्न रंगों की स्याही बनाने की आनुपातिक सारणी :

| क्रम सं० | रंग का नाम | आनुपातिक भाग क्रमशः | तैयार रंग |
|---|---|---|---|
| १ | लाल-गहरा पीला | ६:२ | चाकलेट |
| २ | सफेद-काला | १२:३ | सिलेटी |
| ३ | सफेद-काला | १२:१ | भूरा |
| ४ | पीला-लाल बादामी | ४:३ | हरा-बादामी |
| ५ | लाल-हरा | २:४ | पीला-बादामी |
| ६ | लाल काला | १२:१ | लाल-बादामी |
| ७ | नारंगी-सफेद | १:२ | जोगिया |
| ८ | नीला-नारंगी | १:४ | जैतूनी |
| ९ | लाल-सफेद | ४:१ | गुलाबी |
| १० | हरा-पीला | ३:१ | धानी |
| ११ | पीला-नीला | १:२ | हरा |

१. अपरूपा वसु 'स्याही की कहानी' लेख 'अमृत प्रभात' दैनिक समाचार-पत्र जुलाई, १९७९ ई० के आधार पर।

मुद्रण कार्यों में रंगों की स्याही का प्रयोग करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान रखना चाहिये—

(१) कागज का रंग कैसा है।
(२) कागज की सतह।
(३) कागज की शुष्कीय क्षमता कितनी है।
(४) स्याही की सतह की मोटाई कितनी है।
(५) मशीन द्वारा मुद्रण क्रिया के समय कागज पर पड़ने वाला दबाव।

## चित्रण
## (Illustrations)

लिपि के आविष्कार से पूर्व मनुष्य अपने विचारों को चित्रों एवं रेखाचित्रों द्वारा व्यक्त करता था। मन्दिरों की दीवालों पर, गुफाओं में, धार्मिक स्थानों पर चित्रों द्वारा व्यक्त किये गये विचार ऐतिहासिक अनुसंधानों में प्राप्त हुये हैं। लिपिकला के आविष्कार के बाद जब ग्रन्थों को हाथ से लिखा जाने लगा तो कला प्रेमी मानव ने उन ग्रन्थों को सुलेख लिख कर तैयार करने के साथ ही साथ उसके पृष्ठों पर साज-श्रृङ्गार भी करना प्रारम्भ किया। आज भी ग्रन्थों में संग्रहीत अनेक ग्रन्थ इस बात के प्रमाण हैं। सचल टाइप द्वारा मुद्रण कला का आविष्कार होने पर पुस्तकों के साज-श्रृङ्गार की नई-नई विधियों का भी आविष्कार हुआ।

ग्रन्थ का चित्रण या श्रृङ्गार एक कला है। इसके अन्तर्गत रंगों और चाँदी-सोने के साथ पुस्तकों एवं हस्तलिखित ग्रन्थों को चित्रों द्वारा सजाया जाता था। यह भौतिक वाङ्मयसूची (Physical Bibliography) का एक आवश्यक अंग है। पुस्तकालयाध्यक्ष और वाङ्मयसूचीकार को चित्रण के प्रकार, उसके सौन्दर्य की अनुकूलता, प्राचीनता और प्रामाणिकता आदि की जानकारी होनी चाहिये। मिस्र और यूरोप में ऐसे अनेक अलंकृत ग्रन्थ प्राप्त हुये हैं। चित्रकला और ड्राइंग की शैलियों की जानकारी होने से हस्तलिखित ग्रन्थों की तिथि निर्धारण में भी सहायता मिलती है।

मुद्रण कला के आविष्कार के बाद ग्रन्थों के अलंकरण की कला में भी विकास हुआ। अलंकरण की मुद्रित विधियाँ तीन वर्गों में विभाजित की जा सकती हैं—

(१) रिलीफ (Relief)
(२) इन्टैगलियो (Intaglio)
(३) प्लैनोग्रैफी (Flanography)

(१) **रिलीफ**—रिलीफ प्रक्रिया में छवि (इमेज) या लेटर को धातु या लकड़ी से ऊपर अलग विशिष्ट रूप में रखा जाता है। मुख्य रिलीफ प्रक्रिया चार प्रकार की होती है—

(अ) उड कट्स (Wood cuts)
(ब) उड एन्ग्रेविङ्ग (Wood engraving)

(स) लाइन ब्लाक (Line Block) अथवा
जिंकोग्रैफी (Zincography)
(द) हाफटोन (Halftone)

(२) इन्टैगलियो—यह अलंकरण विधि कई प्रकार की होती है—
(अ) लाइन एनग्रेविंग (Line engraving)
(ब) इचिंग (Etching)
(स) ड्राई प्वाइंट (Drypoint)
(द) मेजोटिन्ट (Mezzotint)
(य) अक्वोटिन्ट (Aquatint)
(र) फोटोग्रेव्योर (Photogravure)

(३) प्लैनोग्रैफ—चित्रण निम्न प्रकार से मुख्यतया होता है—
(अ) लिथोग्रैफी (Lithography)
(ब) आफसेट लिथोग्रैफी (Offset lithography)
(स) कोलोटाइप (Collotype)

पुस्तकों की चित्रकारी दो प्रकार की होती है, एकरंगी और बहुरंगी। एक रंग की चित्रकारी के ब्लाक में एक ही प्रकार की स्याही का प्रयोग किया जाता है, जब कि बहुरंगी चित्रों के लिए लीथोग्राफिक प्रथा के द्वारा मल्टीपुल ब्लाक्स का प्रयोग किया जाता है, जिसमें अनेक रंगों की स्याहियाँ अलग-अलग प्रयोग की जाती हैं।

**जिल्दबन्दी (Binding)**

जिल्दबन्दी एक कला है। आधुनिक युग में पुस्तक के छपे फर्मों को क्रमबद्ध करके उसको फीता या डोर या टेप (Tape) या कॉर्ड (Cord) से सिल दिया जाता है। उसके बाद उसकी जिल्द बना कर लगा दी जाती है। ग्रन्थ चाहे हाथ से लिखे हों या मुद्रित हों वे राष्ट्र की बहुमूल्य निधि होते हैं। उनका उपयोग जितना ही अधिक होता है उनकी सुरक्षा के लिए उतना ही अधिक यथासमय मरम्मत और जिल्दबन्दी आवश्यक होती है। लेखन-सामग्री के रूप में भोज-पत्र, ताड़पत्र, कागज और चमड़े आदि का उपयोग होता रहा है। अतः जिस प्रकार की लेखन-सामग्री होती है तदनुसार उसकी मरम्मत और जिल्दबन्दी की व्यवस्था की जानी चाहिए। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थ और प्राचीन आदि मुद्रित ग्रन्थ अब संग्रहालय की वस्तु हो चुके हैं। उपयोग करने की अपेक्षा उनको देखने का तथा ऐतिहासिक मूल्यांकन का महत्व अधिक है।

**जिल्दबन्दी और अध्ययन-सामग्री**

प्रत्येक पुस्तकालय में विभिन्न प्रकार की अध्ययन सामग्री होती है। सुरक्षा की दृष्टि से इन सब की जिल्दबन्दी आवश्यक होती है। पुस्तकों को उधार देने की

सुविधा देने वाले पुस्तकालयों में पुस्तकों की जिल्दबन्दी मजबूत होनी चाहिए। अच्छे मजबूत कपड़े की फुलक्लाथ बाइंडिंग आवश्यक होती है।

संदर्भ ग्रन्थों का उपयोग यद्यपि यदा-कदा होता है किन्तु ये स्थायी महत्त्व के होते हैं। जैसे-जैसे समय बीतता है वे दुर्लभ होते जाते हैं। इसलिए उनकी जिल्दबन्दी विशेष रूप से परिपुष्ट होनी चाहिए।

प्रत्येक पुस्तकालय में पत्रिकाएँ आती हैं और बड़े पुस्तकालयों में उनकी फाइलें भी रखी जाती हैं। ये फाइलें वर्तमान एवं भावी पीढ़ी के शोध छात्रों एवं विद्वानों के लिए महत्त्वपूर्ण और उपयोगी होती हैं। इनकी जिल्दबन्दी भी मजबूत किस्म की होनी चाहिए। पुस्तकालय के अन्दर समाचार-पत्र, पैम्फ्लेट, अखबारों एवं पत्रिकाओं के लेखों की कटिंग और क्लिपिंग तथा मानचित्रों का भी संग्रह किया जाता है। उनके लिए अलग-अलग ढंग से जिल्दबन्दी की जाती है।

कुछ पुस्तकालय में हस्तलिखित ग्रन्थ भी होते हैं। ये दुर्लभ होते हैं। इनको हस्तलिखित ग्रन्थ कक्ष में रखा जाता है। इनको सुरक्षित रखने के लिए भारतीय पुस्तकालयों में प्रायः ग्रन्थ की लम्बाई चौड़ाई से थोड़ी बड़ी अच्छे किस्म की लकड़ी की पटरियाँ बनवा ली जाती हैं। ग्रन्थ को एक कपड़े में लपेट कर और उसे बाँध कर लकड़ी के पटरियों के बीच में रख दिया जाता है। ऊपर एवं नीचे की पटरियों में लम्बाई एवं चौड़ाई की ओर समानान्तर मध्य भाग पर छेद होते हैं। लाल फीता उन छेदों में से डाल कर उससे पटरी को कस कर बाँध दिया जाता है। इस प्रकार ग्रन्थ सुरक्षित रहता है किन्तु हस्तलिखित ग्रन्थों का उपयोग कम होने के कारण और इस रूप में बँधे होने के कारण खराब होने का भय रहता है। समय-समय पर इन ग्रन्थों की जाँच खोल कर भीतर से की जानी चाहिए और उनकी मरम्मत भी होती रहनी चाहिए।

## इतिहास

जिल्दबन्दी की कला का भी अपना इतिहास है। निनेवा में प्राप्त मिट्टी की टेबुलेट ग्रन्थों का आदि रूप थीं। उनको भी सुरक्षित रखने के लिये मिट्टी के झोले-नुमा खोल के भीतर रखा गया था। हस्तलिखित ग्रन्थों के पत्रों को लपेट कर बांस या लोहे के चोगों में रखा जाता था। काठ की पटरियों को ऊपर नीचे रख कर ग्रन्थों को उनके भीतर रख कर बांध दिया जाता था। इस प्रकार सुरक्षा के अनेक उपाय किये जाते थे।

चौथी शताब्दी में जिल्दसाजी एक पेशे के रूप में मानी जाने लगी। जिल्द-साजों ने चमड़े, सिल्क Velvet को कवर के रूप में करना प्रारम्भ किया। ग्रन्थ और कवर को विविध प्रकार के अलंकरण द्वारा आकर्षक बनाया जाता था। चमड़े, रत्न, हीरे, मोती, हाँथीदांत, फूलपत्ती, बेल-बूटों और ठप्पों का प्रयोग किया जाता था। कवर को अधिक आकर्षक बनाने के लिये सोने और रत्नों का भी प्रयोग कवर पर किया जाने लगा। ऐसी दशा में पुस्तकें और मँहगी हो गयीं और सुरक्षा की

दृष्टि से उन्हें बड़ी सावधानी से आलमारियों में बन्द कर के रखा जाने लगा। ईसाई धर्म प्रचारक संस्थाओं के पुस्तकालयों में स्वर्णकारों को आमंत्रित करके महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों पर कलात्मक विधि से जिल्दबन्दी करायी जाती थी।

सोलहवीं शताब्दी से सुनहरा अलंकरण (Gold tooling) प्रारम्भ हुआ। सौंदर्य पर विशेष और जिल्दबन्दी पर कम ध्यान दिया जाने लगा। बाद में जिल्दसाजों ने अपनी-अपनी पहचान के चिह्न (आइडेन्टिटी मार्क) देने की प्रथा चालू की। इटली में गोल्ड टूलिग १४८० ई० में और फ्रांस में पन्द्रहवीं शताब्दी में प्रारम्भ हुई। ग्रन्थों के संग्राहकों के प्रोत्साहन से इस कला को बहुत बल मिला। इसके फलस्वरूप जिल्दबन्दी की अनेक शैलियाँ प्रचलित हुईं जैसे काटेज स्टाइल आदि। अठारहवीं शताब्दी में रोजर पेनी (Roger Peyni) ने जिल्दबन्दी की कला में सबसे अधिक ख्याति प्राप्त की। १८२० ई० के लगभग ऐसे सस्ते कपड़े उपलब्ध होने लगे जिन पर लेटरिंग हो सके। उन कपड़ों को 'पब्लिशर्स क्लाथ' कहा जाता है।

कागज एवं मुद्रण कला के आविष्कार के सुनहरे संयोग ने ग्रन्थों को सस्ते मूल्य में सुलभ करके अभूतपूर्व क्रांति की। तब से जिल्दबन्दी की कला ने एक नया मोड़ ले लिया। ग्रन्थों का उपयोग करने की सुविधा सबके लिए सुलभ होने लगी। तब जिल्दसाजी की कला का वह बहुमूल्य एवं कलात्मक रूप नहीं रह गया। जिल्दसाजी के लिये नयी-नयी सामग्री और नयी-नयी मशीनों का आविष्कार हुआ, जिनकी सहायता से थोड़े समय में बहुसंख्यक ग्रन्थों की जिल्दबन्दी होने लगी। इस प्रकार से जिल्दबन्दी की कला का यन्त्रीकरण हो गया है।

जिल्दबन्दी के सम्बन्ध में निम्नलिखित क्रम से जानकारी अपेक्षित है :—

(१) प्रक्रिया

(२) सामग्री

(३) प्रकार

इनका परिचय इस प्रकार है :—

(१) प्रक्रिया—आधुनिक जिल्दसाजी में अनेक छोटी और बड़ी क्रियायें की जाती हैं। इन क्रियाओं को दो भागों में विभाजित किया गया है। फार्वडिङ्ग और फिनिशिङ्ग।

फार्वडिङ्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित क्रियायें आती हैं :—

(१) भाँजना या घड़याना (Folding)

(२) मिसिल उठाना अर्थात् भाँजे हुए फर्मों को उनके नम्बर के अनुसार रखना (Collating)

(३) सिलाई (Stiching)

(४) पोस्तीन या पुस्तक के पुस्त पर सरेस लगाना (Fixing the end-paper and gluing the book)

(५) काटना (Trimming the edges)

(६) पीठ को गोल करना या कगर निकालना (Backing)

(७) जिल्द बनाना और पुस्तक पर जड़ना (Casing)

फिनशिंग के अन्तर्गत पुस्तक की सजावट और कवर की सजावट के लिए निम्नलिखित क्रियायें आती हैं और पुस्तक की सजावट के लिए निम्नलिखित विधियाँ अपनाई जाती हैं :—

(१) पुस्तक के सिरों पर सोना चढ़ाना।

(२) पृष्ठों के किनारों पर चित्रकारी करना।

(३) पृष्ठ के सिरों को रंगना।

(४) पुस्तक के पृष्ठ पर छिड़काव की रंगाई करना।

(५) धब्बों से सजावट करना।

(६) पृष्ठों के सिरों पर मार्बल लगाना।

कवर की सजावट के लिए निम्नलिखित विधियाँ अपनाई जाती हैं—

(१) पुस्तक के कवर पर छिड़काव करना।

(२) चमड़े के कवर पर मार्बल लगाना।

(३) सोने से नाम लिखना (Gold tooling)

(४) चमड़े की जिल्द पर फिनिशिंग करना।

कवर की सजावट जिसमें सोने का प्रयोग नहीं होता, उसको ब्लाइंड फिनिशिंग कहते हैं। इसमें पुस्तक की जिल्द की सजावट सादी की जाती है और चमड़े के कवर पर धारियाँ, अक्षर, बेल-बूटे आदि चमड़े के ऊपर सादे ही छाप दिये जाते हैं। मोरक्को काफ और भेड़ के चमड़ों की जिल्द पर फिनिशिङ्ग की अलग-अलग विधियाँ होती हैं। कपड़े और मखमली जिल्द पर ग्लेयर लगाने में सावधानी बरती जाती है। हाफ लेदर जिल्द, समूचे चमड़े की जिल्द आदि पर फिनिशिंग के अलग-अलग ढंग होते हैं। कपड़े की जिल्दें तो प्रायः सजाई जाती हैं। अधिक से अधिक उन पर सुनहरे अक्षरों से नाम लिख दिये जाते हैं किन्तु चमड़े की जिल्दों पर रंग का छिड़काव, सुनहरे अक्षरों से लिखाई, अनेक प्रकार के बेल-बूटे और पत्तियाँ भी बनाई जाती हैं। चमड़े की जिल्दों पर मार्बल भी बनाये जाते हैं।

सामग्री—जिल्दबन्दी चाहे किसी भी प्रकार की हो वह तभी अच्छी कही जायेगी जब कि वह टिकाऊ हो। टिकाऊ होने के लिए उच्चकोटि की सामग्री का प्रयोग किया जाना चाहिए जिसमें पुस्तकें अधिक से अधिक समय तक सुरक्षित रह सकें। फार्वर्डिङ्ग के लिये सिलाई, स्तर और कवर की सामग्री तथा फिनिशिंग के लिए उसके उपयोग में आने वाली सामग्री मजबूत होनी चाहिए। सिलने के लिए मजबूत तागा, टेप, कॉर्ड आदि की आवश्यकता पड़ती है। लीनेन का बना हुआ तागा सिलाई के लिए मजबूत होता है। तागा बिना माड़ी का होना चाहिए। अब नैलोन के तागों से भी सिलाई होती है। फार्वर्डिङ्ग के अन्तर्गत स्तर और कवर की

आवश्यकता पड़ती है। कवर के लिए चमड़ा, कपड़ा, गत्ता, लेई, सरेस आदि आवश्यक होता है। विभिन्न प्रकार के चमड़े और कपड़े आवश्यक होते हैं। कवर के लिए विशेष प्रकार के कपड़े और कागज बाजार में मिलते हैं। प्लास्टिक का भी उपयोग अब होने लगा है। जिल्दबन्दी की सारी मजबूती विशेष रूप से गत्ते पर निर्भर करती है। फिनिशिंग सामग्री के अन्तर्गत रासायनिक द्रव्य, फिनिशिंग पाउडर, गोंद और वार्निश की आवश्यकता पड़ती है जो उत्तम कोटि का होना चाहिए।

**सामान**

विकसित देशों में जिल्दबंदी मशीनों के द्वारा की जाती है जब कि अविकसित एवं पिछड़े देशों में जिल्दसाज या दफ्तरी लोग कुटीर उद्योग के रूप में जिल्दबंदी का काम करते हैं। वे जिल्दबन्दी के लिए जो सामान रखते हैं, उनमें सलेम, हथौड़ा, प्रेस का दाब, सिलाई का प्रेस या तानी, शिकंजा या लाइंग प्रेस, चर्खी, मेज या ढांचा कैंची, चाकू, कटिंग बोर्ड, आरी, सुम्भी, कात, पंचिंग मशीन, गुनिया, कम्पास, हालोपंच, आइलटपंच, रॉपी, स्ट्राबोर्ड, कटर एवं फुटकर सामान जैसे-एक दो छोटी-मोटी कैंचियाँ, छोटी बड़ी सुइयाँ, लेई रखने का बर्तन, सरेस पकाने का बर्तन, अंगीठी, नुकीली छुरी, औजार तेज करने का पत्थर, ब्रश, नापने के लिए परकार आदि।

फिनिशिङ्ग के सामान प्रमुख रूप से ये हैं :—

फिनिशिंग प्रेस (शिकंजा) स्टोव, फिलेट या फिरकी, पैलेट, पालिशर, बेलबूटे तथा पत्तियों के ठप्पे, सोने के वर्क आदि। इसके साथ ही सोने की फिनिशिंग की तैयारी में अंडे की सफेदी, लेई मिला पानी, साइव, जेलिटीन, सिरका, एसेटिक एसिड, ऑलिव आयल, सोने के वर्क, वर्क रखने की गद्दी, चाकू, स्प्रिट, वार्निस आदि।

सोना चढ़ाने के लिए निम्नलिखित सामान की आवश्यकता होती है :—शिकंजा या लेइंग प्रेस, कटिंग बोर्ड, बर्निशर—एक चौड़े मुँह का और एक पतले मुँह का घोटाई के लिए, सोने के वर्क रखने की एक गद्दी (कुशन), चाकू, स्क्रेपर (पृष्ठों के सिरों को कुचलने के लिए), पतला ब्रश, सरेस कागज, तश्तरी, स्पंज, एक ढक्कनदार बर्तन, एक लम्बा मोटा ब्रश (अंडे की सफेदी लगाने के लिए), थोड़ा सा काला शीशा (Lead), लाल खरिया (Armenion Bole)। अंडे की सफेदी अंडे से निकाल कर चौगुने पानी में डाल कर, कपड़े से छान कर, उसमें एक चुटकी नमक या सिरका डाल कर फेंटते हैं। जब फेन उठने लगता है तब उस फेन को अलग करके शेष अंश को बोतल में भर कर रखते हैं।

प्रकार—जिल्दबंदी कई प्रकार की होती है उनमें से निम्नलिखित मुख्य हैं—

(१) पुस्तकालय जिल्दबन्दी (लाइब्रेरी बाइंडिंग)

(२) प्रकाशकीय जिल्दबन्दी (पब्लिशर्स बाइंडिंग)

(३) संस्करण जिल्दबन्दी (एडीशन बाइंडिंग)

(४) केस जिल्दबन्दी (केस बाइंडिंग)

(५) अतिरिक्त लेटर प्रेस जिल्दबन्दी (इक्स्ट्रा लेटर प्रेस बाइंडिंग)

(६) चतुर्थांश जिल्दबन्दी (क्वार्टर बाइंडिग)

(७) त्रिचतुर्थांश जिल्दबन्दी (थ्री क्वार्टर बाइंडिग)

(८) पूर्ण जिल्दबन्दी (परफेक्ट बाइंडिग)

(९) अर्द्ध जिल्दबन्दी (हॉफ बाइंडिग)

(१०) पूर्ण पुस्तकालय जिल्दबन्दी (परफेक्ट लाइब्रेरी बाइंडिग)

(११) पुस्तिका जिल्दबन्दी (पैम्फ्लेट बाइंडिग)

(१२) रिक्त जिल्दबन्दी (ब्लैंक बाइंडिग)

इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

पुस्तकालय में पुस्तकों का उपयोग सबसे अधिक होता है। उनकी जिल्दबन्दी मजबूत एवं टिकाऊ होनी चाहिए, इसलिए पुस्तकालय की पुस्तकों की जिल्दबन्दी में उत्तम कोटि का गत्ता, मजबूत सिलाई, उत्तम गोंद तथा जिल्दबन्दी की अन्य सामग्री का उपयोग किया जाना चाहिए। इसका कवर चमड़े, लीनेन, बकरम आदि मजबूत सामग्री का होना चाहिए। प्रकाशक लोग पुस्तकों की जो जिल्दबन्दी कराकर बिक्री के लिए आगे बढ़ाते हैं, उसको प्रकाशकीय जिल्दबन्दी कहते हैं। यह प्रायः सबसे सस्ते प्रकार की होती है किन्तु अब कुछ प्रकाशक पुस्तकालय के लिए मजबूत जिल्दबन्दी कराते हैं। विदेशों में प्रकाशित पुस्तकों की जिल्दबन्दी प्रायः उत्तम कोटि की होती है।

किसी एक पुस्तक के एक संस्करण की जितनी प्रतियाँ छापी जाती हैं उनकी एक सामान शैली में जिल्दबन्दी संस्करण जिल्दबन्दी कहलाती है।

पुस्तक के नाप के हिसाब से उसकी जिल्द पूर्ण रूप से अलग तैयार करके उसको उसके पुस्तक पर लगा देते हैं। ऐसी जिल्दबन्दी को केस वर्क या केस जिल्दबन्दी कहते हैं।

वर्तमान समय में डीलक्स जिल्दबन्दी को अतिरिक्त लेटर प्रेस जिल्दबन्दी कहते हैं। यह जिल्दबन्दी उत्तम कोटि का मुरक्को चमड़ा, मजबूत इंड पेपर, किनारा सजाया हुआ, सुनहरी फिनिशिंग, जुजबन्दी सिलाई तथा अन्य विशेषताओं से युक्त होती हैं।

चतुर्थांश जिल्दबन्दी में पुस्तक के पीठ एवं उसके आसपास का कुछ भाग किसी भिन्न सामग्री से कवर किया रहता है और जिल्द के शेष भाग पर अलग सामग्री का कवर होता है।

त्रि-चतुर्थांश जिल्दबन्दी में पीठ एवं उसके आस-पास का भाग और जिल्द के चारों कोने एक मजबूत कवर से मढ़े जाते हैं और जिल्द का शेष भाग अलग सामग्री से बनाया जाता है।

जिल्दबन्दी-बकरम, कपड़ा या चमड़े आदि में से किसी एक सामग्री से पूरी पुस्तक की जिल्दबन्दी को पूर्ण जिल्दबन्दी कहते हैं।

अर्द्ध जिल्दबन्दी में पुस्तक के पीठ एवं उसके किनारों पर चमड़ा लगाया जाता है और कपड़ा या बकरम शेष भाग पर लगाया जाता है।

पूर्ण पुस्तकालय जिल्दबन्दी यह नाम बहुत भ्रामक है। यह जब ढीली हो जाती है तो उसके पन्ने गिर जाते हैं। पेपर बैक में ऐसी जिल्दबन्दी की जाती है।

पुस्तिकाएँ या बहुत छोटी पुस्तिकाओं के समूह की जिल्दबन्दी को पैम्फलेट बाइंडिंग कहते हैं। यह सादी होती है। इसके किनारे को स्टिच कर दिया जाता है और उसके बाद हल्का बोर्ड (गत्ता) और हल्के वजन का कपड़े का कवर लगा देते हैं और कोई साज-सज्जा नहीं करते हैं।

व्यापार की एकाउन्ट्स बुक्स जिनमें मैटर कम छपा होता है और पृष्ठों का अधिकांश भाग सादा रहता है और रूल खींचे होते हैं उसकी जिल्दबन्दी को रिक्त जिल्दबन्दी कहते हैं।

आज कल एक विशेष प्रकार की सस्ती जिल्दबन्दी होती है जिसको पेपर बैक जिल्दबन्दी कहते हैं। इसका प्रचलन बोस्टन सोसाइटी ने १८३१ ई० में किया। पुनः मुद्रित लेख तथा कथा साहित्य तथा पापुलर सीरीज की पुस्तकें आजकल बहुत बड़ी संख्या में पेपर बैक बाइंडिंग होकर आ रही हैं।

वाङ्मयसूची के विवरण में जिल्दबन्दी कैसी है, इसका भी उल्लेख किया जाता है। इसके अतिरिक्त किसी विशिष्ट शैली की जिल्दबन्दी से तिथिविहीन ग्रन्थों का काल निर्धारण करने में भी सहायता मिलती है। अतः वाङ्मयसूचीकारों को जिल्दबन्दी सम्बन्धी जानकारी रखना आवश्यक है।

□ □

अध्याय ४

# आलोचनात्मक या विश्लेषणात्मक वाङ्मयसूची

## (ANALYTICAL OR CRITICAL BIBLIOGRAPHY)

### परिचय

"वैश्लेषिक या समीक्षात्मक ग्रन्थ सूची वह है जिसके अन्तर्गत पुस्तक के भौतिक स्वरूप की जांच की जाती है जिससे यथेष्ट रूप से पुस्तक के निर्माण एवं उसके ऐतिहासिक परिवेश का पता चलता है।"[1]

इस प्रकार की वाङ्मयसूची का उद्देश्य ग्रन्थ की शारीरिक परीक्षा से है। इसके अन्तर्गत मुख्य पृष्ठ पर दिये गये हाफ टाइटिल से ले कर मुद्रक की पुष्पिका (Colophon) तक का अध्ययन किया जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रन्थ जिन भिन्न प्रक्रियाओं से हो कर गुजरता है और अन्त में ग्रन्थ के रूप में सामने तैयार हो कर आता है, उन सब का विश्लेषण किया जाता है। इसके उत्पादन की प्रक्रिया में कहाँ क्या अपूर्णता रह गई है, इसका ज्ञान इस विश्लेषण से होता है। इसीलिए इस प्रकार की वाङ्मयसूची को ग्रन्थों की भौतिक परीक्षा (Physical examination of books) के रूप में परिभाषित किया गया है। वाङ्मयसूचीकार के सामने ग्रन्थों के संलेख किसी विशिष्ट विषय पर जब एकत्र हो जाते हैं तो उन संलेखों का परस्पर अलगाव करना आवश्यक होता है। यह कार्य इस प्रकार की वाङ्मयसूची ही करती है। आधुनिक पुस्तकों के संलेख बनाने में लेखक, ग्रन्थ-नाम, प्रकाशक और प्रकाशन वर्ष, आदि सूचनायें प्रायः मिलती रहती हैं। राष्ट्रीय वाङ्मयसूचियों के प्रकाशन ने इस कार्य को सरल बना दिया है। लेकिन प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों एवं आदि मुद्रित ग्रन्थों में ऐसी अनेक समस्यायें आती हैं। कुछ ग्रन्थों में टाइटिल पेज तक नहीं होते। ग्रन्थकार का, रचना काल का और लिपि काल तक का पता ठीक से नहीं लग पाता है। आदि मुद्रित ग्रन्थों में भी किसी-किसी ग्रन्थ के मुद्रक, मुद्रण-स्थान, मुद्रण वर्ष, आदि का पता नहीं चलता है किन्तु इन आधारभूत तथ्यों का पता लगाना और संलेख में उनका उल्लेख करना आवश्यक होता है। यह कार्य वाङ्मयसूचीकार के विस्तृत ज्ञान, सूझ-बूझ, अनुभव, खोज और धैर्य पर निर्भर करता है। इसके लिए वह विशेषज्ञों से भी सहायता लेता है। प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों और प्राचीन मुद्रित ग्रन्थों की कुछ समस्याओं के सम्बन्ध में अनेक विवाद उठ खड़े हुये हैं और उनका समाधान भी किया गया है। कुछ ग्रन्थसंग्राहकों (Book Collectors) ने

---

१. इन्साइक्लोपीडिया आफ लाइब्रेरी एण्ड इन्फार्मेशन साइन्स, खण्ड २, पृष्ठ ४१३।

अनेक ग्रन्थों को अति प्राचीन बताते हुये उनका अधिक से अधिक मूल्य वसूल करना चाहा था। ग्रन्थ-उत्पादनकर्त्ताओं ने भी जाली संस्करण छाप कर और कभी-कभी मूल संस्करण पर ही जाली मुद्रणांक (Imprint) छाप कर बड़ा भ्रम पैदा किया किन्तु आलोचनात्मक या विश्लेषणात्मक पद्धति द्वारा परीक्षण करने पर ऐसी जालसाजी की कलई खुल गई। इस वाङ्मयसूची के निर्माण में वाङ्मयसूचीकार को मुद्रणकला, कागज के प्रकार, जिल्दबन्दी तथा ग्रन्थों की शृंगारिक प्रथा के ज्ञान की भी आवश्यकता है। यह ज्ञान ऐसा मापदण्ड है जिसके द्वारा भ्रम पैदा करने वाली समस्त समस्यायें सुलझ जाती हैं। किसी ग्रन्थ को मध्यकालीन प्रचलित कागज पर तत्कालीन टाइप में छाप कर उस पर यदि किसी पुराने प्रकाशक, प्रेस का नाम और जाली पुराना प्रकाशन वर्ष छपा दिया जाता है तो ऐसी ठगी और जालसाजी का भण्डाफोड़ कागज, टाइप, जिल्दबन्दी सम्बन्धी विशिष्ट ज्ञान के द्वारा ही हो सकता है और आगे भी होता रहेगा। इस प्रकार विश्लेषणात्मक या आलोचनात्मक वाङ्मयसूची ग्रन्थ की सभी दशाओं पर प्रकाश डालती है। यह किसी भी प्रलेख के अध्ययन एवं अनुसंधान में सहायता करती हैं। यह तिथिविहीन (Undated) ग्रन्थों की तिथि (Date) निर्धारित करती है। यह संदिग्ध लेखक और अज्ञात लेखक की कृतियों के मूल सही लेखक का पता लगाती है। यह कृति के संस्करणों में से प्रामाणिक संस्करण का भी निर्णय कर के सम्पादकों और आलोचकों को सहायता करती है। यह किसी भी ग्रन्थ की प्रति की पूर्णता एवं अपूर्णता का निर्णय करती है। अतः आधुनिक काल में इस प्रकार की वाङ्मयसूची अत्यन्त उपयोगी होती है।

### (क) पाठालोचनात्मक वाङ्मयसूची (Textual Bibliography)

विश्लेषणात्मक वाङ्मयसूची के अन्तर्गत वर्णनात्मक वाङ्मयसूची (Descriptive Bibliography) ग्रन्थों के बाह्य रूपों से सम्बन्धित होती है तथा पाठालोचनात्मक वाङ्मयसूची ग्रन्थों के आन्तरिक रूप अर्थात् उसमें वर्णित विषय (Contents) से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार यह पाठालोचनात्मक वाङ्मयसूची पुस्तक के आन्तरिक रूप (Form) का अध्ययन करती है और विश्लेषणात्मक वाङ्मयसूची का एक प्रकार से प्रयोगात्मक रूप (Practical Form) है। इसका उद्देश्य पुस्तक के मूल पाठ (Text) की शुद्धता और पूर्णता का निर्णय करना है। हस्तलिखित ग्रन्थ से मुद्रित ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत किसी भी ग्रन्थ के सम्बन्ध में प्रत्येक तथ्य की खोज और उसकी व्याख्या यह वाङ्मयसूची करती है। फर्गुसन महोदय ने इसीलिए इस वाङ्मयसूची को पुस्तक का जीवन चरित (Biography of the book) कहा है। यहाँ यह भी प्रश्न उठता है कि इस प्रकार की वाङ्मयसूची पुस्तकालयाध्यक्षों और वाङ्मयसूचीकारों को नहीं बनानी चाहिये क्योंकि यह कार्य साहित्यिक समालोचकों (Literary critics) एवं सम्पादकों का है किन्तु ऐसी बात नहीं है। एक वाङ्मयसूचीकार, ग्रन्थ उत्पादन प्रक्रिया के विषय में साहित्यिक

समालोचकों से अधिक जानकारी रखता है। वह जानता है कि किसी लेखक द्वारा लिखित हस्तलिखित ग्रन्थ की प्रतिलिपि तैयार करने से ले कर, प्रेस की विविध टेकनिकल प्रक्रियाओं से गुजर कर मुद्रित रूप में जब ग्रन्थ सामने आता है तो सावधानी बरतने पर भी उसमें अनेक त्रुटियाँ रह जाती हैं। जैसे—मूल प्रति के किसी शब्द का गलत पढ़ लिया जाना, कहीं पर गलत टाइप लग जाना, किसी शब्द के अशुद्ध उच्चरित रूप का छप जाना, संशोधित प्रूफ में मार्क की गई गलतियों का पूरी तरह सही न किया जाना, आदि ऐसी ही त्रुटियाँ हैं। एक ही ग्रन्थ के विभिन्न संस्करणों तथा विभिन्न प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित एक ही ग्रन्थ के संस्करणों और लिपिकारों द्वारा प्रतिलिपि किये गये हस्तलिखित मूल ग्रन्थों में भी त्रुटियाँ रह जाती हैं। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की विभिन्नता एवं पाठभेद (Variation) हो जाते हैं। वाङ्मयसूचीकार ऐसी त्रुटियों को सूचीकारों और सम्पादकों की अपेक्षा अधिक सरलतापूर्वक पकड़ लेता है और उसको संशोधित कर सकता है। उसके बाद साहित्यिक आलोचकों का मार्ग प्रशस्त हो जाता है और उस पुस्तक के लेखक के विषय में अपना विचार प्रकट कर सकता है। इस प्रकार पाठालोचनात्मक वाङ्मयसूची का यह परिश्रम विशेष रूप से श्रेण्य ग्रन्थों (Classics) के सम्पादन में, तिथिविहीन ग्रन्थ की तिथि निर्धारण में, ग्रन्थ के विभिन्न संस्करणों के मूल्यांकन में सहायता करता है। इस प्रकार जैसा कि डॉ० ग्रेग (Greg) ने कहा है 'वाङ्मयसूचीकार द्वारा इस वाङ्मयसूची का प्रस्तुतीकरण पाठालोचन कार्य की तीन चौथाई समस्याओं का समाधान कर देता है।' अतः यह कहा जा सकता है कि वाङ्मयसूची पाठालोचन का मेरुदण्ड है।

आलोचनात्मक वाङ्मयसूची और पाठालोचन इन दोनों में बहुत अन्तर है। आलोचनात्मक वाङ्मयसूची वाङ्मयात्मक खोज (Bibliographical Research) द्वारा विश्लेषण ग्रन्थ के भ्रष्ट पाठ को ठीक करती है। इस प्रकार जब आलोचनात्मक वाङ्मयसूची का कार्य समाप्त हो जाता है तब पाठालोचन का कार्य प्रारम्भ होता है। फिर भी किसी ग्रन्थ के मूल पाठ को शुद्ध और निर्दोष रूप में निर्धारित करने का कार्य पाठालोचक का भी है। संदेह की स्थिति में उसको स्वयं भी निर्दोष मूलपाठ पाठालोचन के सिद्धान्तों के अनुसार करना चाहिये।

पाठभेद (Variant)—आदि मुद्रित ग्रन्थों (Incunabula) के एक ही संस्करण में अनेक स्थानों पर पाठभेद (Variant) पाये जाते हैं। इससे साहित्यिक सम्पादकों को सही पाठ निर्धारण में परेशानी होती है। ऐसी त्रुटियाँ एक ही संस्करण की पुस्तकों में भी कुछ हो जाती हैं, कुछ में नहीं भी होती हैं। इसका कारण यह है कि छपाई करते समय फर्मे में कोई टाइप उखड़ जाता है तो आलसी और असावधान मशीन मैन जो भी टाइप पास में मिला उसी को लगा देता है। इससे

गलती हो जाती है। कभी-कभी पुस्तक छप जाने पर लेखक एक प्रति ले कर उसको शुद्ध कर देता है किन्तु प्रकाशक तदनुसार सभी प्रतियाँ शुद्ध नहीं कराता। उसके द्वारा नियुक्त व्यक्ति यत्र-तत्र कुछ संशोधन छोड़ भी देता है। आजकल पुस्तक छपते समय मशीन को रोक कर कोई संशोधन फर्मे में करने से आर्थिक हानि होती है। अतः लेखक पुस्तक छपने के बाद पुस्तक को पढ़ कर एक अशुद्धि-पत्र तैयार करता है जिसको छाप कर पुस्तक में लगा दिया जाता है।

**पत्रादि विवरण (Collation)**

ग्रन्थों के पत्रादि विवरण में उस कृति की पहिचान करना, संस्करण को पहचानना, प्रथम संस्करण का निर्णय करना, संस्करण का गलत मुद्रण-वर्ष छाप देने पर उसका सही वर्ष निर्धारित करना, आदि समस्यायें आती हैं। वाङ्‌मयसूचीकार को इन सब समस्याओं का समाधान करना पड़ता है।

किसी कृति का परिचय प्राप्त करने के लिए वाङ्‌मयसूचीकार सामान्य रूप से ध्यानपूर्वक उसके टाइटिल पेज, पुष्पिका और मुद्रणांक को देख कर आवश्यक तथ्यों का पता लगा लेता है। कभी-कभी ग्रन्थकार का नाम किसी ग्रन्थ में नहीं मिलता अथवा समर्पण पृष्ठ पर नीचे संक्षिप्त में मिलता है। कोई-कोई ग्रन्थकार छद्म नाम से लिखते हैं जैसे—'एक भारतीय आत्मा', 'एक इतिहास प्रेमी', 'एक किताबी कीड़ा' आदि। कभी-कभी अज्ञात नाम से ग्रन्थकार लिखता है। इसके निर्णय में जीवनी कोश (बाइयोग्रेफिकल डिक्शनरी) से सहायता मिलती है। यदि उससे सहायता नहीं मिलती है तो वाङ्‌मयात्मक खोज (बिब्लियोग्रेफिकल रिसर्च) और मूल अनुसंधान कर के निश्चय करना पड़ता है। कभी-कभी एक ही ग्रन्थ में एक या दो से अधिक ग्रन्थ सम्मिलित रहते हैं। कभी-कभी तो पुराने हस्तलिखित ग्रन्थों में एक ही क्रम में अनेक ग्रन्थ लिखे हुये, एक ही ग्रन्थ में, विभिन्न लेखकों के मिलते हैं। उनके पृष्ठांक आदि से अन्त तक एक क्रम में होते हैं। वे ज्यों के त्यों बाद में छाप दिये जाते हैं। ऐसी दशा में प्रत्येक ग्रन्थ का विवरण अलग-अलग सावधानीपूर्वक निकालना पड़ता है।

**संस्करण**—ग्रन्थ का संस्करण निश्चित करने में कुछ कारणों से समस्यायें उत्पन्न होती हैं। कभी-कभी मुद्रक का नाम, स्थान और प्रकाशन वर्ष नहीं दिया रहता। कभी-कभी प्रकाशक ग्रन्थ के प्रकाशन वर्ष को सही न दे कर पूर्व प्रकाशित ग्रन्थ पर प्रथम संस्करण छाप देते हैं। कभी-कभी ग्रन्थ का प्रथम संस्करण बिक जाने पर दुबारा छाप लेते हैं और उस पर प्रथम संस्करण छाप देते हैं जिससे ग्रन्थकार को रायल्टी न देनी पड़े, किन्तु सैटिंग, कागज और प्रूफ की गलतियों से ऐसे संस्करण पकड़ में आते हैं। प्रकाशन के लिए सरकारी सहायता प्राप्त कर के कुछ लेखक या प्रकाशक ग्रन्थ को छपाते हैं किन्तु सरकार को दिखाने के लिए कुछ प्रतियों पर सरकार द्वारा निर्धारित मूल्य छाप देते हैं और शेष प्रतियों पर द्वितीय संस्करण

छाप कर मनमाना मूल्य छाप देते हैं। यद्यपि वे सब प्रतियाँ प्रथम संस्करण की ही छपी होती हैं। इन सबकी छानबीन वाङ्मयसूचीकार अपनी सामान्य सूझबूझ और मुद्रण कला सम्बन्धी ज्ञान के द्वारा करता है।

वाङ्मयसूची में किसी भी ग्रन्थ के प्रथम संस्करण का महत्त्व होता है। उसमें ग्रन्थकार का मूल विचार प्रदर्शित होता है। ग्रन्थों के संग्रहकर्त्ता तथा ग्रन्थ-प्रेमीगण इसलिए प्रयत्न कर के प्रथम संस्करण को प्राप्त करते हैं और कभी-कभी उसको अधिक मूल्य पर भी खरीदते हैं। यदि वह ग्रन्थ की अपनी प्रति हो या उस पर ग्रन्थकार का स्वहस्ताक्षर हो तो वह ग्रन्थ अधिक महत्त्व का होता है। अगले संस्करणों को शुद्ध करने में भी प्रथम संस्करण आवश्यक होता है। कुछ ग्रन्थों का प्रथम संस्करण अच्छे गेट-अप और मेक-अप के साथ सज-धज से निकाला जाता है। वह आगे के संस्करणों की अपेक्षा शुद्ध भी होता है। प्रथम संस्करण में प्लेट, चित्र आदि बहुत साफ छपते हैं। प्रथम संस्करण की छपाई मूल अंश (Text) से प्रारम्भ होती है। प्रारम्भिक और अन्तिम अंश (Preliminary and Subsidiary) बाद में छपते हैं। प्रथम संस्करण के बाद के संस्करण का पृष्ठांक मुद्रक लोग प्रायः प्रारम्भ (Preliminary) से ही छापते हैं, जिस पर कोई फर्मा नम्बर नहीं दिया जाता। प्रथम संस्करण के बाद के संस्करण तभी महत्त्वपूर्ण होते हैं जबकि ग्रन्थकार जीवित रहता है और वह उस ग्रन्थ में संशोधन, परिवर्द्धन करता रहता है। इससे उसके भावों और विचारों की प्रौढ़ता बाद के संस्करणों में मिलती है। ग्रन्थकार की स्वहस्तलिखित प्रति का भी महत्त्व होता है। उसको भी ब्लाक बनवा कर छाप देते हैं। उससे ग्रन्थकार की लिपि तथा ग्रन्थ की संशोधन विधि का ज्ञान पाठकों को होता है। हिन्दी में जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' की मूल प्रति (हस्तलिखित प्रति) प्रकाशित हुई है।

तिथि रहित ग्रन्थ का मुद्रण वर्ष निर्धारण करना भी एक कठिन कार्य है। अगर मुद्रक का नाम छपा हो तो उसके द्वारा प्रकाशित अन्य ग्रन्थों के नमूने को देख कर कुछ निर्णय किया जा सकता है। इसके लिए अन्य साधन ये हैं :—

(१) बड़े पुस्तकालयों की छपी हुई सूचियों को देख कर, व्यावसायिक सूचियों को देख कर मुद्रण वर्ष का निश्चय किया जा सकता है।

(२) सांकेतिक अंकों में दिये गये मुद्रण वर्ष को किसी जानकार व्यक्ति से समझ कर मुद्रण वर्ष निकाला जा सकता है।

(३) यदि मुद्रक का नाम दिया गया हो तो उसके मुद्रण के कार्यकाल की जानकारी प्राप्त कर के एक मोटे तौर पर मुद्रण वर्ष का अनुमान लगाया जा सकता है।

(४) कागज पर वाटर मार्क, मुद्रण के टाइप, ग्रन्थ के अलंकरण, ग्रन्थ के स्वामित्व और पत्रिकाओं में दिये गये विज्ञापन, आदि साधनों से भी ग्रन्थों के मुद्रण वर्ष का निर्धारण करने में सहायता मिलती है।

इसी प्रकार मुद्रण वर्ष यदि जाली छपा दिया जाय तो उसका सही पता लगा कर वर्ष निर्धारण करना कठिन होता है। मुद्रण, कागज, वाटर मार्क, जिल्दबन्दी की शैली, पत्रादिविवरण, आदि के परीक्षण से सही मुद्रण वर्ष का पता लगता है। कभी-कभी एक ही ग्रन्थ में दो भिन्न मुद्रणांक छपे हुए मिलते हैं। ये वाङ्मयसूचीकार के लिए सिर दर्द बन जाते हैं।

**अपमार्जन** (Cancel)—प्राचीन मुद्रकों द्वारा पुस्तक के छप जाने पर उसमें छप जाने वाली अशुद्धियों की छोटी पर्ची छाप कर और काट कर यथास्थान चिपकवा दी जाती थी। उसको अपमार्जन (Cancel) कहते थे। यह कार्य जिल्दबन्दी के बाद किया जाता था। अब इसकी प्रथा नहीं है। अगर पूरे पेज में अशुद्धियाँ हों तो उसको फिर से छपा कर बदल देते हैं। उस दशा में नये लगाये गये कागज, उस पर छपी हुई लाइनों की संख्या, टाइप की सेटिंग, पृष्ठ क्रमांकन, फर्मा नम्बर आदि के द्वारा अपमार्जन (Cancel) का पता लगाया जा सकता है।

**जाली और प्रतिकृति** (Fake and Facsimiles)—मूल ग्रन्थ के रूप में प्रस्तुत करने योग्य पुस्तक या लेख को जाली या नकली (Fake) कहते हैं। पुस्तक की हू-बहू नकल प्रति को प्रतिकृति (Facsimile) कहते हैं। प्राचीन मूल ग्रन्थ का पूर्ण तद्वत् पुनः मुद्रण, खंडित अंशों की पूर्ति किसी सही प्रति से करके उसको मूल प्रति के रूप में प्रस्तुत करना, टाइटिल पेज विहीन मूल ग्रन्थ रहा हो और बाद में उसका टाइटिल पेज अलग से तैयार कर के छाप कर लगा देना और उस ग्रन्थ को मूल ग्रन्थ के रूप में धोखा देकर बेचना आदि जाली प्रति (Fake) के अनेक रूप हो सकते हैं। कागज की क्वालिटी, चेक लाइन और वाटर मार्क से इसका पता लगाया जा सकता है कि मूल ग्रन्थ के कागज से नये लगाये गये टाइटिल पेज का कागज मिलता है कि नहीं। पेज पर कभी-कभी कीड़े खाये हुए का नकली छेद बना देते हैं। घुसेड़े गये (Inserted) पेज को बड़ी सफाई से पुराना कर देते हैं। लेकिन बारीकी से छानबीन करने पर ये सब भेद प्रकट हो जाते हैं। फिर भी धुलाई की गई, मरम्मत कर के फिर से जिल्दबन्दी की गई पुस्तकों में जालसाजी (Fake) का पता लगाना बहुत ही कठिन कार्य होता है। आधुनिक समय में भी ऐसे कुछ धन्धे चल रहे हैं। वाङ्मयसूचीकार को इन सब धांधलियों से सावधान रहना चाहिए। जाली (Fake) प्रति और शुद्ध मूल प्रति में अन्तर स्पष्ट करने के लिए बड़ी सावधानी अपेक्षित एवं आवश्यक है।

**संस्करण, प्रामाणिकता तथा संपादन**—वाङ्मयात्मक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है किसी लेखक की किसी कृति (Work) के एक संस्करण को अन्य संस्करणों की अपेक्षा प्राथमिकता दी जाय। यह स्पष्ट एवं तथ्य है कि ग्रन्थ का प्रथम संस्करण ग्रंथकार की हस्तलिखित प्रति की प्रामाणिक प्रतिलिपि होता है। ग्रंथकार के जीवन में उस ग्रंथ के अनेक संस्करण होते रहते हैं। उनमें संशोधन और परिवर्द्धन भी होता रहता है किन्तु मूल लेखक के प्रकाशित ग्रन्थ के सम्बन्ध

में यह निश्चय करना आवश्यक होता है कि वह ग्रन्थ मूल ग्रन्थकार की हस्तलिखित प्रति से छापा गया है या किसी प्रतिलिपिकार की प्रति से अथवा अन्य किसी पूर्व प्रकाशित संस्करण से। प्रकाशन के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ में गलत प्रकाशन वर्ष छाप कर उसे प्रथम संस्करण घोषित कर के आर्थिक लाभ उठाने की भी परम्परा रही है। अतः प्रबुद्ध वाङ्मयसूचीकार कागज, छपाई, जिल्दबन्दी, चित्रण, पत्रादि-विवरण तथा ग्रन्थ विषय के अन्य विवरण का संपरीक्षण करके इस तथ्य का पता लगाते हैं। कुछ बुद्धिमान् वाङ्मयसूचीकारों ने ऐसे अनेक ग्रंथों में जाल-बट्टे का पता लगाया है।

प्रतिष्ठित ग्रन्थकार के नाम पर उनकी लिखी हुई पुस्तक प्रचारित करके अनेक ग्रन्थ छपा लिये जाते हैं। हिन्दी में सूरदास और तुलसीदास के नाम से ऐसे ग्रन्थ छापे गये हैं। अतः ऐसे किसी ग्रन्थ की प्रामाणिकता निश्चय करना आवश्यक होता है कि वह वस्तुतः उसी ग्रन्थकार की रचना है या नहीं। ग्रन्थकार की लिपि, उपयोग में लाई गई स्याही के परीक्षण से हस्तलिखित ग्रन्थ की प्रामाणिकता का निर्धारण किया जा सकता है, यदि ग्रन्थकार की लिपि का नमूना सुलभ हो। यदि पुस्तक छपी हुई हो तो कागज, वाटरमार्क और टाइप के संपरीक्षण से प्रकाशन वर्ष की प्रामाणिकता का निर्धारण किया जा सकता है। ग्रन्थ का आन्तरिक और वाह्य परीक्षण, साहित्यिक शैली और टेकनिक, भाषा की समानता, शब्द संग्रह, उच्चारण की विशिष्टता, पाठभेद आदि साक्ष्यों के आधार पर ग्रन्थकार की प्रामाणिकता को निश्चय किया जा सकता है। वाह्य परीक्षा के अन्तर्गत ग्रन्थकार का जीवन-काल, ग्रन्थ के कर्त्तत्व के सम्बन्ध में उसका अपना वक्तव्य तथा उसके सम्बन्ध में अन्य लोगों के विचार तथा टाइटिल पेज का मुद्रण आदि आता है। हस्तलिखित ग्रंथों की खोज रिपोर्टों में ऐसे विवरण दिये जाते हैं। उनसे भी सहायता मिल सकती है। ग्रन्थकार के स्वहस्ताक्षर (ऑटोग्राफ) से भी प्रामाणिकता के निर्धारण में सहायता मिलती है।

**सम्पादन**

वाङ्मयसूचीकार यदि भाषा और साहित्य का ज्ञाता नहीं होता तो उससे किसी भी ग्रन्थ के विभिन्न संस्करणों के आधार पर प्रामाणिक पाठ निर्धारण करने या किसी संस्करण को प्रामाणिक घोषित करने में भूल हो सकती है। इसी प्रकार आलोचक को यदि किसी ग्रन्थ का पाठ निर्धारण करना हो तो उसे पाठ सम्बन्धी वाङ्मयसूची (Textual Bibliography) के सिद्धातों का भी जानकार होना आवश्यक है। कारण यह है कि ग्रन्थ में लिपिकार से प्रतिलिपि करते समय तथा मुद्रण में प्रूफ रीडिङ्ग करते समय अनेक भूलें हो जाती हैं। अपने सामान्य ज्ञान के आधार पर अनेक शब्द सही न पढ़े जाने पर अनुमान के आधार पर लिख दिये जाते हैं। ऐसे स्थल पाठ निर्धारण में घोर परेशानी पैदा करते हैं। इसीलिए श्री कोपिंगर (Copinger) ने इसको वाङ्मयात्मक अनुसंधान (Literary Investigation) कहा

है और सर वाल्टर ग्रेग (Sir Greg) ने वाङ्मयात्मक अनुसंधान को पाठालोचन का तीन चौथाई कार्य (Three fourth of Textual Criticism) कहा है। इसलिए बिना वाङ्मयात्मक ज्ञान पर्याप्त मात्रा में प्राप्त किये किसी ग्रन्थ का पाठ सम्पादन करना संपादक की कोरी धृष्टता कही जा सकती है।

वाङ्मयसूचीकार और सूचीकार प्रत्येक ग्रन्थ के संलेख बनाते हैं। अतः उनको प्रत्येक ग्रन्थ का संक्षिप्त विवरण संलेख में लिखना होता है। ग्रन्थ मुद्रित होकर उनके पास उत्पादन की विविध प्रक्रियाओं से होकर पहुँचता है। प्रत्येक ग्रन्थ में इन प्रक्रियाओं का विश्लेषण कर के देखना चाहिए। सूचीकार के द्वारा ग्रंथों का पत्रादिविवरण (Collation) और वाङ्मयसूचीकार द्वारा दिये गये पत्रादिविवरण में अन्तर होता है। सूचीकार का पत्रादिविवरण अपेक्षाकृत सरल और सादा होता है। इसको पुस्तकालय पत्रादिविवरण ( Library Collation ) कहते हैं। वाङ्मयसूचीकार द्वारा ग्रन्थ का परीक्षण कर के दिया गया पत्रादिविवरण उतना सरल एवं सीधा नहीं होता। इसको वाङ्मयात्मक पत्रादिविवरण (Bibliographical Collation) कहते हैं। पुस्तकालय के पत्रादिविवरण में केवल इतना ही देखना पड़ता है कि आई हुई पुस्तक में सब फर्मे क्रमशः सही लगे हुए हैं। कोई फर्मा छूटा तो नहीं है? कोई फर्मा दोहरा तो नहीं हो गया है। पृष्ठांकन सही क्रम में है या नहीं। पुस्तक शारीरिक दृष्टि से ठीक दशा में है या नहीं। लेकिन वाङ्मयात्मक पत्रादिविवरण में इसका निश्चय करना पड़ता है कि जो पुस्तक हाथ में है वह पूर्ण है अथवा अपूर्ण अथवा अपूर्ण को पूर्ण बनाया गया है। क्या यह प्रथम संस्करण है या बाद का संस्करण है। इसमें पूरा मुद्रणांक (Imprint) दिया गया है अथवा नहीं। इसको निश्चय करने के लिए वाङ्मयसूचीकार किसी ग्रथ को हाथ में लेने पर अपनी ओर से तीन प्रश्नों का उत्तर ढूंढ़ता है :—

(१) इस ग्रन्थ में क्या है?

(२) यह प्रति किस मुद्रित कृति (Work) का कौन सा संस्करण Recension और Version है? किसके द्वारा संपादित की गई है और कहाँ, कब और किसके द्वारा मुद्रित की गई है? क्या इसका संपादन आलोचनात्मक (Critical) दृष्टिकोण से किया गया है?

(३) क्या पुस्तक पूर्ण है, अपूर्ण है अथवा नये पृष्ठ आदि लगा कर पूर्ण की गई है? इन प्रश्नों का उत्तर ग्रन्थ के टाइटिल पेज से प्रायः मिल जाता है। इस प्रकार का विस्तृत विवरण देने से प्रत्येक ग्रंथ की विशेषता प्रकट होती है और उसी पुस्तक की अन्य प्रतियों से उसका अलगाव स्पष्ट प्रकट होने लगता है।

संस्करण—एक बार कम्पोज मैटर से जितनी प्रतियाँ छापी जाती हैं वह एक 'संस्करण' कहलाता है। नया संस्करण तब माना जाता है जब पुस्तक में संशोधन और परिवर्द्धन होता है। तदनुसार छपने पर क्रमशः द्वितीय संस्करण, तृतीय संस्करण आदि कहा जाता है।

नाना टीका समन्वित संस्करण (Variorum Edition)—लेखक की हस्तलिखित प्रति में पाठ भेदों सहित कृति को नाना टीका समन्वित संस्करण (Variorum Edition) कहते हैं। पूर्व संपादकों द्वारा की गई समस्त टीका, टिप्पणियों सहित प्रकाशित किसी लेखक की कृति के संस्करण को भी वैरिओरम एडीशन (Variorum Edition) कहते हैं।

आवृत्ति (Impression)—एक बार कम्पोज किये गये मैटर से जितनी प्रतियाँ छापी जाती हैं वह एक आवृत्ति (Impression) कहलाती हैं। उसी सेट किये हुए टाइप से पुनः छापने पर नवीन आवृत्ति (New Impression) कहा जाता है। प्रथम आवृत्ति और प्रथम संस्करण एक ही माने जाते थे क्योंकि प्रकाशक कम्पोज कर के छापने के बाद टाइप डिस्ट्रीब्यूट करा देते थे। अब भावी आवश्यकता के लिए कम्पोज किये हुए मैटर को स्टैण्डिङ्ग में रख लिया जाता है।

पुनर्मुद्रण---किसी मुद्रित पुस्तक का बिना किसी संशोधन के पुनः छापने को पुनर्मुद्रण (Reprint) कहते हैं। इसको द्वितीय संस्करण पुनर्मुद्रित (Reset) कहना चाहिए। संशोधित कर के छापने पर 'द्वितीय संशोधित संस्करण' कहना चाहिए। वाङ्मयसूचीकार और पाठक दोनों की सुविधा के लिए ऐसा स्पष्टीकरण पुनर्मुद्रण के विषय में देना लाभकर होता है। बिना संशोधन के पुनः ज्यों के त्यों छपे संस्करण को 'नवीन संस्करण' या 'द्वितीय संशोधित संस्करण' छाप देना भ्रामक होता है।

Issue or Reissue---किसी मूल छपे हुए शीट्स से जब कोई ग्रंथ किसी खास रूप में कुछ नई सामग्री (मैटर) बढ़ा कर और मिला कर या विषय को नवीन क्रम से व्यवस्थित करके छापा जाता है तो वह उस मूल ग्रन्थ की Issue मानी जाती है। अगर मूल शीट्स पर छपी पुस्तक में कोई नया टाइटिल पेज छाप कर लगा दें और कुछ प्रारंभिक अंश जोड़ दिया जाय तो वह उस ग्रन्थ को Reissue कहा जाता है।

आकार (Format)—सामान्य रूप से पुस्तक के आकार को फार्मेट कहते हैं। कागज की शीट की तह (Folding) से पन्ने बन जाते हैं। जितनी बार कागज मोड़ कर तह की जाती है पुस्तकों के उतने ही पन्ने बनते जाते हैं। कुछ कागजों की शीट तह नहीं की जाती है जैसे कि घोषणा-पत्रों और नक्शों आदि की छपाई में होता है। ऐसे बिना तह किये हुए पूरे शीट को ओपेन शीट कहते हैं, जब कि कागज का शीट आधा बिना तह किया होता है तो उसको 'हाफ शीट' कहते हैं। शीट को एक बार तह करने पर दो पन्ने या चार पेज हो जाते हैं। इसको 'फोलियो' कहते हैं। जब यह दो बार तह किया जाता है तो चार पन्ने या आठ पेज हो जाते हैं। इसको क्वार्टो कहते हैं। जब यह तीसरी बार मोड़ा जाता है तो आठ पन्ने या सोलह पेज हो जाते हैं। इसको ऑक्टेवो कहते हैं। Six to decim में चार बार मोड़ने पर १६ पन्ने या ३२ पेज होते हैं। इन चारों के अतिरिक्त दो अन्य आकार भी होते हैं।

उनके नाम Duodecimo और २४ mo भी होते हैं जिनकी तहें कुछ भिन्न प्रकार की होती हैं। किसी पुस्तक के विवरण में इस प्रकार आकार या साइज का उल्लेख करने से उसके आकार का कुछ पता चलता है। कागज के प्रकार वाटर मार्क के साथ आकार (साइज) का उल्लेख किया जाय तो कुछ और स्पष्ट ज्ञान होता है जैसे क्राउन ऑक्टेवो कहने से क्राउन पेपर की माप १५ × २० इन्च का भी बोध होता है।

प्राचीन मुद्रित पुस्तकों और छोटी पुस्तकों में पन्नों के आधार पर आकार का पता लगाना कठिन होता है क्योंकि उसमें कागज की कोई स्टैण्डर्ड माप नहीं होती। वाटरमार्क और चेन लाइन जो कागज के शीट पर पड़े होते हैं उनसे फोल्डिंग का पता लगाने में सहायता मिलती है।

**पाठ भेद के विविध कारण**

हस्तलिखित ग्रन्थों में

(१) लेखक की मूल हस्तलिखित प्रति से उसकी प्रतिलिपि करते समय किसी शब्द के गलत पढ़ लिए जाने से।

(२) किसी शब्द में एकाध अक्षर गलत लिख दिये जाने से।

(३) पूरी प्रतिलिपि को पुनः मूलप्रति से न मिलाये जाने से।

(४) प्रतिलिपि करने वाले द्वारा जल्दी मचाने से।

मुद्रित ग्रन्थों में

(१) मूल प्रति के किसी शब्द के गलत पढ़ लिए जाने से।

(२) कहीं पर गलत टाइप लग जाने से।

(३) किसी शब्द के अशुद्ध उच्चरित रूप के छप जाने से।

(४) संशोधित प्रूफ में मार्क की गई गलतियों के छूट जाने से।

(५) प्रूफ रीडर द्वारा गलतियाँ छूट जाने से।

(६) मशीन मैन के आलस्यवश छपाई के समय अकस्मात् उखड़ गये टाइप की जगह सही टाइप न लगाने से।

(७) लेखक द्वारा तैयार शुद्धिपत्र के पूर्णतया कार्यान्वयन न होने से।

**(ख) वर्णनात्मक वाङ्मयसूची (Descriptive Bibliography)**

आलोचनात्मक वाङ्मयसूची के अन्तर्गत ग्रन्थ के बाह्यरूप (Material form) का अनुप्रयोग (Application) वर्णनात्मक सूची में किया जाता है। परिगणनात्मक वाङ्मयसूची (Enumerative Bibliography) आधारभूत संलेखों या गौण प्रलेखों को अथवा दोनों को अपने भीतर लेती है। किन्तु वर्णनात्मक वाङ्मयसूची में केवल आधारभूत प्रलेखों (Primary Documents) ही लिए जाते हैं। वर्णनात्मक वाङ्मयसूची का उद्देश्य आधारभूत प्रलेखों की स्थायी वर्णनात्मक सूची

बनाना है। इसलिए वाङ्मयसूचीकार व्यक्तिगत रूप से उन ग्रन्थों का परीक्षण और अनुसंधान कर के उन ग्रन्थों के विवरण की पूर्णता एवं सत्यता (Accuracy) के विषय में पाठकों को पूर्ण आश्वासन देता है। फिर वह ग्रन्थ की विशेष संस्करण की आदर्श प्रति (Ideal copy) का वर्णन करता है किन्तु परिगणनात्मक वाङ्मयसूची में किसी विशिष्ट प्रति का उल्लेख नहीं किया जाता। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वर्णनात्मक सूची में दी गई आदर्श प्रति समीक्षा की दृष्टि से या पाठ सम्पादन की दृष्टि से दोष रहित होती है किन्तु इसका तात्पर्य इतना ही है कि प्रकाशक ने जिस रूप में उसे प्रकाशित करना चाहा था, उस रूप में वह आदर्श प्रति है। आधुनिक काल में वर्णनात्मक वाङ्मयसूची बनाने का कार्य सरल हो गया है क्योंकि आधुनिक पुस्तकों एवं अध्ययन-सामग्री में वे सभी विवरण प्रायः आसानी से मिल जाते हैं और उन विवरणों को संलेख में देकर अन्त में उनके आधार पर अभीष्ट टिप्पणी लिख दी जाती है।

वर्णनात्मक वाङ्मयसूची (Descriptive Bibliography) को अध्ययन का क्षेत्र (Field of Study) भी कहते हैं। डॉ० Fredson Bowers का कथन है कि फील्ड आफ स्टडी को ही डिस्क्रिप्टिव बिब्लियोग्रेफी यह नाम दिया गया है। इसमें ग्रन्थों की परीक्षा, पत्रादिविवरण और वर्णन को लेखाबद्ध किया जाता है।

**ग्रन्थों की परीक्षा** (Examination of books)—इसमें मुख्यतया निम्नलिखित चीजें देखी जाती हैं :—

| | | |
|---|---|---|
| (१) | आख्या पृष्ठ (साज-शृङ्गारों और किनारों सहित) | (Title page including ornaments and borders) |
| (२) | मुद्रण और पुष्पिकायें | (Imprint and Colophons) |
| (३) | आदि और अन्त | (Incipits and Explicits) |
| (४) | जिल्दबन्दी और आवरण | (Binding and Casing) |
| (५) | प्रस्तावना | (Preliminaries) |
| (६) | मुद्रण अनुज्ञापत्र | (Imprimaturs) |
| (७) | विज्ञापन | (Advertisements) |
| (८) | मूलग्रन्थ और पत्रादि विवरण | (Text and Collation) |
| (९) | भूमिका | (Prefaces) |
| (१०) | समर्पण | (Dedication) |

**पत्रादिविवरण** (Collation)—इसमें मुख्यतया निम्नलिखित चीजें देखी जाती हैं :—

(१) पूर्णमानक वर्णन का अनुच्छेद (Paragraph of the full standard description)

(२) बाह्याकृति (Format)

(३) प्रति फर्मे के प्रथम पृष्ठ पर अंकित अक्षर या अंक (The list of signatures)

(४) पृष्ठ (Foliation or Pagination)

वर्णन (Description)—इसमें निम्नलिखित सन्दर्भों का अध्ययन किया जाता है :—

(१) संक्षिप्त वर्णन (Short Description)

(२) मध्यम वर्णन (Medium Description)

(३) पूर्णमानक वर्णन (Full Standard Description)

प्रथम प्रकार का वर्णन संक्षेप में दिया जाता है। विशेष रूप से यह पुस्तकों की संघीय सूची (Union Catalogue) के लिए प्रयुक्त होता है। यथा—

Pollard and Pedgrave—Short title Catalogue of books 1475-1540

द्वितीय प्रकार के वर्णन में पुस्तक की प्रत्येक प्रति पर टिप्पणी सहित पूर्ण पत्रादिविवरण दिया जाता है। इसका उदाहरण क्रैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी लाइब्रेरीज कैटलॉग ऑफ फिफ्टीन्थ सेन्चरी प्रिन्टेड बुक्स (1954) में मिलती है।

तृतीय प्रकार का मुख्य उद्देश्य शुद्ध स्थापन है। सामान्यतया उसमें सात पैराग्राफ में विवरण दिया जाता है। आदि-मुद्रित ग्रन्थों (Incunabulas) के लिए कुछ अतिरिक्त विवरण भी होते हैं।

| वर्णनात्मक | क्रमबद्ध |
|---|---|
| (१) केवल आधारभूत संलेख (Primary Documents) को अपने अन्तर्गत सम्मिलित करती है। | (१) आधारभूत प्रलेख, गौण प्रलेख अथवा दोनों को अपने अन्तर्गत सम्मिलित करती है। |
| (२) इसमें प्रकाशक के दृष्टिकोण से मुद्रित प्रति यदि जांच में सही पाई जाती है तो उसे आदर्श प्रति कहा जाता है। | (२) इसमें किसी विशिष्ट प्रति का उल्लेख नहीं किया जाता। |

## मुद्रित ग्रन्थ के अंग (Parts of Printed Books)

वाङ्मयसूची के अन्तर्गत अधिकांश संख्या मुद्रित ग्रन्थों की ही होती है। अतः ग्रन्थ का वाङ्मयात्मक विवरण देने के लिए इन अंगों का ज्ञान होना आवश्यक है। मुद्रित ग्रन्थ ठोस रूप में सामने आता है। उसके अनेक अंग होते हैं और वे सभी अपने-अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण होते हैं। यद्यपि प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों और आदिमुद्रित ग्रन्थों में ये सब अंग नहीं होते थे किन्तु आधुनिक मुद्रित ग्रन्थों में ये सब या इनमें से अधिकांश अंग होते हैं। इन अंगों के अध्ययन से वाङ्मयसूची तैयार करने में सहायता मिलती है। इससे ग्रन्थों की विशिष्टता और सौन्दर्य का पता लगता है। ग्रन्थ के इस परीक्षण से उसके मूल्यांकन में सहायता मिलती है।

प्रत्येक मुद्रित ग्रन्थ को तीन अंगों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) प्रारम्भिक भाग (Preliminaries)

(२) ग्रन्थ का मूल भाग (The body of the book)

(३) सहायक भाग (Subsidiaries)

इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

**(१) प्रारम्भिक भाग (Preliminaries)**

आधुनिक मुद्रित ग्रन्थों में प्रारम्भिक भाग के अन्तर्गत निम्नलिखित अंग सम्मिलित हैं :—

(क) मुख पृष्ठ (The bastard title)

(ख) विज्ञप्ति (Announcement)

(ग) अग्रचित्र (Frontispiece)

(घ) आख्या पृष्ठ (The title page)

(ङ) वाङ्मयात्मक टिप्पणी (Biblio or Bibliographical Note)

(च) प्रकाशन अनुज्ञा (Licence of Publication)

(छ) समर्पण (The Dedication)

(ज) दो शब्द (The Forword or Introduction by someone)

(झ) भूमिका (The Preface or Introduction by the author)

(ञ) कृतज्ञताज्ञापन (Acknowledgement)

(ट) विषयसूची (The table of Contents)

(ठ) चित्रसूची (The list of Illustration)

(ड) संकेत सूची (The list of abbreviation)

(ढ) शुद्धिपत्र (Errata or Corrigenda)

**(२) ग्रन्थ का मूलभाग (The Body of the Book)**

ग्रन्थ का मध्य पाठ्य भाग (Text) होता है। इससे पाठक का मुख्य सम्बन्ध होता है। इस भाग का सम्बन्ध अध्यायों के शीर्षकों से होता है। प्रायः बाईं ओर सिरे पर पुस्तक का संक्षिप्त या पूर्ण नाम तथा दाईं ओर पृष्ठ के सिरे पर अध्याय का शीर्षक दिया जाता है। पृष्ठ शीर्षक अध्याय बदलने पर बदलते जाते हैं। सामान्य रूप से यह पृष्ठ भाग पहले छपता है। प्रारम्भिक और परिशिष्ट आदि सहायक भाग बाद में छपते हैं। फर्मा नम्बर (Signature) मूल पाठ्य भाग के प्रथम पृष्ठ के नीचे लगाया जाता है। पुनर्मुद्रण होने पर पुस्तक को प्रारम्भिक भाग से भी छाप लिया जाता है।

(३) सहायक भाग (Subsidiaries)

सहायक अन्तिम भाग के अन्तर्गत निम्नलिखित अंश होते हैं—

(क) टिप्पणी (Note)

(ख) परिशिष्ट (Appendices and Suppliments)

(ग) शब्दावली (Glossary)

(घ) वाङ्मयसूची (Bibliography)

(ङ) अनुक्रमणिका (Index)

(च) प्लेट और नक्शे (Plates and Maps)

(छ) पुष्पिका (Colophon or Imprint)

(ज) समाप्ति (Finish)

(झ) सादा पन्ना (Fly Leaves)

(ञ) अन्तिम कागज 'पोस्तीन' (End Paper)

(ट) ग्रन्थ आवरण (Book Jacket)

टिप्पणी के अन्तर्गत कृति का संक्षिप्त सन्दर्भ, विवरणात्मक टिप्पणी तथा व्याख्या टिप्पणी या टीका ये तीन प्रकार हो सकते हैं। कृति के संक्षिप्त सन्दर्भ की टिप्पणी, पाद टिप्पणी या फुटनोट के रूप में दी जाती है। इस टिप्पणी में सन्दर्भगत ग्रन्थ का नाम और उसके संक्षिप्त अंश की पृष्ठ संख्या पाठकों की सुविधा के लिए दी जाती है। हस्तलिखित ग्रन्थों के अन्त में लिपिकार का नाम, तिथि और स्थान दिया जाता था। उसको पुष्पिका कहते थे। इसको विस्तृत रूप से देने की परम्परा थी। आधुनिक मुद्रणांक और पुरानी पुष्पिका ये दोनों एक हैं अलग नहीं। लगभग १६०० ई० से मुद्रित पुस्तकों पर मुद्रणांक (Imprint) डालने की प्रथा चालू हुई। ग्रन्थ के अन्त में, 'समाप्ताचायं ग्रन्थः' (End of the Volume) आदि भी लिखने की परम्परा थी।

□ □

अध्याय ५

# परिगणनात्मक या व्यवस्थित वाङ्मयसूची

## (ENUMERATIVE OR SYSTEMATIC BIBLIOGRAPHY)

### सामान्य परिचय

इस शाखा की वाङ्मयसूची दो क्रिया-कलापों से सम्बन्धित है। प्रथम क्रियाकलाप है ग्रन्थ का विश्लेषण और दूसरा क्रियाकलाप है ग्रन्थ का परिगणन। जब ग्रन्थ का क्रमबद्ध विवरण तैयार किया जाता है तो उसमें संलेखों को तैयार करना पड़ता है। अतः ग्रन्थ के विश्लेषण की आवश्यकता पड़ती है। इस परिगणनात्मक या व्यवस्थित वाङ्मयसूची में किसी उपयोगी क्रम के अनुसार पुस्तकों तथा अन्य अध्ययन-सामग्री की सूची बनाई जाती है। वाङ्मयसूचीकार संलेखों को किसी उपयोगी और तार्किक क्रम से अध्ययन एवं संदर्भ के लिए व्यवस्थित करता है। इसीलिए इसको संदर्भ वाङ्मयसूची (Reference Bibliography) भी कहते हैं। इस वाङ्मयसूची का उद्देश्य ज्ञान के (चुने हुए) क्षेत्र के विषय में पाठक को सूचना देना एवं पथ-प्रदर्शन करना होता है। इसके लिए वाङ्मयसूचीकार बड़ी राष्ट्रीय और पुस्तकालय-सूचियों का अवलोकन करता है यद्यपि उनमें भी ज्ञान के किसी विषय पर सम्पूर्ण ग्रन्थ नहीं प्राप्त होते, फिर भी उनका सहारा मुख्य आधार होता है। वाङ्मयसूचीकार चाहता है कि वह स्थायी महत्त्व की वाङ्मयसूची अपने अभीष्ट विषय पर प्रस्तुत करे। वह अपने अभीष्ट विषय या टॉपिक पर पहले से तैयार वाङ्मयसूचियों का अवलोकन करता है तथा उसके बाद इधर-उधर बिखरे हुए स्रोतों से भी सामग्री को एकत्र करता है। यदि उसका अभीष्ट विषय आधुनिक होता है तो वह ग्रन्थसूचियों और पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित समीक्षाओं को भी पढ़ता है जो कि उसके विषय से सम्बन्धित होती हैं। वह प्रकाशकों के सूचीपत्रों को देखता है। सारांश प्रकाशित करने वाली पत्रिकाओं का भी अवलोकन करता है।

प्रारम्भ में प्रचलित साहित्यिक वाङ्मयसूची (Literary Bibliography) पर व्यवस्थित वाङ्मयसूची (Systematic Bibliography) की नींव पड़ी। अर्थात् सब से पहले ग्रन्थ में प्रतिपादित विषय का अध्ययन साहित्यिक वाङ्मयसूची के अन्तर्गत किया जाना प्रारम्भ हुआ। आगे चल कर 'लिटरेरी' शब्द हटा कर 'बिब्लियोग्रेफी' शब्द के साथ तीन विशेषण जोड़े गये। व्यवस्थित (Systematic), परिगणनात्मक (Enumerative) और संदर्भ (Reference)। तब इसका नाम व्यवस्थित वाङ्मयसूचा ( Systematic Bibliography ), परिगणनात्मक

वाङ्मयसूची ( Enumerative Bibliography ) और संदर्भ वाङ्मयसूची (Reference Bibliography) दिया गया। व्यवस्थित वाङ्मयसूची में ग्रन्थ में प्रतिपादित विषय वस्तु को अलग-अलग कर के व्यवस्थित रूप में रखा जाता है और प्रत्येक पुस्तक का संलेख तैयार करके एकत्र किया जाता है। विषयों का परिगणन होने के कारण इसको परिगणनात्मक वाङ्मयसूची कहते हैं। व्यवस्थित वाङ्मयसूची में चूंकि अध्ययन-सामग्री उपयोगी एवं वैज्ञानिक विधि से सुव्यवस्थित की जाती है इसलिए यह अध्ययन और अनुसंधान में सहायक और संदर्भ (Reference) के लिए उपयोगी होती है। इसलिए इसे संदर्भ वाङ्मयसूची (Reference Bibliography) कहते हैं।

सिस्टमेटिक बिब्लियोग्रैफी का पर्याय व्यवस्थित वाङ्मयसूची सबसे अधिक उपयुक्त है। इस वाङ्मयसूची को फील्ड सब्जेक्ट बिब्लियोग्रैफी भी कहते हैं।

लाइब्रेरी ग्लासरी में सिस्टेमैटिक बिब्लियोग्रैफी की परिभाषा इस प्रकार दी गई है :

पुस्तकों का परिगणन और वर्गीकरण। अध्ययन और अनुसंधान के लिए वाङ्मयसूची के एकत्रित संलेखों का तर्कपूर्ण और उपयोगी व्यवस्थापन।[1]

जे० डी० काउले ने सिस्टमैटिक बिब्लियोग्रैफी को फील्ड सब्जेक्ट बिब्लियोग्रैफी नाम दिया है। इसकी परिभाषा उन्होंने इस प्रकार की है :—

एक विधि : अध्ययन-सामग्री का सूचीकरण और विवरण जो कि किसी विषय के अध्ययन के लिए प्रारम्भिक रूप में हो।[2]

जी० स्नाइडर के अनुसार यह वाङ्मय की सूचियों का अध्ययन है।[3]

ग्रन्थों तथा अन्य अध्ययन सामग्रियों के भीतर प्रतिपादित विषयों पर विषयगत जितनी भी वाङ्मयसूचियाँ बनाई जाती हैं वे सब इसके अन्तर्गत आती हैं। विषय के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्र, राष्ट्र, क्षेत्र, लेखक, व्यक्ति विशेष, व्यवसाय, विशिष्ट काल, किसी विषय पर चुने हुए ग्रन्थ, विशिष्टवर्ग के लिए उपयोगी ग्रन्थ आदि सभी आ जाते हैं। इस प्रकार व्यवस्थित वाङ्मयसूची (Systematic Bibliography) की परिधि बहुत विस्तृत है। उनमें से निम्नलिखित प्रकार की वाङ्मयसूचियाँ प्रमुख हैं :—

---

1. 'Systematic Bibliography—The enumerative and classification of books. The assembling of Bibliographical entries into logical and useful arrangements for study and reference.' (Library Gloss.)
2. 'A method : the cataloguing and description of material as a preliminary to study of a subject.' —J. D. Cowley.
3. 'Study of lists of literature.' —J. Schneider.

(क) लेखक वाङ्मयसूची (Author Bibliography)
(ख) विषय वाङ्मयसूची (Subject Bibliography)
(ग) व्यावसायिक वाङ्मयसूची (Trade Bibliography)
(घ) राष्ट्रीय वाङ्मयसूची (National Bibliography)
(ङ) सार्वभौमिक वाङ्मयसूची (Universal Bibliography)
(च) वाङ्मयसूचियों की वाङ्मयसूची (Bibliography of Bibliographies)
(छ) आदि मुद्रित ग्रन्थ (Incunabulas)
(ज) चयनीकृत वाङ्मयसूची (Select Bibliography)

उक्त सिस्टेमेटिक बिब्लियोग्रैफी के प्रकारों को श्री अरुण्डेल इस्डेल ने दो वर्गों में विभाजित किया है—

(१) मुख्य (Primary), (२) गौण (Secondary)

मुख्य वाङ्मयसूची के वर्ग में वे वाङ्मयसूचियाँ रखी जाती हैं जिनमें अध्ययन-सामग्री का विवरण मूल पुस्तकों तथा अन्य अध्ययन सामग्री को अवलोकित कर लिखा जाता है। इस प्रकार मूल स्रोत से जानकारी प्राप्त करके विवरणबद्ध करने के कारण इसको मुख्य वाङ्मयसूची कहते हैं। इस दृष्टिकोण से इसके अन्तर्गत आदिमुद्रित ग्रन्थ, सार्वभौमिक, व्यावसायिक एवं राष्ट्रीय वाङ्मयसूचियाँ आती हैं।

गौण वाङ्मयसूची के वर्ग के अन्तर्गत ऐसी वाङ्मयसूचियों को रखा जाता है जिनमें ग्रन्थों का विवरण प्रत्यक्ष रूप से पुस्तकों को देख कर नहीं किया जाता किन्तु अन्य स्रोतों से विवरण प्राप्त किया जाता है। अन्य स्रोतों के अन्तर्गत पूर्व प्रकाशित वाङ्मयसूचियाँ मुख्य आधार होती हैं। आवश्यकता पड़ने पर उन वाङ्मयसूचियों के प्रकाशन वर्ष के बाद की प्रकाशित पुस्तकों का विवरण मूल स्रोतों से प्राप्त कर उसमें जोड़ दिया जाता है। इस आधार पर चयनीकृत वाङ्मयसूची, विषय वाङ्मयसूची, लेखक वाङ्मयसूची एवं वाङ्मयसूचियों की वाङ्मयसूची इन चारों को इस वर्ग में रखा जाता है।

**मुख्य वाङ्मयसूची**

'मुख्य (आधारमूत) वाङ्मयसूचियाँ वे हैं जो कि अपनी विषय-सूची के सम्पूर्ण या अंश के मूल लेखा के रूप में हैं और जब कि गौण वाङ्मयसूचियाँ वे हैं जिनमें अन्यत्र दर्ज की गई सामग्री अनुसंधान की सुविधा के लिए पुनर्व्यवस्थित की गई हो।'[1]

---

1. 'Primary bibliographies are those which are the original record of the whole or part of their contents, secondary bibliographies are those in which material registered elsewhere is arranged for the convenience of research.'
—Arundell Esdale—'A Student's manual of bibliography'. p. 283.

**(क) लेखक वाङ्मयसूची** (Author Bibliography)

**परिभाषा**—लेखक वाङ्मयसूची गौण वाङ्मयसूची के अन्तर्गत आती है। इसकी परिभाषा विद्वानों ने निम्नलिखित रूप में दी है :—

'लेखक वाङ्मयसूची का अर्थ किसी लेखक द्वारा लिखित कृतियों की सूची एवं साथ ही उस लेखक के विषय में अन्य लेखकों द्वारा लिखित कृतियों की सूची से है।'[1]

'किसी लेखक द्वारा स्वयं लिखित अथवा उस लेखक पर अन्य लेखकों द्वारा लिखित पुस्तकों एवं लेखों की सूची है।'[2]

उक्त परिभाषाओं के संदर्भ में यह ज्ञातव्य है कि यह किसी लेखक के द्वारा (By) लिखित ग्रन्थों, लेखों, भाषणों, भूमिकाओं, इण्टरव्यू आदि की सूची होती हैं, साथ ही लेखक पर (on) जो अन्य लोगों द्वारा अध्ययन सामग्री लिखी जाती है, उसे भी इसमें समाहित करते हैं। उस दशा में इसको बायो बिब्लियोग्रैफी (By and on type bibliography), पर्सनल बिब्लियोग्रैफी (Personal bibliography) आदि भी कहते हैं। पर्सनल बिब्लियोग्रैफी के संदर्भ में बहुत से विद्वान् पर्सनल शब्द को नहीं स्वीकार करते क्योंकि उनके मतानुसार इससे केवल एक व्यक्ति द्वारा रचित रचनाओं की सूची का बोध होता है। इसीलिए 'बाइ एण्ड आन' (By and On) में लिखित वाङ्मयसूची को 'बायो-बिब्लियोग्रैफी' नाम का सुझाव दिया गया है क्योंकि इससे एक लेखक के सम्बन्ध में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है।

**प्रकार**—लेखक वाङ्मयसूची दो प्रकार की होती है। प्रथम, वह वाङ्मयसूची जिसमें केवल लेखक द्वारा निर्मित पाठ्य-सामग्री का ही समावेश होता है। द्वितीय, जिसमें लेखक द्वारा निर्मित पाठ्य-सामग्री के साथ-साथ उस लेखक पर अन्य लेखकों द्वारा रचित सामग्री भी रखी जाती है। जब यह दोनों एक साथ मिला कर बनायी जाती है तो उस वाङ्मयसूची को 'बायो-बिब्लियोग्रैफी' (Bio-bibliography) कहते हैं।

इसकी आलोचना इस अर्थ में की जाती है कि किसी लेखक पर लिखित कोई भी कृति संदर्भित लेखक नाम के अन्तर्गत नहीं रखी जानी चाहिए क्योंकि वह स्वयं लेखक द्वारा रचित नहीं होती है।

---

1. 'An author bibliography is the list of writings by an author together with the works on him by others.'
   —M. L Chakraborty—Bibliography in theory and practice, p. 364.
2. 'Author bibliography : a list of the books and articles by or by and about, an author.'
   —Encyclopaedia of Librarianship, p. 29.

इसके विपरीत यह कहा जाता है कि लेखक का सही मूल्यांकन उस पर लिखे साहित्य से ही होता है, क्योंकि यही मूल्यांकन उसकी वास्तविक स्थिति को स्पष्ट करता है। अतः ऐसे साहित्य का समावेश उसी लेखक के अन्तर्गत किया जाना चाहिए।

इसकी आलोचना इस आधार पर भी की जाती है कि इसमें उन ग्रन्थों आदि को भी समाहित किया जाता है जो कि उसके द्वारा रचित मान लिये जाते हैं जब कि उस ग्रन्थ के विषय में यह शंका हो सकती है कि उसका वास्तविक लेखक कौन है। अतः यह शंकास्पद स्थिति है तथापि इसकी महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसे आज की माँग के अनुकूल रखा गया है।

लाभ—लेखक वाङ्मयसूची से लेखक द्वारा लिखित, अनूदित, संपादित और संकलित उसके सम्पूर्ण कृतित्व की जानकारी सरलतापूर्वक हो जाती है। इससे पाठकों एवं अनुसन्धानकर्त्ताओं को उनके अध्ययन एवं अनुसंधान में सहायता मिलती है। बायो-बिब्लियोग्रेफी तो लेखक वाङ्मयसूची से भी अधिक उपयोगी होती है क्योंकि उसमें लेखक के कृतित्व के साथ उसके सम्बन्ध में अन्य व्यक्तियों और लेखकों द्वारा लिखित पुस्तकों एवं लेखों की सूची भी मिल जाती है, जिससे कि लेखक के व्यक्तित्व एवं उसके कृतित्व के मूल्यांकन में पाठकों को सहायता मिलती है।

**लेखक वाङ्मयसूची के स्रोत**

इसके निम्नलिखित प्रमुख स्रोत हैं—

**(१) स्मृति ग्रन्थ (Festchriften Memorial)**—यह दो रूप में प्रकाशित होता है। एक मरणोपरान्त, दूसरा जीवित व्यक्ति विशेष का।

**(अ) मरणोपरान्त**—इसका उदाहरण निम्नलिखित है—

दास गुप्ता, ए० के०

एन ऐसे इन पर्सनल बिब्लियोग्रेफी

**(ब) जीवित व्यक्ति को**—ऐसी वाङ्मयसूची पी० एन० कौला एवं एस० आर० रंगनाथन आदि के सम्मान में प्रकाशित की जा चुकी है।

**(२) कृति संग्रह (Collected Work)**—जो लेखक पुस्तक, लेख आदि लिखते हैं, व्याख्यान, इण्टरव्यू आदि देते हैं, उन सब की संकलित वाङ्मय-सूची को लेखक वाङ्मयसूची के अन्तर्गत रखते हैं क्योंकि यह भी उस लेखक के सम्बन्ध में एक प्रमुख स्रोत है।

**(३) सामयिक प्रकाशन (Periodicals)**—इससे भी कभी-कभी पर्याप्त सूचना प्राप्त होती है क्योंकि इसमें विशेष विषय से सम्बन्धित लेख आदि प्रकाशित होते हैं।

(४) कभी-कभी एक ग्रन्थ पृथक् ग्रन्थ के रूप में 'बाइ एण्ड एबाउट' दोनों

का उपयोग करके प्रकाशित किया जाता है। लेखक वाङ्मयसूची की जानकारी में यह भी पर्याप्त सहायक होता है।

**उदाहरण**

1. William, Jaggard. Shakespeare : Bibliography. New Haven, Yale University Press, 1962.
2. Malaviya, Madan Mohan.
   Kaula, P. N. : A bibliography of Pt. Madan Mohan Malaviya, Varanasi, B. H. U. 1962.
3. Nehru, Jawahar Lal.
   Sharma, Jagadish Saran : Jawahar Lal Nehru : A descriptive bibliography, Delhi, S. Chand & Co. 1955.

**(ख) विषय वाङ्मयसूची (Subject Bibliography)**

परिभाषा – विषय वाङ्मयसूची की कतिपय प्रमुख परिभाषाएँ विद्वानों ने निम्नलिखित रूपों में दी हैं—

एक विधि : अध्ययन सामग्री का सूचीकरण और विवरण जो कि किसी विषय के अध्ययन के लिए प्रारम्भिक रूप में हो।[1] —जे० डी० काउले

'विषय वाङ्मयसूची : किसी विषय पर प्रकाशित सभी पुस्तकों, सामयिक प्रकाशनों के लेखों, पुस्तिकाओं एवं अन्य विश्लेषणात्मक सामग्री की एक विस्तृत सूची है।'[2] —एम० एल० चक्रवर्ती

'किसी दिये हुए विषय के सम्बन्ध में सामग्री की सूची, वह विषय चाहे व्यक्ति, स्थान या वस्तु हो।'[3] —ए० एल० ए० ग्लासरी

'किसी निश्चित विषय पर या उसके बारे में लिखित सामग्री के सम्पूर्ण प्राप्य संदर्भों (की सूची)।'[4] —आर० बोर्टन

---

1. 'A method : the cataloguing and description of material as a preliminary to study of a subject.'—J. D. Cowley.
2. 'A subject bibliography is a comprehensive list of all books, periodical articles, pamphlets and other analytical materials that have appeared on that subject.'
   —M. L. Chakraborty : Bibliography in theory and practice, p. 361.
3. 'A list of material about a given subject, whether the subject be a person, place or thing.' —A. L. A. Glossary.
4. 'All references available of material written on or around a certain subject.' —R. Bourton—Subject bibliography & their compilation.

इसमें मुख्य रूप से निम्न बातें समाहित रहती हैं—

(१) अभीष्ट विषय से सम्बन्धित पठन सामग्री के विभिन्न प्रकार, यथा पुस्तक, लेख तथा अन्य अध्ययन-सामग्री—

(२) वांछित विषय पर विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित सूची।

(३) उस विषय से सम्बन्धित सार (Abstract) की सूचना।

(४) भौगोलिक दृष्टि से सम्पूर्ण संसार में एक विषय पर प्रकाशित समस्त पुस्तकों की सूची।

साथ ही यह किसी सीमित क्षेत्र तक भी हो सकती है। यहाँ यह अपूर्ण हो जाती है जैसा कि निम्न कथन से ज्ञात होता है—

'विषय वाङ्‌मयसूची का अन्तिम उद्देश्य किसी भी विषय पर सम्पूर्ण विश्व में उपलब्ध अध्ययन सामग्री को एकत्र करना है। ऐसी अवस्था में 'विषय वाङ्‌मय-सूची' राष्ट्र एवं भाषा की सीमाओं को पार कर के अन्तर्राष्ट्रीय हो जाती है। उस दशा में किसी भी विषय पर विश्व के कोने-कोने से उस समय पर उपलब्ध ग्रन्थ तथा अन्य अध्ययन सामग्री का संग्रह करना दुष्कर हो जाता है। इसमें विभिन्न देशों की भाषाओं के ग्रन्थ-नाम, उनका अपनी लिपि में लिप्यन्तरीकरण (Transliteration) और सूचीकरण आदि कठिन हो जाता है। इस कारण विषय और लेखक की वाङ्मयसूची में अपूर्णता रह जाती है।'

### विषय वाङ्‌मयसूची के उद्देश्य एवं कार्य

विषय वाङ्मयसूची के उद्देश्य एवं कार्य गेट्स के अनुसार निम्नलिखित हैं :—

(१) संदर्भित विषय पर सामग्री को बताती है।

(२) लेखक का नाम, कृति (Work) की पूर्ण आख्या, प्रकाशन स्थान, प्रकाशन वर्ष, संस्करण और पृष्ठों की संख्या आदि के सत्यापन (Verification) के लिए एक साधन के रूप में सहायता करती है।

(३) यदि विशेष वाङ्मयसूची टिप्पणीकृत है तो उस विषय के क्षेत्र (Scope) को बताना (Provide) और ढंग या रीति जिसमें कि वह व्यवहार में लाई हुई होती है, अगर टिप्पणी आलोचनात्मक और मूल्यांकनयुक्त है तो ग्रन्थ के प्रकाशन की उपयोगिता पर प्रकाश डालती है।

(४) इसके माध्यम से उस सामग्री की ओर भी संकेत करती है जो पुस्तकों के किन्ही हिस्सों में शामिल रहती है तथा जो पत्रक-सूची आदि में विश्लेषित नहीं की जा सकती।

(५) कृतियों (Works) का रूप (Form), स्थिति स्थान (Location) और काल (Time) के अनुसार समूह बनाती है।

### विषय वाङ्‌मयसूची से लाभ

इससे निम्नलिखित मुख्य लाभ प्राप्त होते हैं—

(१) अनुसन्धान पुस्तकालयों में तो अध्यापक और छात्र दोनों ही सूची को इसी आशा से देखते ही हैं कि उनके अभीष्ट विषय पर कुछ सामग्री अवश्य मिल जायेगी।

ऐसी परिस्थिति में अभीष्ट विषय क्षेत्र से सम्बन्धित सूची खोजने में विषय वाङ्मयसूची सहायता करती है, जैसे कोई अनुसंधानकर्त्ता पुस्तकालय विज्ञान में अनुसन्धान कार्य करता है तो उसके विषय से सम्बन्धित पुस्तकों, लेखों आदि के सम्बन्ध में सम्पूर्ण सूचना प्रदान कर यह अनुसंधानकर्त्ता का समय और श्रम आदि में मितव्ययता लाती है।

(२) पुस्तकालय सूची केवल पुस्तकालय में उस विषय से सम्बन्धित संग्रह की गई पुस्तकों आदि की जानकारी देती है और वह भी अपूर्ण देती है क्योंकि प्रायः पुस्तकालय में—

(अ) पुस्तक आदि है तो सूची पूर्ण (अद्यतन) नहीं है।

(ब) पुस्तक कार्ड निर्मित है, पर पुस्तक नहीं है।

इसी कारण अभीष्ट विषय से सम्बन्धित सम्पूर्ण साहित्य की जानकारी देने के लिए यह महत्त्वपूर्ण उपकरण है।

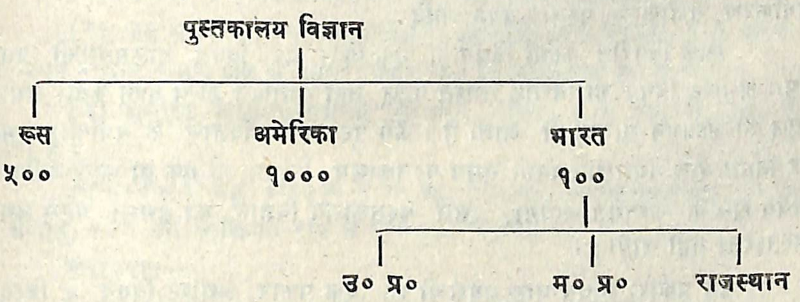
(३) पुस्तक उत्पादन अत्यधिक है, साधन कम है, जिसमें किसी विषय से सम्बन्धित सम्पूर्ण साहित्य नहीं क्रय किया जा सकता। ऐसी स्थिति में उपयोगकर्त्ता को अभीष्ट विषय से सम्बन्धित सम्पूर्ण सामग्री के सम्बन्ध में यह वाङ्मयसूची संकेत करती है और सूचना भी देती है कि अमुक अध्ययन-सामग्री में क्या विषयवस्तु है। इस तरह विषय के अध्ययन एवं चयन में सहायता करती है।

(४) ज्ञान निरन्तर विकसित होता रहता है। साथ ही किसी विषय का साहित्य इतना विस्तृत होता है कि उसे पूर्णरूपेण आत्मसात् नहीं किया जा सकता। अनुसंधान से विदित हुआ है कि सामयिक प्रकाशन का लेख पन्द्रह-सोलह घण्टे निरन्तर अध्ययन के उपरान्त भी यह पाया गया है कि अमुक विषय का केवल एक चौथाई साहित्य ही पढ़ा जा सका है। ऐसी स्थिति में उत्पादित साहित्य को विषय वाङ्मयसूची नियन्त्रित रूप में उपयोगकर्त्ताओं के समक्ष उपस्थित करती है। अगर ऐसा न किया जाय तो महत्त्वपूर्ण लेखों के गुम हो जाने का भय रहता है।

(५) विषय वाङ्मयसूची किसी विषय पर पाठकों एवं पुस्तकालय कर्मचारियों को पुस्तक-चयन में सहायता प्रदान करती है। इससे पाठक आवश्यकतानुसार अपनी निजी विषय सूची निर्मित कर सकता है। साथ ही पुस्तकालय में अभीष्ट विषय पर उत्तम सामग्री का भी चयन करके पुस्तक-चयन के उद्देश्य को भी सार्थकता प्रदान करने में सहायक उपकरण के रूप में इसका उपयोग किया जा सकता है।

(६) कौन से देश में अमुक विषय पर अधिक कार्य हो रहा है? कौन सी संस्था अथवा किस व्यक्ति ने अभीष्ट विषय पर अधिकतम कार्य किया है या कर

रहा है, इन सब की जानकारी विषय वाङ्‌मयसूची सरलतापूर्वक प्रदान करती है। जैसे यह मान लिया जाय कि पुस्तकालय विज्ञान के विषय में विभिन्न देशों में निम्न सामायिक प्रकाशित होते हैं—




इस सम्पूर्ण साहित्य को एक स्थान पर एकत्र हो जाने से स्वयं यह ज्ञात हो जाता है कि अमुक देश अथवा अमुक क्षेत्र में अधिक कार्य हो रहा है।

(७) विषय वाङ्मयसूची भूतकालीन (Retrospective) साहित्य खोजने में पाठक एवं पुस्तकालय कर्मचारियों को सहायता पहुँचाती है। अगर यह न हो तो उपयोगकर्त्ताओं को अभीष्ट जानकारी हेतु पुस्तकालय-सूची देखना पड़ेगा जो निःसन्देह विषय में पूर्ण नहीं होती क्योंकि सम्पूर्ण विषय को पुस्तकालय में रखना सम्भव नहीं है और न ही विषय की समस्त अध्ययन-सामग्री उपयोगी होती है। साथ ही सूची देखने में समय एवं श्रम व्यर्थ जाता है क्योंकि पुस्तकालय सूची से सम्पूर्ण जानकारी नहीं मिलती है। इस तरह यह पाठकों का समय बचे (Save the time of the readers) इस सिद्धान्त के अनुसार भी लाभकारी है।

(८) पाठकों के विभिन्न अभिगम (Approach) होते हैं यथा लेखक, आख्या, विषय आदि। आज इन सभी अभिगमों में से विषय से अध्ययन-सामग्री की सर्वाधिक माँग होती है। इसी के फलस्वरूप पुस्तकालय विज्ञान के क्षेत्र में नवीन तकनीकी विधियों का उद्‌भव हुआ। जैसे अनुवर्ग सूची (Classified Catalouge) आदि। इस दृष्टि से भी विषय वाङ्‌मयसूची आवश्यक एवं उपयोगी है।

**विषय वाङ्मयसूची के प्रकार**

विषय वाङ्‌मयसूची में परस्पर विभिन्नतायें मिलती हैं, जिसे निम्न आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है—

(१) अन्तर्भूत विषय का विस्तार (Range of subject covered)

(२) अन्तर्भूत सूचना का विस्तार (Range of information covered)

(३) अन्तर्भूत सामग्री का विस्तार (Range of material covered)

इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

**(१) अन्तर्भूत विषय का विस्तार**—इसके अन्तर्गत विस्तार एवं संकुचन के आधार पर विषय वाङ्‌मयसूची की विभिन्नतायें मिलती हैं। विषय वाङ्‌मयसूची

निर्मित करते समय उस अभीष्ट विषय के विस्तार में उससे सम्बन्धित सूक्ष्म बातें भी आ जाती हैं, जैसे पुस्तकालय-विज्ञान विषय की वाङ्मयसूची विस्तृत वाङ्मयसूची होगी। इसमें पुस्तकालय विज्ञान से सम्बन्धित समस्त पहलू आ जायेंगे, जैसे, वर्गीकरण, सूचीकरण, पुस्तक-चयन आदि।

इसके विपरीत किसी विषय के एक पहलू पर विषय वाङ्मयसूची बनाते समय अभीष्ट विषय का विस्तृत समस्त पहलू नहीं समाहित होता वरन् केवल अभीष्ट पहलू की अध्ययन-सामग्री ही आती है। जैसे पुस्तकालय-विज्ञान के वर्गीकरण भाग पर विषय वाङ्मयसूची बनाते समय पुस्तकालय विज्ञान का एक ही पहलू वर्गीकरण विषय क्षेत्र के अन्तर्गत आयेगा, इसमें पुस्तकालय विज्ञान का समस्त पहलू अर्थात् विस्तारता नहीं आयेगी।

इस प्रकार विषय वाङ्मयसूची का एक प्रकार अभीष्ट विषय के विस्तार एवं संकुचन के आधार पर किया जा सकता है।

**(२) अन्तर्भूत सूचना का विस्तार**—विषय वाङ्मयसूची में प्रदान की गयी सूचना (Information) के आधार पर भी इसमें विभिन्नतायें मिलती हैं, जिसे मुख्यतः निम्नलिखित रूपों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) आख्या विषय वाङ्मयसूची (Title subject bibliography)

(ब) टिप्पणीकृत विषय वाङ्मयसूची (Annotated subject bibliography)

(स) सारयुक्त विषय वाङ्मयसूची (Abstracted subject bibliography)

इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

**(अ) आख्या विषय वाङ्मयसूची**—कुछ विषय वाङ्मयसूची केवल अध्ययन-सामग्री की आख्याओं को प्रस्तुत करती हैं। उनको आख्या विषय वाङ्मयसूची कहते हैं। यह वाङ्मयसूची अभीष्ट विषय पर केवल आख्या सम्बन्धी सूचना देने में समर्थ होती हैं। इसमें आख्या के साथ टिप्पणी (Annotation) तथा सार (Abstract) नहीं पाया जाता है। जैसे—

(१) इण्टरनेशनल बिब्लियोग्रेफी ऑफ इकोनॉमिक्स १९५२, वार्षिक प्रकाशन, निरन्तर प्रकाशित। यह वाङ्मयसूची इण्टरनेशनल बिब्लियोग्रेफी ऑफ सोसल साइन्स द्वारा प्रकाशित की जाती है, प्रकाशक समय-समय पर बदलते रहते हैं।

(२) इण्टरनेशनल बिब्लियोग्रेफी ऑफ पोलिटिकल साइन्स १९५२, वार्षिक प्रकाशन।

(३) इण्टरनेशनल बिब्लियोग्रेफी ऑफ सोसलॉजी १९५२, वार्षिक प्रकाशन।

**(ब) टिप्पणीकृत विषय वाङ्मयसूची**—कुछ विषय वाङ्मयसूची में अभीष्ट विषय के अन्तर्गत आने वाली अध्ययन-सामग्री के सम्बन्ध मे ऐसी प्रविष्टियाँ

(Entries) दी जाती हैं, जिससे पाठक को ग्रन्थ के विषय में सही जानकारी मिलती है। इसमें टिप्पणी (Annotation) विशेष रूप से तब अंकित की जाती है—

(१) जब कि ग्रन्थ की आख्या अस्पष्ट, अपूर्ण और भ्रामक होती है।

(२) जब लेखक की योग्यता बताना अनिवार्य हो, तब यह दिया जाता है कि अमुक लेखक, अमुक क्षेत्र में इतनी विशेषतायें एवं योग्यतायें रखता है।

(३) अभीष्ट अध्ययन-सामग्री का स्तर प्रस्तुत करने हेतु भी यह दिया जाता है।

इस सम्बन्ध में यह ध्यातव्य है कि यह टिप्पणी (Annotation) हर दशा में संक्षिप्त, स्पष्ट एवं व्यक्तिगत राय से मुक्त होनी चाहिये।

उदाहरण—

Facet of social control and nationalization of banks in India.

(A select annotated bibliography by Mohinder Singh)

यह वाङ्मयसूची केवल बैंक सूचनायें, बैंक के सामाजिक सम्बन्ध और बैंक के राष्ट्रीयकरण के सम्बन्ध में सूचनायें देती है। इसमें सामयिक लेखों की सूचनायें दी जाती हैं।

(स) सारयुक्त विषय वाङ्मयसूची—विषय वाङ्मयसूची का सर्वोत्तम एवं उपयोगी रूप सारयुक्त विषय वाङ्मयसूची (Abstracted subject bibliography) मानी जाती है, जिसमें प्रत्येक प्रविष्टि में अध्ययन-सामग्री के विषय-वस्तु का सार (Abstract) दिया जाता है, यह २०वीं शताब्दी की देन है। इसकी आवश्यकता विभिन्न विषय क्षेत्र में साहित्य की जटिलता के कारण हुई। इस विषय वाङ्मयसूची में प्रकाशित लेख (आर्टिकिल) जो प्रायः कई-कई पन्नों में होते हैं, उनको कुछ पंक्तियों में सार के रूप में अंकित किया जाता है। इससे प्रायः निम्नलिखित लाभ होते हैं—

(१) यह अनुसन्धानकर्त्ताओं के समय और श्रम आदि में मितव्ययता लाती है।

(२) इसके माध्यम से अनुसन्धानकर्त्ताओं को उनके अभीष्ट विषय तक पहुँचने में सहायता मिलती है।

(३) अनावश्यक अध्ययन-सामग्री का अध्ययन करने से बचाती है।

उदाहरण—

Gail, N. K. : Asian social science bibliography with annotations and abstracts, Delhi, Vikash Publishing House.

(३) अन्तर्भूत सामग्री का विस्तार—किस विषय वाङ्मयसूची में किस प्रकार की सामग्री समाहित की गई है, इस आधार पर भी ये भिन्नतायें मिलती हैं। जैसे—

(अ) पुस्तक
(ब) सामयिक लेख
(स) सन्दर्भ पुस्तक
(द) विषयांश की विषय वाङ्मयसूची (टॉपिकल सब्जेक्ट बिब्लियोग्रैफी)

इनका परिचय इस प्रकार है—

(अ) पुस्तक—ऐसी विषय वाङ्मयसूची में केवल पुस्तकों को ही अध्ययन-सामग्री में से वाङ्मयसूची निर्माण हेतु चयन करते हैं। विलियम ने बारह सौ पुस्तकों की विषय वाङ्मयसूची बनायी थी।

(ब) सामायक लेख—कुछ विषय वाङ्मयसूची केवल सामयिक लेखों का आधार लेकर निर्मित की जाती है, जिसे इस आधार पर पृथक् किया जा सकता है। आजकल पुस्तक-विषय वाङ्मयसूची की अपेक्षा यह अधिक उपयोगी मानी जाती है। 'इण्डियन लायब्रेरी लिट्रेचर' का नाम इस दृष्टि से लिया जा सकता है।

(स) सन्दर्भ पुस्तक—विषय वाङ्मयसूची को सन्दर्भ पुस्तकों के आधार पर निर्मित किये जाने पर इस दृष्टि से विभाजित किया जा सकता है।

(द) विषयांश की विषय वाङ्मयसूची—किसी विषय के अन्तर्गत किसी विषयांश (Topic) पर जो वाङ्मयसूची बनायी जाती है उसे विषयांश की विषय वाङ्मयसूची कहते हैं।

### डा० रंगनाथन का मत

डा० रंगनाथन के मत से—"विषय वाङ्मयसूची वह प्रलेखात्मक वाङ्मयसूची होती है जो केवल (किसी) विशिष्ट विषय क्षेत्र तक ही सीमित होती है और जिसमें सम्पूर्ण विषय क्षेत्र का समावेश नहीं होता है।"

विषय के क्षेत्र के रूप में व्यक्ति, भौगोलिक सत्ता (स्थान, क्षेत्र), सामग्री का रूप, साहित्य की विधा, आदि कुछ भी हो सकता है।

### उदाहरण

व्यक्ति का उदाहरण

1. William Jaggard, Shakespeare bibliography......., Strafford-on-Avon, Shakespeare Press, 1911.

भौगोलिक सत्ता का उदाहरण

2. Documentation on Asia, 1960—Delhi, Vikas Publishing House Vol. 1—1962, (vol. 4 was published in 1974).

सामग्री के रूप का उदाहरण

3. New geographical literature and maps, London, Royal Geographical Society, Vol. 1—1951, Semi-annual.

साहित्य का उदाहरण

4. Fiction catalogue, 8th ed. 1970, New York, Wilson, 1971, with four annual supplements, 1971-1974.

अन्य—

5. Library literature, 1921-32, New York, Wilson, 1934.

**विषय वाङ्मयसूची कौन बनाये ?**

इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है और मुख्य रूप से तीन विचारधारायें मिलती हैं—

(१) पुस्तकालयाध्यक्ष
(२) विषय विशेषज्ञ
(३) पुस्तकालयाध्यक्ष एवं विषय विशेषज्ञ के सहयोग से

**पुस्तकालयाध्यक्ष**— इसके पक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि पुस्तकालयाध्यक्ष को उपयोगकर्त्ताओं के विभिन्न अभिगम, माँग, विषय आदि की पर्याप्त जानकारी रहती है। विषय के सम्बन्ध में यह तर्क दिया जाता है कि पुस्तकालयाध्यक्ष को पुस्तकालय में निहित सम्पूर्ण विषय का थोड़ा बहुत ज्ञान अवश्य रहता है।

इसके विपक्ष में यह तर्क दिया जाता है कि पुस्तकालयाध्यक्ष को प्रत्येक विषय के पारिभाषिक शब्दों का ज्ञान नहीं होता है। जैसे कोई पुस्तकालयाध्यक्ष कला विषय का अध्येता रहा है तो वह विज्ञान जैसे विषय में विस्तार एवं गहनता से विषयवाङ्मयसूची नहीं निर्मित कर सकता है क्योंकि वह विज्ञान के उस विषय की पारिभाषिक शब्दावली आदि से पूर्णरूपेण परिचित नहीं होता है।

**विषय विशेषज्ञ**—इस विचारधारा वाले विद्वानों का मत है कि जिस विषय पर वाङ्मयसूची तैयार करनी अथवा करानी हो तो उसे उस विषय के विशेषज्ञ (Subject Specialist) से निर्मित करवाना चाहिये क्योंकि विषय विशेषज्ञ उस विषय से पूर्णतया परिचित रहते हैं।

परन्तु इसके विपक्ष में यह कहा जाता है कि विषय विशेषज्ञ उस विषय के ही नहीं परन्तु किसी भी प्रकार की वाङ्मयसूची बनाने के तकनीकी ज्ञान से अपरिचित रहते हैं। तब वे उच्च स्तर की वाङ्मयसूची कैसे बना सकते हैं ?

**पुस्तकालयाध्यक्ष एवं विषय विशेषज्ञ के सहयोग से**—इस विचार धारा के विद्वानों का मत है कि पुस्तकालयाध्यक्ष एवं विषय विशेषज्ञ दोनों के सहयोग से वाङ्मयसूची बनायी जानी चाहिए।

**(ग) व्यावसायिक वाङ्मयसूची (Trade Bibliography)**

विभिन्न व्यापारिक संस्थान अपनी-अपनी प्रकाशित पाठ्य-सामग्री तथा उनके द्वारा उपलब्ध होने वाली पुस्तकों की सूची प्रकाशित करते हैं। ये संस्थान, प्रकाशक, पुस्तक विक्रेता अथवा विभिन्न इकाइयों के समूह हो सकते हैं। उन्हें

संकलित कर जो सूची निर्मित की जाती है उसे व्यावसायिक वाङ्मयसूची कहते हैं। इसकी परिभाषा इस प्रकार है—

'प्रकाश्यमान या बिक्री के लिए प्रस्तुत पुस्तकों की सूची जो किसी प्रकाशक, पुस्तक विक्रेता या ऐसी एजेन्सियों के एक समूह द्वारा संकलित और प्रकाशित हो।'[1]

—ए० एल० ए० ग्लॉसरी

प्रायः यह पुस्तक-व्यवसायी संगठन के द्वारा ही प्रकाशित की जाती है। राष्ट्रीय वाङ्मयसूची की भाँति यह भी किसी देश में प्रकाशित पाठ्य-सामग्री का एक लेखा (रिकार्ड) है। पर दोनों में मूलभूत अन्तर भी परिलक्षित होता है।

उद्देश्य—(१) नवीन प्रकाशित पुस्तकों आदि की जानकारी पाठकों को देना।

(२) पुस्तकों के प्रचार से उनकी बिक्री बढ़ाना क्योंकि इनका उद्देश्य व्यावसायिक होता है।

लाभ—इससे निम्नलिखित लाभ होते हैं :—

(१) यह पुस्तक चयन में सहायता करती है।

(२) यह अद्यतन वाङ्मयात्मक आँकड़े (Bibliographical data) भी प्रस्तुत करती है।

(३) जहाँ राष्ट्रीय वाङ्मयसूची का अभाव है, उस देश में साहित्यिक उत्पादन की जानकारी हेतु सहायता करती है कि किस समय में कितना साहित्य किस भाषा में प्रकाशित हुआ है क्योंकि राष्ट्रीय वाङ्मयसूची का इतिहास केवल पचास वर्षों का ही है। इसके पूर्व ये पूर्ण रूप से सहायक उपकरण थीं और आज भी हैं।

(४) इससे एक लाभ इस दृष्टि से भी है कि बहुभाषी देश में विभिन्न भाषाओं में कितना साहित्य उपलब्ध है इसकी जानकारी भी प्राप्त होती है।

(५) यह स्वभावतः वर्गीकृत विषयानुसार व्यवस्थित होती है तथा इसका उपव्यवस्थापन लेखक क्रम से होता है।

(६) चूंकि यह प्रायः साप्ताहिक, मासिक, त्रैमासिक, वार्षिक आदि ग्रन्थ सूचियों के आधार पर निर्मित की जाती है, अतः इससे किसी विशेष देश, क्षेत्र के साहित्य से सम्बन्धित सांख्यिकी भी निर्मित की जा सकती है।

प्रकार—इसके मुख्य रूप से निम्न प्रकार होते हैं जो उनके स्वरूप प्रकृति के आधार पर किये जा सकते हैं :—

(१) अद्यतन प्रकाशित पुस्तकों की सूची जो प्रायः बिक्री हेतु होती है।

(२) कृतोपभोग पुस्तकें (Second hand book)—एक बार उनका उपयोग करने के बाद जो पुस्तकें बिक्री के लिए होती हैं उनकी सूची। इसके चयन में निम्न बातें विशेष रूप से ध्यातव्य हैं—

---

1. A list of books in print or for sale compiled by a publisher or a book-seller or a group of such agencies.— A.L.A. Gloss.

(अ) जो पुस्तक क्रय की जाने वाली है उसकी उपयोगिता क्या है ?

(ब) पुस्तकालय में अथवा बाजार में उसका नवीनतम अंक है अथवा नहीं।

(स) उस पुस्तक की भौतिक स्थिति क्या है ? ऐसा तो नहीं है कि वह जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है।

पुस्तकालय में इसके लिए विशेष नियम होते हैं जिनका उपयोग किया जा सकता है।

**(३) विभिन्न क्षेत्रों में शासकीय प्रकाशन**—इसमें अर्द्ध शासकीय, केन्द्रीय, प्रदेशीय अथवा विशेष मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित पुस्तकें आती हैं।

**(४) अनुसन्धान, प्रतिवेदन आदि की सूची**—पुस्तकालय में शोधरत अध्येता एवं पाठकों हेतु इसकी आवश्यकता निरन्तर पड़ती रहती है।

**उदाहरण**—

(1) Books of India : Supplement to Index, India, 1967, annual.

(2) Indian book Industry, Delhi, Sterling, 1969, monthly.

(3) Indian book reporter, Gurgaon, Prabhu Book Service, 1965, monthly.

(4) Indian books, 1969—Varanasi, Indian Bibliographic Centre, 1970, annual.

(5) Indian books, 1974-75 an annual bibliography, New Delhi, Today and Tomorrow, 1975.

(6) Indian publisher and book-seller, Bombay, Popular Book Depot, vol. 1, 1951, monthly.

(7) प्रकाशन समाचार, दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, १९५३, मासिक।

(8) Indian books in print, 1955-67, a select bibliography of English books published in India, compiled by Sher Singh and S. N. Sadhu, Delhi, Indian Bureau of Bibliographies, 1969.

(9) Indian books in print, 1972 : A bibliography of Indian books published up to December 1971, in the English language, Delhi, Indian Bureau of Bibliographies, 1972, 3 volumes.

(10) Cumulative books Index : a world list of books in the English language, Newyork, H. W. Wilson Company, 1898 to date, monthly.

(11) Publishers weekly, Newyork, R. R. Bowker, 1872 to date, Weekly.
(12) Publishers Trade list, annual, R. R. Bowker, 1873.
(13) Reference Services review, Ana Arbor, Michigan Press, 1972, quarterly.
(14) Whitaker's Cumulative book list, 1924; London, Whitaker, 1924, quarterly.
(15) British books in print, London, Whitaker, 1965, annual.

(घ) राष्ट्रीय वाङ्मयसूची (National Bibliography)

परिभाषा—'यह किसी देश की भाषा में प्रकाशित पुस्तकों की सूची या किसी देश में प्रकाशित पुस्तकों की सूची, चाहे उनकी भाषा कोई भी हो, उसको राष्ट्रीय वाङ्मयसूची कहते हैं।[1] इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि यह किसी भी देश की अपनी भौगोलिक सीमाओं के अन्तर्गत एक या अधिक भाषाओं में विभिन्न विषय में प्रकाशित पुस्तकों की सूची होती है। परन्तु यह अर्थ आज संकुचित रूप में देखा जाता है। यही कारण है कि लायब्रेरी ऑफ कांग्रेस ने राष्ट्रीय वाङ्मयसूची में निम्न तत्वों का समावेश होना बताया है जो कि इसकी व्यापकता को स्पष्ट करती है—

(१) देश में प्रकाशित एवं मुद्रित सामग्री।
(२) राष्ट्रीय एवं निवासी लेखकों की रचनाएँ।
(३) देश की भाषा में विदेशियों द्वारा रचित रचनाएँ।
(४) देश का विषय— सामान्य, साहित्य, जीवन-चरित्रात्मक, इतिहास अथवा वर्णनात्मक हो।

इसमें नियम एवं अपवाद को छोड़ दिया जाता है।

क्षेत्र—उपरोक्त तत्वों के आधार पर इसके क्षेत्र को निम्न रूप में स्पष्ट किया जा सकता है—

(१) उस राष्ट्र से सम्बन्धित नागरिक (जिस देश की वाङ्मयसूची तैयार की जाने वाली है।) अगर विदेश से सम्बन्धित विषयों पर साहित्य रचता है तो राष्ट्रीय वाङ्मयसूची में स्थान देते हैं, शर्त यह है कि अध्ययन सामग्री उस देश में प्रकाशित हो।

---

1. 'National Bibliography is the record of books produced in the language of one country or of books produced in the country, whatever their language.
—A. K. Mukherji, Reference work and its tools, p. 115.

(२) जिस देश की राष्ट्रीय वाङ्मयसूची तैयार की जा रही है, उस देश के नागरिक द्वारा रचित साहित्य चाहे वह विदेशों में प्रकाशित हो, उसे भी इस वाङ्मयसूची में समाहित करते हैं।

(३) विदेशी व्यक्ति का साहित्य उस राष्ट्र की सीमा में प्रकाशित हो।

(४) विदेशी नागरिक द्वारा रचित विदेश में प्रकाशित साहित्य को भी स्थान देते हैं, शर्त यह है कि साहित्य का सम्बन्ध उस राष्ट्र से प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से जुड़ा हो।

**प्रकार**—यह मुख्यतः दो प्रकार की होती है—

(१) भूतकालीन राष्ट्रीय वाङ्मयसूची।

(२) अद्यतन राष्ट्रीय वाङ्मयसूची (Current National Bibliography)

भूतकालीन राष्ट्रीय वाङ्मयसूची में एक निश्चित तिथि से एक निश्चित तिथि तक के प्रकाशनों को समाहित करते हैं।

अद्यतन राष्ट्रीय वाङ्मयसूची में समकालीन प्रकाशित अध्ययन-सामग्री को समाहित करते हैं। इसमें क्या-क्या सामग्री रखी जाय, इसकी सीमा क्या हो, आदि बातें मुख्यतया इस पर आधारित हैं कि इसके उपयोगकर्ता कौन हैं। इनको कई श्रेणियों में बाँट सकते हैं—

(१) पुस्तकालयाध्यक्ष—पुस्तक चयन के लिए

(२) प्रकाशक

(३) पुस्तक विक्रेता

(४) पुस्तक व्यवसाय

(५) विद्वान्

उपर्युक्त सभी को आख्या, लेखक, मूल्य, प्रकाशन स्थान (Imprint), पत्रादि विवरण (Collation) आदि की आवश्यकता पड़ सकती है।

इसमें एक निश्चित तिथि से प्रारम्भ करके निरन्तर अद्यतन सामग्री प्रकाशित करते रहते हैं। इसके निर्माण में पुस्तक विक्रेता संघों, प्रकाशकों, पुस्तकालय संगठनों, वाङ्मयसूचीकारों एवं सरकार, आदि का सहयोग अपेक्षित है।

डॉ० रंगनाथन[1] ने राष्ट्रीय वाङ्मयसूची के निम्नलिखित प्रकार किये हैं—

(१) किसी देश में प्रकाशित समस्त पुस्तकों की सूची।

(२) किसी देश के सम्बन्ध में प्रकाशित समस्त पुस्तकों की सूची।

(३) किसी देश के समस्त नागरिकों द्वारा प्रकाशित पुस्तकों की सूची।

(४) किसी देश के समग्र नागरिकों के सम्बन्ध में प्रकाशित पुस्तकों की सूची।

(५) उपर्युक्त श्रेणी में किसी भी प्रकार का समावेश।

---

1. S. R. Ranganathan, Physical bibliography for libraries, 2nd ed. Bombay, Asia Publishing House, 1974, pp 22-23.

लाभ—इसकी उपयोगिता को निम्न दृष्टिकोण से आंका जा सकता है—

(१) पुस्तकालय कर्मचारीगण पुस्तक-चयन, अन्तर्पुस्तकालय उधार आदि के लिए इसका उपयोग करते हैं।

(२) यह अनुसंधानकर्त्ताओं को उनके अनुसंधान में सहायता करती है।

(३) यह राजनीतिक दृष्टि से साहित्यिक उत्पादन के सशक्त माध्यम का कार्य करती है।

(४) व्यावसायिक रूप में प्रकाशकों एवं पुस्तक विक्रेताओं के लिये उपयोगी होती है।

उदाहरण

(1) Accession's List : India
Monthly List : Supplement to the Catalogue of civil publications of the Govt. of India.

(2) Press in India.

(3) Indian Science Abstracts.

(4) National bibliography of Indian literature, 1901-1953.

(5) Indian National Bibliography, quarterly, Oct. 1957-Dec. 1963, monthly January 1964, Central Ref. Library, Calcutta, 1959 with annual Cumulations (latest annual volume is for the year 1972. No annual volumes were issued for 1967-70, the five year cumulative index to volumes for 1958-62 is also available.)

(6) Publisher's weekly.

(7) L. C. Catalogues (NUC)

(8) Books in print.

(9) British National Bibliography, weekly.

(10) Cumulative Book Index.

(11) Cumulative Book List.

उपर्युक्त उदाहरण में क्रम संख्या १, २, ३ के उदाहरण अद्यतन राष्ट्रीय वाङ्मयसूची से, क्रम संख्या ४, ५, के उदाहरण भूतकालीन राष्ट्रीय वाङ्मयसूची से सम्बन्धित है। क्रम संख्या ६, ७, ८, ९, १० और ११, के उदाहरण विदेशों की अद्यतन राष्ट्रीय वाङ्मयसूचियाँ हैं।

(ङ) सार्वभौम वाङ्मयसूची (Universal Bibliography)

इसे प्रायः सामान्य, विश्वव्यापी, सार्वकालिक आदि नामों से भी सम्बोधित

करते हैं। इसके लिए आज तक न किसी सिद्धान्त की रचना की गई और न ही यह अनिवार्य है क्योंकि इसमें राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय वाङ्मयसूची के सिद्धांन्त ही लागू होते हैं। इसकी परिभाषा निम्नवत् है—

'सामान्य या सार्वभौम वाङ्मयसूची ज्ञान के सभी क्षेत्रों में सभ्यता के लिखित विवरणों का वृहद एवं विस्तृत, यद्यपि अपूर्ण, सर्वेक्षण है और यह वाङ्मयसूची समय, स्थान, भाषा, विषय या लेखक से प्रतिबन्धित नहीं होती। (विश्व के) बड़े-बड़े पुस्तकालयों की प्रकाशित पुस्तक-सूचियाँ इसके निकटतम उदाहरण हैं।'[1]
—मुकर्जी

'सार्वभौम वाङ्मयसूची वह है जो किसी भी सामग्री से निर्मित हुए सभी देशों में प्रकाशित, समस्त भाषाओं में, सभी विषयों में और सभी विषयों पर लिखित पुस्तकों, लेखों आदि की सूची होती है।' —एस० आर० रंगनाथन

'सार्वभौम वाङ्मयसूचियाँ वे हैं जो समय, राष्ट्रीयता, लोकल्टी, विषय या लेखक से प्रतिबन्धित नहीं होती।'[2] —एम० वी० हिगिन्स

संक्षेप में कहा जा सकता है कि यह ज्ञान के सम्पूर्ण क्षेत्र में सभ्यता के लिखित लेखा का पूर्ण सर्वेक्षण करने का प्रयास करती है। इसमें समय, स्थान, भाषा, विषय, लेखक आदि का कोई प्रतिबन्धन नहीं होता।

इतिहास—सर्वप्रथम १६वीं शताब्दी से इस प्रकार की वाङ्मयसूची बनाने का प्रयास किया गया। मुद्रण एवं प्रकाशन का प्रादुर्भाव १५वीं शताब्दी के अन्त से माना जाता है। इस तरह केवल १५वीं शताब्दी के बाद से ही वाङ्मयसूची बनाने का प्रयास होने लगा। यूनेस्को के एक सर्वेक्षण के अनुसार विश्व में प्रतिवर्ष बारह करोड़ पुस्तकें, आदि प्रकाशित होती हैं। परन्तु प्रारम्भ में इनकी संख्या न्यूनतम थी।

१५४३ ई० में इस प्रकार की वाङ्मयसूची के निर्माण का प्रथम प्रयास किया गया, जिसकी आख्या बिब्लियोथेका यूनीवेरसालिस (Bibliotheca Universalis) है। इसके लेखक सी० गेन्सर थे। इसमें तत्कालीन प्रचलित सभी प्रमुख

---

1. 'General or universal bibliography provides a wide, comprehensive, though not complete svrvey of written records of civilization in all fields of knowledge and is not restricted by time, place, language, subject or author. Published catalogues of great libraries are the nearest approach to this type '—A. K. Mukherji, Reference Work and its tools, Ist ed. 1964
2. 'General bibliographies are those not limited by time, nationality, locality, subject or author.' —M. V. Higgins.

भाषाओं को तथा ग्रीक, लैटिन एवं हिब्रू आदि के साहित्य को समाहित किया गया। इस वाङ्मयसूची के अन्तर्गत उस समय उपलब्ध साठ हजार संलेखों में से केवल बारह हजार संलेखों को वर्गानुसार व्यवस्थित किया गया। इस प्रकार यह तत्कालीन सम्पूर्ण साहित्य का बीस प्रतिशत अर्थात् ⅕ भाग ही था। अतः यह प्रयास आंशिक ही था। यहां यह भी ध्यातव्य है कि यह प्रयास उस समय का है जब साहित्य का उत्पादन अति सीमित था।

इसके द्वितीय संस्करण में एक्कीस खण्ड (Volumes) थे जो १९५५ ई० में प्रकाशित हुआ था और परिशिष्ट के तौर पर तीन हजार संलेखों को समाहित किया गया, फिर भी अपूर्ण रहा। इसका प्रकाशन 'एपेन्डिक्स बिब्लियोथेका' के नाम से किया गया।

सार्वभौम वाङ्मयसूची का द्वितीय प्रयास पाल ओटलेट तथा हेनरी लॉ फाउन्टेन द्वारा किया गया। द्वितीय प्रयास में अन्तर्राष्ट्रीय संगठन 'इण्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ बिब्लियोग्रेफी' का सहयोग था। इसकी स्थापना ब्रूसेल्स में की गई थी। इसने सार्वभौम वाङ्मयसूची के निर्माण हेतु पन्द्रह करोड़ संलेखों को तैयार किया था परन्तु ये संलेख भी अपर्याप्त एवं अपूर्ण थे। इनका व्यवस्थापन दशमलव वर्गीकरण पद्धति के अनुसार था। लेखकों के नामों को आनुवर्णिक क्रम से व्यवस्थित किया गया परन्तु उस सम्पूर्ण कार्य को प्रथम विश्वयुद्ध के कारण मध्य में ही त्याग देना पड़ा। युद्ध के समय में ही इस संस्था को एफ० आई० डी० (F. I. D.) नामक संस्था के नाम से पुनर्गठित किया गया जो संप्रति प्रलेखन सेवा तक सीमित है।

१९वीं शताब्दी में इसका विशेष विकास नहीं हुआ तथापि जिन व्यक्तियों ने इस दिशा में कार्य किया उनके नाम ये हैं—राबर्टवाट्स, जाक शार्ल ब्रुने, शरेटिन्गर, पेटसहोलड, डान्जोरू, डिल्के, वार्नवेल, कोल, होटिंगर एवं एरमान।

उदाहरण—ब्रिटिश म्यूजियम तथा लायब्रेरी ऑफ कांग्रेस के कैटलॉग विश्व की नब्बे प्रतिशत पुस्तकों के प्रकाशनों की सूची माने जाते हैं। इस प्रकार इन्हें सार्वभौम वाङ्मयसूची का छोटा रूप माना जा सकता है परन्तु पूर्णरूपेण सार्वभौम वाङ्मयसूची कदापि नहीं कही जा सकती।

'जनरल कैटलॉग ऑफ प्रिन्टेड बुक्स' का रोबसन ने 'सिस्टमेटिक बिब्लियोग्रेफी' में प्रायोगिक रूप में उल्लेख किया है।

(१) ब्रिटिश म्यूजियम। जनरल कैटलॉग ऑफ प्रिंटेड बुक्स। ९५ खण्डों में १८८१-१९००, १३ खण्डों में पूरक १९००-१९०५.

(2) Library of Congress. Catalogue of books represented by library of Congress printed Cards. 209 v. 1942-1948 with supplements from 1947 onwards as cumulative catalogue of library of Congress printed cards.

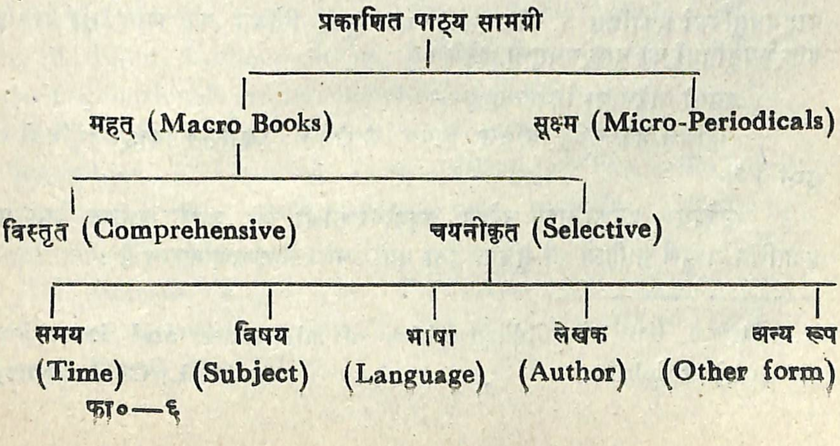
**सार्वभौम वाङ्मयसूची के निर्माण की समस्याएँ**—इसके निर्माण में निम्न समस्याएँ मुख्य रूप से आती हैं—

(१) ज्ञान क्षेत्र का निरन्तर विकास।
(२) प्रकाशन क्षेत्र में तीव्रता।
(३) प्रकाशन का विभिन्न भाषाओं में होना।
(४) विषयों की जटिलता।
(५) ज्ञान के हर क्षेत्र में विशिष्टीकरण में वृद्धि।
(६) अनुदान आदि का पर्याप्त न मिलना।
(७) यह वाङ्मयसूची पर्याप्त समय लेने वाली होती है।
(८) उपयोगकर्त्ताओं के पास समयाभाव।
(९) साहित्य के संकलन में लगने वाले स्थान का अभाव।
(१०) परस्पर असहयोग एवं संघर्ष होना।

**सुझाव**—यद्यपि आज के युग में सार्वभौम वाङ्मयसूची का निर्माण असंभव-सा है तथापि इस विषय पर कतिपय सुझाव विद्वानों द्वारा व्यक्त किये गये हैं।

सार्वभौम वाङ्मयसूची सम्बन्धी संस्था होनी चाहिए। जो भी अध्ययन-सामग्री आदि प्रकाशित हो उनकी फोटोकापी बनाकर उन्हें सार्वभौम वाङ्मयसूची नामक संस्था को संप्रेषित करना चाहिए। वह संस्था प्राप्त सामग्री को वाङ्मयसूची में जोड़ती जायगी। परन्तु यहाँ फोटोकापी भेजने में भी कई समस्याएँ आती हैं। जैसे, फोटोकापी कौन भेजे—केन्द्रीय शासन, राष्ट्रीय पुस्तकालय या प्रकाशक। दूसरी समस्या यह है कि फोटोकापी भेजने की प्रक्रिया अति व्ययसाध्य है। यह व्यय सब देश अथवा प्रकाशक आदि वहन नहीं कर सकते हैं।

डेनमार्क के प्रसिद्ध वाङ्मयसूचीकार के० लरसन (K. Lerson) ने समस्त प्रकाशित साहित्य को दो भागों में विभाजित करके इसे बनाने का सुझाव दिया है जिससे साहित्य की विशालता में कुछ कमी आ जाती है, साथ ही वह उपयोगसुलभ हो जाता है। जैसे—



लरसन महोदय का मत है कि अगर विश्व के समस्त साहित्य को एक में समाहित कर के वाङ्मयसूची निर्मित की जाय तो वह व्यावहारिक नहीं होगी। उपयोग एवं अध्ययन हेतु वह असम्भव-सी हो जायेगी क्योंकि कोई भी व्यक्ति समस्त साहित्य का अध्ययन नहीं करता और न ही उसमें उसकी जिज्ञासा रहती है। इसीलिये समस्त साहित्य का एक में समावेश करना आवश्यक नहीं है। अतः विस्तृत वाङ्मयसूची (Comprehensive Bibliography) व्यावहारिक रूप में सम्भव नहीं है। इसी कारण चयनीकृत वाङ्मयसूची (Selective Bibliography) निर्मित की जाती है। इसका समय, विषय, भाषा, लेखक तथा अन्य रूप में उचित विभाजन कर के बाद में इसे एक रूप में जोड़ कर विस्तृत वाङ्मयसूची (Comprehensive Bibliography) निर्मित करना चाहिए। इस प्रकार निर्मित सार्वभौम वाङ्मयसूची को निम्नलिखित भागों में आवंटित कर सकते हैं—

(१) महत् (Marco-Books) की विस्तृत वाङ्मयसूची।
(२) महत् की चयनीकृत वाङ्मयसूची।
(३) सूक्ष्म (Micro-Periodicals) की विस्तृत वाङ्मयसूची।
(४) सूक्ष्म की चयनीकृत वाङ्मयसूची।

कालान्तर में विस्तृत एवं चयनीकृत वाङ्मयसूची को और लघु कर सकते हैं। इनको अन्य प्रकार से विभाजित कर सकते हैं जैसे—समय, लेखक, विषय आदि। इसके उपरान्त इन सबको जोड़ कर सार्वभौम वाङ्मयसूची बनायी जा सकती है। महत् (Macro-Books) के समतुल्य सूक्ष्म (Micro-Periodicals) का विभाजन करके सार्वभौम वाङ्मयसूची बनायी जा सकती है।

**(च) वाङ्मयसूचियों की वाङ्मयसूची (Bibliography of Bibliographies)**

विभिन्न प्रकार की, विभिन्न विषयों पर, विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित वाङ्मयसूचियों की सूची (List) को वाङ्मयसूचियों की वाङ्मयसूची कहते हैं। इसको इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि अगर रसायनशास्त्र पर एक हजार वाङ्मयसूचियाँ प्रकाशित हैं और इनकी एक सूची निर्मित की जाय तो उसे ही वाङ्मयसूचियों की वाङ्मयसूची कहेंगे।

इसकी परिभाषा निम्नवत् है—

'विभिन्न प्रकार के, विभिन्न विषय के क्षेत्र में प्रकाशित वाङ्मयसूचियों की सूची।'[1]

उद्देश्य—इसका मुख्य उद्देश्य उपयोगकर्त्ताओं को उनके अभीष्ट विषय पर प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य की सूचना देना एवं उनका नियन्त्रण करना है।

---

1. 'It is a list of bibliographies of all types and in various subject field.' —M. L. Chakraborty.

लाभ—इससे मुख्य रूप से निम्नलिखित लाभ हैं—

(१) इससे मुद्रण कला के विकास के पूर्व से आज तक प्रकाश में आई हुई सूचनाओं की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। यह एक प्रकार से साहित्य के निरन्तर विकास आदि पर परोक्ष प्रकाश डालती है।

(२) यह अनुसन्धान में सहायक होती है क्योंकि इससे किसी विषय के सम्पूर्ण साहित्य पर प्रकाश पड़ता है।

(३) यह वाङ्मयसूची न केवल प्रकाशित अध्ययन-सामग्री की सूचना देती है वरन् उनकी उत्तम व्याख्या एवं मूल्यांकन भी प्रस्तुत करती है। इसी कारण इसे वाङ्मयात्मक अनुक्रमणिका (Bibliographical Index) भी कहते हैं।

(४) यह किसी विशेष विषय के संदर्भ प्रस्तुत करने में भी सहायता करती है। इस तरह यह संदर्भ लेखा में भी सहायक होती है।

(५) इससे किस भाषा में कितनी और कौन-कौन वाङ्मयसूचियाँ हैं, इसकी जानकारी प्राप्त हो जाती है।

वाङ्मयसूचियों की वाङ्मयसूची में वाङ्मयसूचियों को तर्कसंगत आधार पर व्यवस्थित किया जाता है। ये वाङ्मयसूचियाँ विषय या लेखक के आधार पर होती हैं जो अलग-अलग रूप में प्रकाशित की जाती हैं। कुछ मुद्रण कला के प्रारम्भ से ले कर अब तक के ग्रन्थों को सम्मिलित करती हैं। इसमें वाङ्मयसूचियों को एक निश्चित सिद्धान्त या क्रमानुसार चाहे वह विषय, लेखक या अन्य प्रकार से हो व्यवस्थित किया जाता है।

उदाहरण—

1. A world bibliography of bibliographies and of bibliographical catalogues. calendars, abstracts, digests, indexes and the like by Theodore Besterman, 4th ed. Geneva Societas Bibliographica, 1965-67, 5 volumes.

2. Bibliographical services throughout the world, 1950-59, 1960-64, 1965-69, Paris UNESCO, 1961-72, 3 Vol.

3. Index bibliographicus, 4th edition, the Hague, Federation Internationale de Documentation, 1959 to date.

4. Bibliographic Index; Cumulative bibliography of bibliographies, 1937 New York, Wilson, 1938 (Published three times a year, April, August and December, permanent bound annual cumulation)

5. Indiana : a select list of reference and representative books on all aspects of Indian life and culture, by B. Sen Gupta, Calcutta, World Press, 1966.

6. Guide to reference materials on India, compiled and ed. by N. N. Gidwani and K. Navalani, Jaipur, Saraswati Publications, 1974, 2 Vols.

7. Bibliography of bibliographies on India by D. R. Kalia and M. K. Jain, Delhi, Concept, 1975.

**(छ) आदिमुद्रित ग्रन्थ (Incunabula)**

इन्क्युनेबुला (Incunabula) शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन के (Cumae) शब्द से मानी जाती है, जिसका अर्थ होता है पालना। परन्तु यहाँ इन्क्युनेबुला से तात्पर्य आदिमुद्रित ग्रन्थ से है। यह किसी भी क्षेत्र की हो सकती है। यह एक प्रकार से पुस्तक उत्पादन की प्रारम्भिक चाभी है। 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ लाइब्रेरियनशिप' में १५वीं शताब्दी के पूर्व यूरोप में मुद्रित सभी पुस्तकों को इन्क्युनेबुला कहा गया है।[1] १५वीं शताब्दी के समय का चयन इसलिए किया गया है कि विश्व में प्रथम मुद्रणालय १४९७ ई० में स्थापित हुआ। इसके पहले भी पुस्तकें मुद्रित हुईं थीं परन्तु उपलब्ध नहीं हैं। यह वास्तव में वाङ्मयसूची की शैशवावस्था थी क्योंकि उस समय पुस्तकों की सीमित संख्या थी तथा वाङ्मयसूची का अब जैसा विकास नहीं हुआ था। १४९७ ई० के पूर्व का समस्त साहित्य हस्तलिखित होता था। अतः इनकी वाङ्मयसूची स्वाभाविक रूप से मूल वाङ्मयसूची थी, जिसे प्राइमरी बिब्लियोग्रैफी कहते हैं। इसका अधिक महत्त्व इसलिए है क्योंकि यह दुर्लभ और मूल्यवान ग्रन्थों को समाहित कर के निर्मित की जाती है। मुद्रण कला के प्रारम्भ के पूर्व के ग्रन्थ हस्तलिखित होते थे। इसलिए इनमें कोई मूलभूत संलेख नहीं दिये जाते हैं, जैसे लेखक का नाम, आख्या, प्रकाशन स्थान, आदि। ये एक निश्चित अवधि तक के होने के कारण पूर्ण होते हैं।

भारत में बम्बई एवं पूना विश्वविद्यालयों ने आदिमुद्रित ग्रन्थों पर सूची प्रकाशित की है जिसमें प्रायः मराठी ग्रन्थ ही हैं। भारत के सन्दर्भ में श्री ए० एम० प्रियोल्कर का मत है कि आदिमुद्रित ग्रन्थ में १५५६ ई० से १८९९ ई० तक के मध्य मुद्रित ग्रन्थों को सम्मिलित करना चाहिये। इन्होंने तर्क दिया है कि भारत में प्रथम मुद्रणालय १५५६ ई० में स्थापित हुआ और १८९९ ई० तक तकनीकी दृष्टि से अविकसित रहा है। अतः प्रकाशित साहित्य की संख्या भी न्यूनतम रही है। इसी कारण उन्होंने इस समय का सुझाव दिया है।

कुछ विद्वानों का मत है कि १८६७ ई० तक के समय को ही आदिमुद्रित ग्रन्थ नाम देना उचित है क्योंकि १८६७ ई० में 'रजिस्ट्रेशन ऑफ बुक्स ऐक्ट' पास हुआ, जिसके फलस्वरूप एक प्रति कलकत्ता इम्पीरियल लायब्रेरी (अब नेशनल लायब्रेरी) में जमा करना पड़ता है। अतः इस वर्ग के मत के अनुसार भारत के संदर्भ में १५५६ ई०

---

1. 'All books printed in Europe before 1500.'—Encyclopaedia of Librarianship.—Priolkar.

से १८६७ ई० तक प्रकाशित ग्रन्थों की सूची को आदिमुद्रित (Incunabula) कहा जाना चाहिये।

उदाहरण—

(1) Aufrecht Theodore. The catalogus catalogrum : an alphabetical register of Sanskrit works and authors. 3 v. Lipzig, 1891-1903.

यह भारत के आदिमुद्रित ग्रन्थों, विशेष रूप से संस्कृत भाषा में लिखित हस्तलिखित ग्रन्थों की वाङ्मयसूची है। मद्रास विश्वविद्यालय द्वारा इसके पूरक के रूप में नया कैटलागस कैटलागरम १८४८ में डॉ० वी० राघवन के सम्पादकत्व में प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ है। इसके छः खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं।

(2) National Library, Calcutta. Comp. Early printing in India, Calcutta, National Library, 1954.

यह भारत में प्राचीन मुद्रण की एक चयनीकृत वाङ्मयसूची है।

(3) Robert Proctor Index to the early printed books in the British Museum to 1500. 4 v. 1898-1899.

इसमें लगभग दस हजार आदिमुद्रित ग्रन्थों को देश, टाउन, प्रेस, प्रकाशन वर्ष आदि के अनुसार क्रमबद्ध किया गया है। ग्रन्थ के अन्त में लेखक-अनुक्रमणिका भी दी गयी है।

(ज) चयनीकृत वाङ्मयसूची (Selective Bibliography)

मूल वाङ्मयसूची में से किन्हीं तथ्यों अथवा विशेषताओं के आधार पर चुनी हुई पुस्तकों में से जो वाङ्मयसूची निर्मित की जाती है उसे चयनीकृत वाङ्मयसूची कहते हैं। यह एक प्रकार से चुनी हुई सर्वोत्तम पुस्तकों की सूची होती है।[1] यह विभिन्न दृष्टि से, विभिन्न श्रेणियों में विभाजित की जा सकती है। प्रायः इसे निम्न प्रकार से विभाजित किया जाता है :—

(१) पूर्व-प्रकाशित ग्रन्थों की वाङ्मयसूची
(२) सामयिक प्रकाशित ग्रन्थों की वाङ्मयसूची

अथवा

(१) विशेष पाठ्य सामग्री की सूचियाँ
(२) विशेष वर्ग के पाठकों के लिए उत्तर पुस्तकों की सूचियाँ
(३) सन्दर्भ पुस्तकों की सूचियाँ

---

1. 'Selective or eclective bibliography, is the list of 'Best Books' very useful as a guide for selecting books for the average library.'

—A. K. Mukherji—Reference work and its tools.

इसका क्षेत्र कुछ भी हो सकता है—सामयिक, पाठ्य पुस्तक, सन्दर्भ पुस्तक, आदि ।

उदाहरण—

(1) Booklist, Chicago, American Library Association, vol. 1, 1905, Twice monthly except once in August.

(2) The reader's adviser by Hester Hoffman. 10th ed. Newyork, Bowker, 1964.

(3) World's best books, Homer to Hemingway by Asa Don Dickinson, Newyork, Wilson, 1953.

(4) Guide to reference books by C. M. Winchell, 8th ed. Chicago, American Library Association, 1967, First supplement, 1965-67, Second supplement, 1967-68, and third supplement, 1969-70.

(5) Guide to reference material, ed. by A. J. Walford, 2nd ed. London, the Library Association, 1966-68, 2 vol.

(6) Indiana, select list of reference and representative books on all aspects of Indian life and culture, by B. Sengupta, Calcutta, World Press, 1966.

□ □

अध्याय ६

# वाङ्मयात्मक विवरण

## (BIBLIOGRAPHICAL DESCRIPTION)

वाङ्मयसूची शोधकार्य (रिसर्च वर्क) में बहुत सहायक होती है। इससे शोधकर्त्ताओं को यह मालूम हो जाता है कि पुस्तक के अन्तर्गत किस प्रकार की सामग्री दी गई है। जैसे—पुस्तक कितने पृष्ठों की है, उसका आकार-प्रकार कैसा है, उसकी जिल्दबन्दी कैसी है, किस रूप में छपी हुई है। वाङ्मयसूची में किसी पुस्तक के विषय में दिये गये इस प्रकार के विवरण को वाङ्मयात्मक विवरण (Bibliographical Description) कहते हैं।

जे० डी० काउले के अनुसार, 'किसी खास पुस्तक से सम्बन्धित आकार-प्रकार, मुद्रण, विषय-सूची (Contents) के व्यवस्थापन का विवरण जो कि एक निश्चित विधि के अनुसार किया जाय उसको वाङ्मयात्मक विवरण कहते हैं।'[1]

पुस्तक का विश्लेषण इस विधि से कर लेने पर उसकी विशेषतायें स्वयं एक क्रम में आ जाती हैं। फ्रेडसन बावर्स (Fredson Bowers) इस विवरण को वास्तविक वाङ्मयसूची (True Bibliography) कहते हैं। स्नेडर ने इस कार्य को वाङ्मयात्मक वाङ्मयसूची (Bibliographic bibliography) कहा है। इसके अन्तर्गत वाङ्मयसूची के संलेखों में ग्रन्थ का सामान्य परिचय दिया जाता है। किन्तु यह विवरण इतना पर्याप्त होना चाहिये कि गम्भीर पाठकों, शोधकर्त्ताओं तथा विद्वानों के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके।

**लाभ—**

इससे निम्नलिखित लाभ होते हैं—

(१) किसी ग्रन्थ के मूल पाठात्मक अध्ययन (Textual Study) में इससे सहायता मिलती है।

(२) अनुसन्धान के स्तर पर इससे वाङ्मयात्मक अनुसन्धान (Bibliographical Research) में शोधकर्त्ताओं को सहायता मिलती है।

---

1. 'A description, reduced to a formula of the method of publication of a particular book through the setting down of the relevant details of format, typography, arrangement of contents, etc.' —J. D. Cowley.

(३) यह वर्णन साहित्यिक विद्यार्थियों के लिए एक सन्दर्भ ग्रन्थ का काम देता है। इससे उनकी बहुत-सी समस्याओं का उत्तर मिल जाता है। यह स्वयं अपने आप में साहित्यिक इतिहास हो जाता है।

(४) इससे पुस्तकालयाध्यक्षों और ग्रन्थ संग्राहकों को ग्रन्थ संग्रह में सहायता मिलती है।

(५) यह पुस्तक के मुद्रण और प्रकाशन के इतिहास और लेखक के साहित्यिक इतिहास पर भी प्रकाश डालता है।

अतः ग्रन्थ का वाङ्मयात्मक विवरण अति आवश्यक है। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिये कि प्रत्येक ग्रन्थ का विस्तृत विवरण देना उचित तथा आवश्यक नहीं होता। आदिमुद्रित ग्रन्थों का विस्तृत विवरण देना आवश्यक है, किन्तु १७वीं शताब्दी से लेकर आधुनिक समय तक की मुद्रित पुस्तकों का विस्तृत विवरण देने से वाङ्मयसूची का आकार बढ़ता है और सम्पादन में परेशानी होती है। एक ही ग्रन्थ का विवरण किसी एक प्रकार की वाङ्मयसूची में संक्षिप्त रूप में और किसी अन्य प्रकार की वाङ्मयसूची में विस्तृत रूप में दिया जाना चाहिये, जहाँ जैसा आवश्यक हो। अतः वाङ्मयसूची के कार्य (Function) पर वाङ्मयात्मक विवरण के प्रत्येक अंश (Items) के विषय में सूचना का विस्तार निर्भर करता है।

किसी ग्रन्थ के पूर्ण मानक विवरण (Full standard description) के अन्तर्गत निम्नलिखित विवरण दिया जाता है—

(१) आख्या पृष्ठ मुद्रणांक सहित (Title page including imprint)
(२) विशेष या अनुभाग आख्या (Special or section title)
(३) पुष्पिका (Colophon)
(४) पृष्ठादि विवरण, आकार-प्रकार सहित (Collation including format)
(५) टाइप सम्बन्धी टिप्पणी (Typographical note)
(६) विषय-सूची (Contents)
(७) शीर्ष आख्या (Head title or running title)
(८) सूचक शब्द (Catch words)
(९) टिप्पणी (Note)

इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(१) **आख्या पृष्ठ**—इस पृष्ठ पर आवश्यक सूचनायें दी जाती हैं। ग्रन्थ का नाम, उसका उपनाम या लघु आख्या (Short title), लेखक, सम्पादक, अनुवादक, व्याख्याकार और संस्करण लिखा रहता है। कभी-कभी भूमिका लेखक आदि का भी उल्लेख रहता है। आख्या पृष्ठ के निचले भाग में प्रकाशक और प्रकाशन वर्ष भी छपा हुआ मिलता है, किन्तु आधुनिक पुस्तकों में आख्या पृष्ठ के दूसरी ओर प्रकाशक,

कापीराइट संकेत, मूल्य, मुद्रक का नाम और प्रेस का पता भी दिया रहता है। इसलिए विवरण देने की दृष्टि से आख्या पृष्ठ का उल्लेख महत्त्वपूर्ण होता है।

(२) **विशेष या अनुभाग आख्या**—अनेक संपुटक ग्रन्थों (Multiple vol. works) में या किसी-किसी बड़ी कृति (Work) का एक खास अनुभाग (Section) अलग से प्रकाशित होता है। ऐसी स्थिति में वाङ्मयसूचीकार के लिए यह आवश्यक होता है कि वह इसका उल्लेख इस बड़ी कृति से जोड़ कर करे। ऐसा करने से उस ग्रन्थ के वर्गाङ्क डालने में तथा **विश्लेषणात्मक संलेख** (Analytical entry) बनाने में सहायता मिलती है।

(३) **पुष्पिका**—प्राचीन काल में ग्रन्थों के अन्त में मुद्रक, प्रकाशन वर्ष, लेखक और पुस्तक का नाम लिखने की परम्परा थी। उसको पुष्पिका कहा जाता था। यदि वाङ्मयसूची बनाने में ऐसा कोई ग्रन्थ मिलता है तो वह विवरण पुष्पिका से लेकर वाङ्मयसूची में दिया जाना चाहिए। अगर पुष्पिका और मुद्रणांकादि अलग-अलग दिये गए हों तो, जैसा कि १६वीं शताब्दी की पुस्तकों में मिलता है, तो दोनों का उल्लेख विवरण में किया जाना चाहिए।

(४) **पृष्ठादि विवरण, आकार-प्रकार सहित**—वाङ्मयात्मक विवरण में पृष्ठादि विवरण और आकार-प्रकार का दिया जाना अत्यावश्यक होता है। इसके अन्तर्गत ग्रन्थ जितने खण्डों में हो उसका उल्लेख किया जाता है। ग्रन्थ के पृष्ठों की संख्या दी जाती है। यदि ग्रन्थ सचित्र हो तो जितने प्रकार के चित्रण हों उनका और उनकी संख्याओं का उल्लेख किया जाता है। पुस्तक को सीधी खड़ी करके, उसकी ऊँचाई सेन्टीमीटर (से० मी० Cm) में नाप कर लिखी जाती है। अगर पुस्तक असाधारण प्रकार की हुई तो उसकी लम्बाई और चौड़ाई दोनों की नाप कर के दी जाती है।

(५) **टाइप सम्बन्धी टिप्पणी**—टाइप अनेक प्रकार के होते हैं। उनके सम्बन्ध में टिप्पणी देने से पुस्तक के मुद्रण-काल की पुष्टि करने में सहायता मिलती है। प्रति पृष्ठ में कितने कालम हैं, आख्या पृष्ठ (Title page) की माप कितनी है, इन सब का विवरण आदि मुद्रित ग्रन्थों (Incunabula) में आवश्यक होता है। यह विवरण विषय-सूची के अनुच्छेद के बाद दिया जाता है।

(६) **विषय-सूची**—ग्रन्थ में प्रतिपादित विषय की सूची का उल्लेख करने से ग्रन्थ की एक झलक सामने आ जाती है। इसके अन्तर्गत पुस्तक के अध्यायों और अनुभागों (Sections) की सूची पृष्ठ सहित दी जाती है। इस प्रकार का विवरण देने की अपेक्षा अगर पुस्तक के सारांश की एक टिप्पणी बना कर लिख दी जाय तो वह अधिक उपयोगी होती है।

(७) **शीर्ष आख्या**—पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ के सिरे पर जो टाइटिल बार-बार छपता है उसको शीर्ष आख्या (Head title) कहते हैं।

(८) **सूचक शब्द**—आधुनिक पुस्तकों में सूचक शब्द (Catch word) देने का प्रचलन नहीं है किन्तु पहले इसका प्रचलन था। सूचक शब्द वह शब्द है जो कि पुस्तक के पृष्ठ के निचले भाग की आखिरी लाइन के अन्त में दिया जाता है। इस शब्द को अगले पृष्ठ की पहली पंक्ति के आदि में मिला कर पढ़ने से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि पुस्तक के मैटर के क्रम में कोई गड़बड़ी है अथवा नहीं। यदि पुस्तक में कभी कोई फर्मा भूल से छूट गया हो जिसके कारण पुस्तक अपूर्ण हो तो इसकी पकड़ 'सूचक शब्द' से सरलता से हो जाती है।

(९) **टिप्पणी**—वाङ्मयात्मक विवरण के अन्तिम अनुच्छेद में ग्रन्थ के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी दी जाती है जिसके अन्तर्गत पुस्तक के पाठ सम्पादन से सम्बन्धित इतिहास, यदि अनामी (Anonymous) लेखक की कृति हो तो तत्सम्बन्धी टिप्पणी, वाङ्मयात्मक विवरण के आधार पर यदि कोई बात ग्रन्थ के सन्दर्भ में पकड़ में आ गई हो तो उसका निष्कर्ष तथा कागज आदि के सम्बन्ध में प्रासंगिक टिप्पणी, आदि दी जाती है।

□ □

अध्याय ७

# वाङ्मयसूची का निर्माण, सम्पादन एवं व्यवस्थापन

किसी भी वाङ्मयसूची का निर्माण करने से पूर्व कुछ प्रारम्भिक निर्णय वाङ्मयसूचीकार को करने पड़ते हैं। इसी को रॉबसन महोदय ने निर्माण की प्रारम्भिक समस्यायें बताया है जो निम्नलिखित हैं :—

(१) **विषय का चयन**—वाङ्मयसूची का संकलन करने में सर्वप्रथम यह निर्णय करना पड़ता है कि वाङ्मयसूची किस विषय पर निर्मित की जाय। इसका चयन करते समय अभीष्ट विषय का स्वरूप, प्रकार, समाज में उसकी माँग आदि पर विचार किया जाता है। विषय में यह भी देखा जाता है कि भविष्य में इसकी उपयोगिता क्या होगी, निर्वाचित विषय पर क्या-क्या सामग्री संकलित की जाय, किस अवधि से किस अवधि तक की सामग्री संकलित की जाय, ये सब बातें पाठकों की आवश्यकता एवं माँग पर निर्भर करती हैं।

विषयों को प्राकृतिक विज्ञानों एवं सामान्य विज्ञानों, आदि के रूप में विभाजित किया जाता है। प्राकृतिक विज्ञानों के सन्दर्भ में प्राथमिक तथा सामाजिक विज्ञानों के सम्बन्ध में परम्परागत पुस्तकों की वाङ्मयसूची निर्मित की जा सकती है। प्राकृतिक विज्ञान में सामयिक प्रकाशनों के साथ ही पेटेन्ट्स का अपना स्थान है क्योंकि ये सैद्धान्तिक ज्ञान के व्यावहारिक पहलू के द्योतक होते हैं। लेकिन इससे यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि प्राकृतिक विज्ञान में पुस्तकों एवं सामाजिक विज्ञान में सामयिक प्रकाशनों की जिल्दबन्दी कर दी जाती है। यहाँ अभीष्ट यह है कि प्राकृतिक विज्ञान में परिवर्तन इतने अधिक एवं शीघ्रता से होते हैं कि उन्हें पुस्तकों की अपेक्षा शीघ्र प्रस्तुत करना अनिवार्य रहता है अन्यथा उनके गुम हो जाने की सम्भावना अधिक रहती है।

(२) **विषय पूर्व निर्मित तो नहीं**—विषय चयन के उपरान्त यह देखा जाता है कि वाङ्मयसूची उस अभीष्ट विषय पर निर्मित तो नहीं हो चुकी है जिसका ज्ञान पाठक एवं अन्य लोगों को न हो। इसके निरीक्षण हेतु विभिन्न स्रोतों (उपकरणों) का आश्रय लेते हैं। इस प्रकार के निरीक्षण से कई लाभ होते हैं—

(अ) सम्पूर्ण किया हुआ कार्य पुनः नहीं करना पड़ता।

(ब) इससे समय, श्रम, धन तथा पुनरावृत्ति की बचत होती है।

(स) अगर अभीष्ट विषय पर वाङ्मयसूची पूर्व निर्मित है तो उसका मूल्यांकन कर के उससे श्रेष्ठतर वाङ्मयसूची निर्मित की जा सकती है।

(३) **विषय का क्षेत्र, सामग्री, आदि का निर्णय**—विषय का पूर्णरूपेण चयन हो जाने के उपरान्त उसका क्षेत्र, सामग्री, आदि का निर्धारण वाङ्मयसूचीकार को स्वयं करना पड़ता है। यह निर्णय विशेष रूप से विषय की प्रकृति तथा पाठकों की आवश्यकता पर निर्भर करता है। पूर्ण अथवा चयनीकृत कैसी वाङ्मयसूची निर्मित की जाय ? अगर विषय का क्षेत्र सीमित है तो चयनीकृत वाङ्मयसूची का प्रश्न नहीं उठता है। जहाँ क्षेत्र अति विस्तृत होता है वहाँ समस्यायें बहुत आती हैं। अतः संकलन कार्य उतना ही कष्टकर हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में चयनीकृत वाङ्मय-सूची निर्मित की जा सकती है। यहाँ चयन के लिए विषय का ज्ञान एवं विषय-विशेषज्ञ का सहयोग अपेक्षित होता है जिससे विषय का कोई महत्त्वपूर्ण पहलू उपेक्षित न हो जाय। इसका निर्णय इस दृष्टि से भी किया जा सकता है कि यदि उपयोगकर्त्ता साधारण श्रेणी के हैं तो चयनीकृत वाङ्मयसूची से कार्य चल सकता है। पर विशेषज्ञ एवं शोधरत उपयोगकर्त्ताओं को गम्भीर पहलू भी देखना पड़ता है। ये अपने विषय के विस्तार की अपेक्षा करते हैं। इन सब तत्त्वों की दृष्टि से वाङ्मयसूचीकार को स्वयं निर्णय करना पड़ता हैं।

(४) **समय निर्धारण**—प्रारम्भ में ही समय का निर्धारण भी करना पड़ता है। यह विशेष रूप से वाङ्मयसूची के प्रकार, विषय आदि की दृष्टि से निर्धारित किया जा सकता है। विस्तृत वाङ्मयसूची के निर्माण में अपेक्षाकृत चयनीकृत वाङ्मयसूची से समय स्वाभाविक रूप से अधिक लगेगा। समय विषय के अनुसार इस दृष्टि से निर्धारित हो सकता है कि उसका उद्भव कब हुआ, उसमें साहित्य की विस्तीर्णता कितनी है, जैसे, स्पेश ऑफ लाइट, पुस्तकालय विज्ञान, दर्शन एवं संस्कृत में स्वभावतः पृथक्-पृथक् समय लगेगा।

(५) **संलेख (Entry) के स्वरूप का निर्णय**—इसमें लेखक, आख्या आदि की सूचना संलेख के स्वरूप के अनुसार दी जाती है, जिसका व्यवस्थापन निम्न प्रकार से हो सकता है—

(अ) लघु आख्या (Short title)

(ब) मानक सूची प्रविष्टि (Standard catalogue entry)

(स) मानक वाङ्मयात्मक वर्णन (Standard bibliographical description)

(द) पूर्ण मानक वाङ्मयात्मक वर्णन (Full standard description)

इनका परिचय इस प्रकार है—

(अ) **लघु आख्या**—इसमें मात्र आख्या तथा लेखक का नाम दे दिया जाता है परन्तु यह वाङ्मयसूची पाठक के लिए अधिक लाभकारी नहीं होती है क्योंकि इससे ग्रन्थ तथा उसकी प्राप्ति के सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिलती है।

(ब) **मानक सूची प्रविष्टि**—यह ए० ए० सी० आर० (A. A. C. R.) के अनुसार दी जाती है। ब्रिटिश नेशनल बिब्लियोग्रेफी में इसे अपनाया जाता है।

इसके संलेख में आख्या, लेखक, सहकार, प्रकाशन स्थान, आदि एवं पत्रादि-विवरण दिया जाता है किन्तु इसमें प्रकाशक का पूरा पता तथा पुस्तक के सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं होती है।

**(स) मानक वाङ्मयात्मक वर्णन**—इसमें पूरे पैराग्राफ में पुस्तक का मुख पृष्ठ (Title page) लगभग पूरा का पूरा यथावत् दिया जाता है तथा दूसरे पैराग्राफ में पुस्तक के सम्बन्ध में परिचयात्मक टिप्पणी पर्याप्त विस्तार से दी जाती है। तीसरे पैराग्राफ में पुस्तक के आकार-प्रकार (Format) के सन्दर्भ में जानकारी दी जाती है। चौथे तथा अन्तिम पैराग्राफ में संस्करण सम्बन्धी तथा पूर्व शीर्षक (शीर्षक परिवर्तन) आदि की सूचना दी जाती है।

**(द) पूर्ण मानक वाङ्मयात्मक वर्णन**—इसमें पुस्तक की आख्या, उप-आख्या, मुखपृष्ठ का यथावत् विवरण विस्तृत टिप्पणी सहित लिखा जाता है, जिसमें प्रकाशक का नाम तथा पुस्तक का संक्षिप्त सार भी दिया जाता है। इसमें वाङ्मय-सूचीकार के पास जो प्रति प्राप्त है उसका भी विवरण दिया जाता है।

उपरोक्त प्रारम्भिक निर्णय के उपरान्त वाङ्मयसूची के निर्माण हेतु प्रारम्भिक सर्वेक्षण किया जाता है। इसे ही वाङ्मयसूची का सर्वेक्षण 'सर्वे ऑफ बिब्लयोग्रेफी' कहते हैं। यह निम्न प्रकार से पूरा किया जाता है :—

**(१) विषय का महत्व**—इसमें विषय का क्षेत्र, महत्त्व और पाठकों की अभिरुचि का ध्यान रखा जाता है। सामान्यतः विषय पर जितना अधिक साहित्य प्राप्त होता है, उतना ही वह विषय महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। परन्तु महत्व निर्धारण का यह एक मात्र आधार नहीं है क्योंकि जो विषय आधुनिक काल की उपज है उस पर साहित्य कम प्राप्त होना स्वाभाविक है परन्तु उसका महत्त्व भविष्य में बहुत अधिक हो सकता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अभीष्ट विषय में उपलब्ध साहित्य के साथ-साथ भविष्य में उसकी सम्भावना क्या है, इस पर विचार करते हैं।

**(२) विषय के प्रति अभिरुचि**—इस सन्दर्भ में यह देखा जाता है कि अमुक विषय का समाज में कितनी अभिरुचि के साथ अध्ययन किया जाता है। यह समाज की उस विषय के प्रति जिज्ञासा पर निर्भर करता है। साथ ही यह भी देखते हैं कि विषय का क्षेत्र कितना व्यापक है, इस सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का मुख्य रूप से अवलोकन किया जाता है—

(अ) अभीष्ट विषय पर कितनी वाङ्मयसूची निर्मित हो चुकी है।

(ब) कितने अन्य पुस्तकालयों में बन रही है।

(स) कितने पुस्तकालयों में निश्चय किया जा चुका है, पर प्रारम्भ नहीं हुआ है, किन्तु होने वाला है।

ये सब बातें विषय वाङ्मयसूची निर्माण को प्रभावित करते हैं।

**(३) उपकरण (Tool) की स्थिति**—उपकरण की स्थिति क्या है, इसमें सर्वेक्षण करके यह देखा जाता है कि अभीष्ट विषय पर वाङ्मयसूची बनाने में

कौन-कौन से उपकरण हैं। वे प्राप्त हो सकते हैं अथवा नहीं। पुस्तकालय में उपलब्ध सामग्री मात्र से वाङ्मयसूची नहीं निर्मित की जा सकती है। इसके लिए अन्य उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है।

रॉबसन ने निम्नलिखित उपकरणों का उल्लेख किया है—

(अ) बड़े पुस्तकालय की सूची (Catalogue of large library)

(आ) विशिष्ट पुस्तकालयों की सूची (Catalogue of special libraries)—यह उस विषय पर होगा जिस पर वाङ्मयसूची बनायी जा रही है।

(इ) विषय-क्षेत्र को समाहित करने वाले सामयिक (Periodicals covering the field)—इसके अन्तर्गत निम्न प्रमुख हैं :—

(1) World list of scientific periodicals published in the years 1900-1950. London, 1952.
(2) Union list of serials—U. S. A.
(3) British Union Catalogue of periodicals, 1955-58 (4 vols.), From 1964, Quarterly periodical, Steword, J. D.
(4) British Union Catalogue of periodicals, 1955.
(5) London Union list of periodicals.
(6) Periodicals in South African Libraries.
(7) Indian periodicals literature.

इसमें से प्रायः सभी में यह जानकारी भी प्राप्त होती है कि कोई विशिष्ट अध्ययन सामग्री किस पुस्तकालय में प्राप्त हो सकती है।

(ई) राष्ट्रीय वाङ्मयसूची (National Bibliography)—राष्ट्रीय वाङ्मयसूची तथा इसी प्रकार की अन्य वाङ्मयसूचियाँ जैसे 'क्युमुलेटिव बुक्स इन्डेक्स' आदि सामग्री के चयन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(उ) अन्य विशिष्ट वाङ्मयसूचियाँ (Other Special Bibliography)—वर्तमान प्राप्त वाङ्मयसूचियाँ भी कार्य को अग्रसारित करने में योगदान देती हैं। विषय पर वाङ्मयसूची प्राप्त है तो यह नहीं समझना चाहिये कि इस विषय पर आगे वाङ्मयसूची न बनायी जाय वरन् संशोधन एवं अद्यतन हेतु उस पर निरन्तर कार्य होते रहना ही आवश्यक है।

(ऊ) प्रकाशित पुस्तकालय सूची (Published Library Catalogue)—इसमें सामान्य एवं विशिष्ट सभी प्रकार की प्रकाशित सूची का अवलोकन करना चाहिये।

(ए) ग्रन्थों की वाङ्मयसूची (Bibliography of books)—इसमें भी चर्चित विषय की महत्त्वपूर्ण सामग्री का विवरणात्मक परिचय दिया रहता है। ये विशिष्ट सामग्री के लिए महत्त्वपूर्ण सूचना देती हैं।

**(ऐ) व्यावसायिक सूची** (Trade Catalogue)—कभी-कभी इससे भी महत्त्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है पर इसको आधार कभी नहीं बनाना चाहिये क्योंकि ये बहुत विश्वसनीय नहीं होती हैं।

**(ओ) समीक्षाएँ** (Reviews)—अनेक उच्चकोटि के आलोचकों द्वारा पत्रिकाओं में की गई पुस्तक समीक्षायें भी एक महत्त्वपूर्ण बिन्दु सिद्ध होती हैं क्योंकि इनमें विशिष्ट विषय पर प्रकाशित हो रही अध्ययन-सामग्री का आलोचनात्मक विवरण रहता है। अतः नवीनतम सूचना की जानकारी प्राप्त होती रहती है जिसे आवश्यकतानुसार वाङ्मयसूची में स्थान दिया जा सकता है।

**(औ) सामान्य प्रकाशन की कोई सूची** (Any list of general publication)—इसमें दो बातें मुख्य रूप से ध्यान देने योग्य हैं। प्रथम यह है कि अभीष्ट विषय कहाँ-कहाँ पढ़ाया जाता है ताकि उनके साहित्य को भी समाहित किया जा सके। इसके अतिरिक्त यह भी देखा जाता है कि जिस पुस्तकालय की सामग्री को वाङ्मयसूची में सन्दर्भित किया जा रहा है वे पुस्तकालय पाठकों को अध्ययन की क्या सुविधायें प्रदान करते हैं, क्योंकि ऐसे पुस्तकालय की सामग्री का उल्लेख जहाँ प्रवेश-निषेध हो अनुपयोगी होगा।

(४) क्षेत्र (Scope)—विषय के सर्वेक्षण के दौरान यह देखा जाता है कि अभीष्ट विषय की सीमायें (Coverage) कितनी है। इसके देखने से निम्नलिखित लाभ होते हैं:—

(अ) प्रत्यक्ष रूप से विषय का निर्धारण हो जाता है।

(ब) उस विषय पर कितना साहित्य है, यह भी ज्ञात हो जाता है।

इस सन्दर्भ में केन्द्रीय सूची (Union Catalogue) विशेष सहायक होती हैं।

इस प्रकार वर्णित शीर्षकों के आधार पर सर्वेक्षण के उपरान्त वाङ्मयसूचीकार अपनी रिपोर्ट अपने अधिकारी अथवा समिति आदि को देता है जिसे वाङ्मयसूचीकार का प्रतिवेदन (Bibliographical Report) कहते हैं।

**वाङ्मयसूचीकार का प्रतिवेदन**—इसमें वाङ्मयसूचीकार चयन किये गये विषय पर प्रविष्टियों के स्वरूप, उसके व्यवस्थापन, अनुक्रमणिका, भौतिक स्वरूप, भाग, मूल्य, प्रिन्ट या साइक्लोस्टाइल आदि पर अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर अधिकारीगण प्रतिवेदन पर गम्भीरता से विचार करते हैं, तदुपरान्त वे धन, समय, सामग्री, कर्मचारियों की संख्या आदि पर तात्कालिक निर्णय लेते हैं। यह निर्णय अस्थायी या स्थायी तौर पर हो सकता है। यहीं पर स्पष्ट रूप से निर्धारण हो जाता है कि वाङ्मयसूची का क्षेत्र क्या हो, अर्थात् कितना एवं किस प्रकार के साहित्य का वाङ्मयसूची में समावेश किया जाय। संलेखों के व्यवस्थापन का क्रम क्या हो, वाङ्मयसूची में टिप्पणी (Annotation) कहाँ एवं किस रूप में अंकित की जाय, अनुक्रमणिका का स्वरूप एवं व्यवस्थापन कैसा हो, वाङ्मयसूची का आकार-प्रकार (Format) कैसा हो, आदि।

वाङ्मयसूची के निर्माण के इस स्तर तक आने के उपरान्त विषय की खोज प्रारम्भ होती है। यह ध्यातव्य है कि यहीं पर एक महत्त्वपूर्ण निर्णय यह करना पड़ता है कि वाङ्मयसूची के निर्माण का दायित्व किसे सौंपा जाय। इस सन्दर्भ में कई मत हैं—देखिये पृष्ठ ८१।

यहाँ पर वाङ्मयसूचीकार से यह अपेक्षा की जाती है कि वह वाङ्मयसूची के कार्य को पूर्णरूप से सम्पन्न करने हेतु उसे कई चरणों में पूरा करेगा।

**प्रथम चरण**—वास्तव में यहीं से वाङ्मयसूचीकार का कार्य प्रारम्भ होता है। यहाँ वाङ्मयसूचीकार से अभीष्ट विषय की सम्पूर्ण ज्ञान की अपेक्षा की जाती है। कम से कम विषय की स्थूल एवं उसके अंगों की जानकारी आवश्यक है। इसके मुख्यतया दो लाभ होते हैं—

(१) विषय को उचित प्रतिनिधित्व मिलता है।

(२) पारिभाषिक शब्दावली (Terminology) का ज्ञान वाङ्मयसूचीकार को हो जाता है।

वाङ्मयसूचीकार को अभीष्ट विषय पर किये गये तथा किये जाने वाले अनुसन्धान कार्य, उसके स्तर तथा प्रकार की भी जानकारी होना आवश्यक है ताकि अनुसन्धानकर्त्ताओं को भी सन्तुष्ट किया जा सके।

वाङ्मयसूचीकार को अभीष्ट विषय के नवीनतम तथा मौलिक श्रेण्य ग्रन्थों (Classics) की भी जानकारी होना चाहिये जिससे विषय के सन्दर्भ में मौलिक जानकारी वाङ्मयसूची से हो सके तथा वह आवश्यकतानुसार बन सके।

**द्वितीय चरण**—इसके उपरान्त द्वितीय चरण का आरम्भ होता है जिसमें वास्तविक अध्ययन-सामग्री की खोज का कार्य प्रारम्भ किया जाता है। अध्ययन-सामग्री को प्राप्त करने के लिए स्रोतों को दो भागों में बाँटा जाता है :—

(१) प्रकाशित

(२) अप्रकाशित

(१) **प्रकाशित**—प्रकाशित स्रोतों में राष्ट्रीय, विषय, लेखक आदि की वाङ्मयसूचियों को जो उस विषय पर वाङ्मयसूची बनाने में सहायक होती है, देखा जाता है। विषय पर प्रकाशित अनुक्रमणिका सारांशीकृत सेवा, निर्देशिका, हैण्डबुक, मैनुअल, मुद्रित पुस्तकालय सूची (जैसे लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस कैटलॉग, १६० खण्डों में) आदि का अवलोकन किया जाता है।

इस प्रकार वाङ्मयसूची के निर्माण में आवश्यक पुस्तक की जानकारी, सामयिकी की जानकारी, सन्दर्भ स्रोतों आदि की जानकारी विभिन्न प्रकाशित उपकरणों से की जाती है, जैसे—

**विशिष्ट पुस्तकें**—राष्ट्रीय, विषय, लेखक, आदि वाङ्मयसूचियों से।

**सामयिकी**—अनुक्रमणिका, सारांशीकृत सेवा एवं विभिन्न क्षेत्रों में प्रकाशित होने वाली सामयिकी तथा सूची से।

संदर्भ स्रोत—निर्देशिका, विश्वकोश, हैण्डबुक, मैनुअल, आदि सहायक होते हैं।

(२) अप्रकाशित—इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से निम्नलिखित रूपों की अध्ययन-सामग्री को समाविष्ट करते हैं—

**(१) पुस्तकालयों की सूचियाँ**—जो प्रायः अप्रकाशित रहती हैं। इसे निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) सामान्य पुस्तकालयों की सूचियाँ।

(ब) विश्वविद्यालय पुस्तकालयों की सूचियाँ।

(स) विशेष (उस विषय से सम्बन्धित) पुस्तकालयों की सूचियाँ।

(द) संघीय सूची (यूनियन कैटलॉग) आदि।

**(२) व्यक्तिगत अभिलेख**—यदि किसी के व्यक्तिगत संग्रह में कोई महत्त्वपूर्ण सूचना होती है तो उसे भी वाङ्मयसूची में प्रविष्ट कर दिया जाता है जिससे पाठक उसका उपयोग कर सकें। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से पत्र-व्यवहार, पाण्डुलिपियाँ, डायरीज, आदि आते हैं।

**(३) संस्थागत अभिलेख**—अभीष्ट विषय में विशिष्ट संस्थाओं के रिकार्ड, बैठकों की कार्यवाही आदि का भी वाङ्मयसूचियों में उपयोग किया जा सकता है जैसे डी. आर. टी. सी., एस. एस. डी., आइ. एम. एस. आर., इन्सडॉक आदि ये भी वाङ्मयसूची की विशिष्ट सामग्री बन सकते हैं।

**वाङ्मयसूची की तैयारी (Preparation of Bibliography)**

इस प्रकार से संकलित अथवा अवलोकित अध्ययन-सामग्री को व्यवस्थापन एवं अन्य सुविधाओं की दृष्टि से 'एक कार्ड एक प्रविष्टि' के सिद्धान्तानुरूप ५″ × ३″ के मानक पत्रक (Standard card) पर अंकित किया जाता है। इसमें सामग्री की आख्या तथा अन्य आवश्यक स्थूल सूचनाएँ अंकित की जाती हैं। इस प्रकार सब संलेख बन जाने पर वाङ्मयसूची अपने मोटे रूप में तैयार-सी हो जाती है। इस स्तर के उपरान्त संकलित सामग्री का मूल्यांकन कर लिया जाता है और यहीं पर निश्चित किया जाता है कि किस सूचना को छोड़ा जाय और किसे समाविष्ट किया जाय। यहाँ विशेष रूप से भी ध्यातव्य है कि पत्रक पर संलेख का अंकन करते समय सभी प्रविष्टियों को सम्मिलित किया जाता है चाहे क्यों न पुनरावृत्ति (डुप्लीकेशन) हो जाय। इससे विशेष लाभ यह होता है कि कोई भी महत्त्वपूर्ण संलेख नहीं छूटता साथ ही बाद में संलेख जोड़ने पर होने वाली परेशानी से बचा जा सकता है।

सामान्यतया मूल्यांकन लेखक के आधार पर किया जाता है क्योंकि लेखकों की आख्या अपेक्षाकृत कम होती है। प्रत्येक संलेख के लेखक के विषय-क्षेत्र पर अधिकार, सम्बन्धित कार्य की समीक्षा (Review) जिस उद्देश्य से वाङ्मयसूची

निर्मित की जा रही है, उस संदर्भ में उसकी उपयोगिता आदि के आधार पर अनावश्यक संलेखों को निकाला जा सकता है। इस कार्य हेतु दो बातों की विशेष रूप से अपेक्षा की जाती है—

(१) विषय का परिपक्व ज्ञान।

(२) विषय विशेषज्ञ का सहयोग।

चयन कर के जो पत्रक निरस्त किये जाते हैं उन्हें उचित क्रम (वर्णक्रम) से ट्रे में कैटलॉग कार्ड की भांति व्यवस्थित कर देना चाहिए जिससे भविष्य में कभी भी आवश्यकता पड़ने पर उन्हें देखा तथा उपयोग किया जा सके।

यह स्तर वाङ्‌मयसूची निर्माण के लिए अंतिम रूप में होता है। अब व्यवस्थापन की जो प्रणाली (System) अपनायी जाती है उसके आधार पर केवल व्यवस्थापन करना शेष रह जाता है।

**व्यवस्थापन (Arrangement)**—व्यवस्थापन वाङ्‌मयसूची निर्माण प्रक्रिया का एक अत्यन्त अनिवार्य अंग है। व्यवस्थापन में किसी प्रकार की त्रुटियाँ, असावधानी वाङ्‌मयसूची को महत्त्वहीन एवं अनुपयोगी बना देती है। इसके विपरीत योजनाबद्ध, तर्कसंगत तथा सुनियोजित व्यवस्थापन वाङ्‌मयसूची की उपयोगिता में चार चांद लगाता है। अतः वाङ्‌मयसूची के विषय, विस्तार, संकलित सामग्री, उद्देश्य, आदि के आधार पर ही व्यवस्थापन की प्रणाली निश्चित की जाती है।

अध्ययन-सामग्री के व्यवस्थापन की विभिन्न पद्धतियाँ हैं परन्तु कोई भी पद्धति हर प्रकार की वाङ्‌मयसूची के लिए पूर्णरूपेण उपयुक्त नहीं होती है। अतः उनको उपयोगी बनाने के लिए अनुक्रमणिका आदि की भी व्यवस्था की जाती है। व्यवस्थापन की निम्नलिखित विधियाँ प्रचलित हैं—

(१) अनुवर्ग (Classified)

(२) आनुवर्णिक विषय (Alphabetical Subject)

(३) आनुवर्णिक अनुवर्ग (Alphabetical Classified)

(४) आनुवर्णिक लेखक (Alphabetical Author)

(५) आनुवर्णिक आख्या (Alphabetical Title)

(६) कालक्रमिक (Chronological)

(७) शब्दकोशात्मक (Dictionary)

(८) मुद्रण स्थान अथवा प्रकाशन स्थान (Place of Printing or Publication)

यहाँ इसका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

**(१) अनुवर्ग व्यवस्थापन**—इस पद्धति के प्रत्येक संलेख को किसी मान्य प्रचलित वर्गीकरण पद्धति के आधार पर अनुवर्ग क्रम के अनुसार वर्गीकृत एवं व्यवस्थित किया जाता है। किन्तु इस प्रकार का व्यवस्थापन मानविकी (Humanities) तथा ऐसे विषयों में—जिसमें लेखक के समस्त कार्य एक स्थान पर चाहे जाते हैं—यह

उचित नहीं होता। इस दशा में अभिगम को लेखक और आख्या के अनुसार व्यवस्थापन करके उपयोगकर्त्ताओं को संतुष्ट किया जा सकता है।

पोलार्ड महोदय के अनुसार वर्गीकरण की किसी मान्य पद्धति में सभी संभावित विषय का सही प्रतिनिधित्व नहीं होता, जैसे दशमलव पद्धति (डी० सी०) में सभी विषय ० से ८ तक में विभक्त हैं और ६ वर्ग विविध अन्य (Other) का है। इस वर्ग को वाङ्मयसूची का विषय लेने पर प्रतिनिधित्व असन्तोषजनक होता है। इसीलिए वाङ्मयसूची में पोलार्ड महोदय उपयोगिता की दृष्टि से आनुवर्णिक (Alphabetical) व्यवस्थापन के पक्ष में हैं।

वर्गीकरण पद्धति को अपनाने पर किसी वर्गीकरण पद्धति के अनुसार वाङ्मयसूची के विषय को अंकन दिया जाता है तथा उस विषय के उप विभाग उसी वर्गीकरण पद्धति के अनुसार व्यवस्थित किये जाते हैं। जैसा कि संकेत किया जा चुका है जिस वर्गीकरण पद्धति को आधार बनाया जायेगा उसकी लाभ-हानि स्वतः वाङ्मयसूची में आ जाती है।

इस प्रकार की वाङ्मयसूची बौद्धिक वर्ग के पाठकों के लिए श्रेष्ठ रहती है क्योंकि यह विषय अभिगम (Subject Approach) को संतुष्ट करने में समर्थ होती है। दूसरी ओर आनुवर्णिक क्रम में व्यवस्थित वाङ्मयसूची सामान्य पाठकों हेतु सरल एवं श्रेष्ठ मानी जाती है।

इसका प्रारम्भिक स्तर पर उपयोग दशमलव वर्गीकरण पद्धति (डी० सी०) के आधार पर ब्रिटिश नेशनल बिब्लियोग्रैफी (B. N. B.) में किया गया था पर उपर्युक्त वर्णित समस्याओं के कारण ही इसमें संशोधन करना पड़ा।

**(२) आनुवर्णिक विषय**—इसमें विषय को आनुवर्णिक क्रम (Alphabetical order) में व्यवस्थित किया जाता है। इसमें विषय को आख्या के एक मात्र क्रम से व्यवस्थित करना चाहिए। इससे पूरे वाङ्मयसूची में समरूपता बनी रहती है। इसमें लेखक का नाम आनुवर्णिक क्रम से व्यवस्थित करना आवश्यक होता है।

संलेख पद (Entry Element) में भी व्यवस्थापन तो आनुवर्णिक क्रम से ही होता है किन्तु पूरे विषय को व्यवस्थित न कर विषय या आख्या में से संलेख पद वाङ्मयसूचीकार द्वारा चयन किया जाता है तथा उसी से व्यवस्थापन किया जाता है। इसके अनुसार A history of the medieval church की प्रविष्टि Church-Medieval history of होगी। प्रायः इसका प्रयोग सामान्य वाङ्मयसूची में न होकर केवल अनुक्रमणिका (Index) में करते हैं।

**(३) आनुवर्णिक अनुवर्ग क्रम**—यह पद्धति अनुवर्ग पद्धति से भिन्न है। इस पद्धति में प्रविष्टि किसी वर्गीकरण पद्धति के अनुसार व्यवस्थित नहीं की जाती परन्तु इस विधि में विषयों को स्थूल भागों में वाङ्मयसूचीकार अपनी सुविधा के अनुसार बांट लेते हैं। फिर उनका वाङ्मयसूची में व्यवस्थापन कर दिया जाता है।

यदि वाङ्मयसूचीकार उचित समझता है तो विषयों के इन स्थूल भागों को पुनः पृथक्-पृथक् उपविभागों में विभाजित कर देता है तथा इन्हें वर्णक्रम से व्यवस्थित कर दिया जाता है।

(४) आनुर्वणिक लेखक—इस विधि से व्यवस्थापन कुछ विशेष स्थितियों में ही उपयोगी होते हैं। इस विधि में विषयों तथा आख्याओं को आनुर्वणिक क्रम से व्यवस्थित कर दिया जाता है। आनुर्वणिक क्रम से व्यवस्थापन दो प्रकार से किया जा सकता है :—

(अ) शब्द प्रतिशब्द (Word by word)

(ब) अक्षर प्रत्यक्षर (Letter by letter)

शब्द प्रतिशब्द में शब्द को और अक्षर प्रत्यक्षर में अक्षर को इकाई मान कर उनके अनुसार आनुर्वणिक क्रम व्यवस्थापन किया जाता है। शब्द प्रतिशब्द में पूरे शब्द को लिया जाता है। इसके अन्तर्गत लेखक, विषय, आख्या आदि को आनुर्वणिक क्रम से सुव्यवस्थित करते हैं।

(५) आनुर्वणिक आख्या—इसका व्यवस्थापन प्रायः आनुर्वणिक लेखक (Alphabetical Author) के अनुसार ही किया जाता है।

(६) कालक्रमिक—ऐसा माना जाता है कि कालक्रमानुसार (According to chronological order) वाङ्मयसूची का व्यवस्थापन किसी एक लेखक की वाङ्मयसूची या आन्दोलनों के इतिहास या किसी अनुसंधान की प्रगति आदि वाङ्मयसूची के लिए उपयुक्त होता है।

इस व्यवस्थापन का अर्थ वाङ्मयसूची के संदर्भ में प्रकाशन वर्ष के अनुसार (According to date of publication) व्यवस्थापन से लिया जाता है। प्रायः यह व्यवस्थापन मानविकी आदि ऐसे विषयों में—जिनमें विषय का कालक्रमिक विकास, लेखक की रचनात्मकता का विकास आदि ज्ञात करना हो तो—अधिक उपयोगी होता है किन्तु इसमें भी प्रारम्भ में मुख्य वर्गों (Main Classes) के अनुसार विभाजन किया जाना आवश्यक है जिससे इन्हें मुख्य वर्गों के अनुसार व्यवस्थित किया जा सके।

इस प्रकार के व्यवस्थापन में ग्रंथ की आख्या, लेखक, प्रकाशन स्थान आदि किसी को कोई महत्व नहीं दिया जाता है।

(७) शब्दकोशात्मक—इसमें एवं आनुर्वणिक में मुख्य अन्तर यह है कि आनुर्वणिक क्रम में आख्या, लेखक, सहलेखक, माला (Series) आदि को पृथक्-पृथक् आनुर्वणिक क्रम में रखा जाता है किन्तु शब्दकोशात्मक व्यवस्थापन (Dictionary Arrangement) में इन सब को एक साथ संकलित कर शब्दकोश की भाँति सुव्यवस्थित करते हैं। पुस्तकालय सूचियों (Library catalogues) में यह सामान्यतया प्रयुक्त होता है पर वाङ्मयसूची के क्षेत्र में क्युमुलेटिव बुक इण्डैक्स

(Cumulative book index) में ऐसा ही उदाहरण मिलता है। बहुत से लोग इसे बिल्कुल अनुपयोगी मानते हैं।

(८) **मुद्रण स्थान या प्रकाशन स्थान**—इस पद्धति से व्यवस्थापन आदि-मुद्रित ग्रंथ (Incunabula) आदि में किया जाता है। सुविख्यात प्राक्टर आर्डर (Proctor order) इसी पर आधारित है। इसे आनुवर्णिक अनुवर्ग (Alphabetical classified) का संशोधित रूप माना जा सकता है। इसका प्रयोग ऐसी वाङ्मयसूची में अधिक होता है जब प्रकाशन स्थान ही विशेष महत्त्वपूर्ण होता है। विशेषकर समाचार-पत्रों एवं सामयिक प्रकाशनों की वाङ्मयसूचियों में इसका अधिक उपयोग होता है। इसके अन्तर्गत स्थानादि मण्डल, राष्ट्र आदि को एक शीर्षक मान कर उसमें प्रकाशित सभी अध्ययन-सामग्री को व्यवस्थित करते हैं।

प्रत्येक क्षेत्र में अध्ययन-सामग्री का व्यवस्थापन आनुवर्णिक क्रम, अनुवर्ग क्रम या उपरोक्त वर्णित में से किसी भी आधार पर किया जा सकता है। इससे किसी विशिष्ट विषय पर क्षेत्र की देन तथा विशिष्ट क्षेत्र की पूरी देन का आकलन किया जा सकता है। इनमें से जो भी व्यवस्थापन पद्धति अपनायी जाती है उसके अनुसार निर्मित पत्रकों (cards) को दराज (Tray) में सुव्यवस्थित करते हैं। इनका आवश्यकतानुसार विभाजन (Division) भी कर लेते है। इस प्रकार विशिष्ट प्रकार की वाङ्मयसूची हेतु विशिष्ट व्यवस्थापन किया जाता है। निःसन्देह सभी पद्धतियों में से कोई भी प्रत्येक प्रकार की वाङ्मयसूची के लिए उत्तम हल नहीं है क्योंकि प्रत्येक में गुण-दोष समाविष्ट हैं।

विशिष्ट विषय (Specific subject) की वाङ्मयसूची के व्यवस्थापन में कोई भी पद्धति पूर्णरूपेण सुविधाजनक एवं उपयोगी नहीं होती क्योंकि विशिष्ट विषय जिस उद्देश्य से वाङ्मयसूची में व्यवस्थित किये जाते हैं वे पूरे नहीं होते क्योंकि वे अध्ययन-सामग्रियाँ वाङ्मयसूची में बिखर जाती हैं।

इसीलिए यह सुझाव दिया जाता है कि वाङ्मयसूचीकार को सम्बन्धित वाङ्मयसूची के उद्देश्य और उपयोगिता को ध्यान में रख कर व्यवस्थापन पद्धति का चयन करना चाहिए। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि कोई भी व्यवस्था क्यों न अपनाई जाय आनुवर्णिक क्रम या शब्दकोशात्मक के अनुसार अनुक्रमणिका (Index) देना उपयोगी होता है।

□ □

अध्याय ८

# वाङ्मयसूची का मूल्यांकन

किसी भी वाङ्मयसूची का मूल्यांकन प्रायः निम्नलिखित दृष्टियों को ध्यान में रख कर किया जाता है—

(१) उद्देश्य (Object)
(२) प्राधिकारी एवं संकलन (Authority & Collection)
(३) समयावधि (Frequency)
(४) समाविष्ट क्षेत्र (Coverage)
(५) व्यवस्थापन (Arrangement)
(६) मूल्यांकन (Valuation)

यहाँ उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर ही वाङ्मयसूची का मूल्यांकन किया जा रहा है—

**इण्डियन नेशनल बिब्लियोग्रैफी (I. N. B.)**

(१) उद्देश्य—इसके अन्तर्गत अपवाद को छोड़ कर नवीन प्रकाशनों को सूचीबद्ध करते हैं जिसका प्रमुख उद्देश्य देश में विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित साहित्य का साहित्यिक नियन्त्रण करना तथा अध्ययन-सामग्री को भविष्य में उपयोगार्थ संग्रहीत एवं सुरक्षित रखना है।

(२) प्राधिकारी एवं संकलन—इसमें डिलीवरी ऑफ बुक्स एण्ड न्यूज पेपर्स एक्ट १९५४-५६ (संशोधन सहित) के अन्तर्गत प्राप्त पुस्तकों, पत्रिकाओं आदि का रिकार्ड रखा जाता है। भारत सरकार द्वारा नियुक्त इण्डियन नेशनल बिब्लियोग्रैफी कमेटी की सिफारिशों के आधार पर इसका सम्पादन कार्य प्रारम्भ हुआ। कमेटी ने इस बिब्लियोग्रैफी का क्षेत्र, लिपि, सूचीकरण, वर्गीकरण आदि के विषय में महत्वपूर्ण सुझाव दिये जिनके आधार पर इनका सम्पादन कार्य प्रारम्भ हुआ था। इसमें भारत के संविधान में मान्य सभी भाषाओं के साहित्य का संकलन किया जाता है।

कमेटी के सभापति एवं बिब्लियोग्रैफी के प्रधान सम्पादक के रूप में श्री वी० एस० केशवन ने कार्य प्रारम्भ किया। १९७० ई० के पूर्व यह सेन्ट्रल रिफ्रेंस लाइब्रेरी, कलकत्ता से प्रकाशित होती थी। जो नेशनल लाइब्रेरी का पुस्तकालयाध्यक्ष होता था, वही स्वयमेव इसका इन्चार्ज भी होता था, पर १९७० ई० के बाद से इसे पृथक् कर दिया गया।

इसके अन्तर्गत नेशनल लाइब्रेरी के अध्यक्ष या उसकी ओर से नियुक्त कोई कर्मचारी धारा ३ के अधीन प्रकाशकों द्वारा भेजी हुई अध्ययन-सामग्री की प्राप्ति की लिखित रसीद देगा, ऐसी व्यवस्था है।

(३) **समयावधि**—सर्वप्रथम भारतीय राष्ट्रीय वाङ्मयसूची का प्रकाशन १९५७ ई० में हुआ जो प्रायोगिक रूप में था। कालान्तर में १९५८ ई० से नियमित रूप से कार्य प्रारम्भ किया गया। इसकी समयावधि को निम्न रूपों में प्रदर्शित किया जा सकता है—

(अ) १९५७ ई० प्रायोगिक रूप में

(ब) १९५८ ई० से १९६३ ई० तक त्रैमासिक

(स) १९६३ ई० से १९६४ ई० तक मासिक

(द) १९६४ ई० से प्रकाशन अनियमित

(य) १९६७ ई० से प्रकाशन बन्द

(र) १९७१ ई० से पुनः मासिक प्रकाशन प्रारम्भ, पर कभी भी समय पर उपलब्ध नहीं होती है।

(४) **समाविष्ट क्षेत्र**—निम्नलिखित श्रेणी की सामग्री को छोड़ कर यह वाङ्मयसूची सामान्यतया पूर्ण होती है—

(अ) सस्ते उपन्यास

(ब) संगीत के रिकार्ड

(स) मानचित्र

(द) सामयिकी एवं समाचार पत्र (प्रथमांक को छोड़कर)

(य) पाठ्य-पुस्तकों की कुन्जी एवं गाइड

(र) पुस्तक विक्रेताओं के सूचीपत्र

(ल) टेलीफोन-निर्देशिका

(व) कम्पनियों के वित्तीय विवरण तथा रिपोर्ट

(ह) प्रचार के पैम्फलेट्स, आदि।

(५) **व्यवस्थापन**—प्रारम्भ में इसके दो भाग थे। सामान्य प्रकाशन एवं सरकारी प्रकाशन (ऑफिसियल, प्रादेशीय, केन्द्रीय एवं अर्द्धशासकीय प्रकाशनादि)। १९७२ ई० तक इसका यही स्वरूप था। जनवरी १९७३ ई० से ये दोनों भाग एक में मिला दिये गये। ऐसा सन्दर्भ में सुविधा की दृष्टि से किया गया जिससे पाठक सभी सन्दर्भों को एक स्थान पर पा सकें, और इसके लिए दोनों भाग को देखने में उसे समय न नष्ट करना पड़े।

इसका व्यवस्थापन वर्गानुसार और वर्णानुसार अनुच्छेदों में विभाजित है। वर्गानुसार अनुच्छेद (पैराग्राफ) में संलेखों की व्यवस्था विषय-क्रम से वर्गीकृत होती है। उप-व्यवस्थापन प्रत्येक विशिष्ट विषय के अन्तर्गत लेखकों के नामों के वर्णक्रम से किया जाता है।

सामग्री का वर्गीकरण दशमलव वर्गीकरण द्वारा मुख्याधार मान कर किया जाता है। कोलन वर्गीकरण को गौण स्थान दिया गया है। प्रविष्टि (Entry) के नीचे दाहिनी ओर पर कोलन पद्धति के वर्गाङ्क दिये जाते हैं जब कि ऊपर बायीं ओर

दशमलव पद्धति के वर्गाङ्क दिये जाते हैं। जहाँ सूक्ष्मतम अंक नहीं दिया जा सकता, वहाँ अपने विवेक से वर्गाङ्क बना दिये गये हैं। दशमलव अंकों का शाब्दिक विस्तार ऋजु कोष्ठक में [ ] के द्वारा दिखाया गया है। उदाहरणार्थ ३३५. [ । ] सर्वोदय। यह विस्तार उन्हीं स्थानों पर प्रयोग में लाया गया है जहाँ दशमलव अंक विशिष्ट विषय के लिए अविस्तृत अथवा असमर्थ पाये गये हैं।

अध्ययन-सामग्री के सूचीकरण के लिए अथवा वाङ्मयात्मक सूचना देने के लिए प्रामाणिक सूचीकरण पद्धति अपनायी गयी है। इसमें सामग्री के सम्बन्ध में निम्न सूचनाएँ दी जाती हैं—

वर्गाङ्क, लेखक का नाम, पूर्ण आख्या, प्रकाशन का स्थान, प्रकाशक, प्रकाशन वर्ष, पृष्ठ संख्या, परिमाण, जिल्दबन्दी के प्रकार, मूल्य, माला तथा आवश्यक स्थानों पर विशिष्ट विवरण आदि। जहाँ कोई विवरण अप्राप्त है, उसके स्थान पर रिक्त ऋजु कोष्ठक यह सूचित करता है कि वह विवरण अप्राप्य है। इस प्रकार जहाँ जिल्दबंदी के विषय में सूचना नहीं अंकित है तो उसका तात्पर्य यह है कि पुस्तक साधारण पत्र जिल्द में है।

**उदाहरण**

अग्रवाल, वासुदेव शरण

बुद्धचरित, संपा० विष्णु प्रभाकर। ४था सं०। नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल, १९५९। ३० पृ०, १८ से० मी० ०·३९। (संस्कृत साहित्य सौरभ, २०)।

अश्वघोष के बुद्धचरित पर आधारित। बच्चों के लिए।

इसके साथ भाषा का प्रतीक भी दिया जाता है, जैसे अंग्रेजी भाषा हेतु E।

भारतीय भाषाओं के लेखकों के नामों और पुस्तकों के नामों का लिप्यन्तरण रोमन डाइक्रोटिकल मार्क्स (Diacritical marks) के साथ किया गया है।

विशेष शीर्षक, सम्पादक, संकलनकर्त्ता, अनुवादक, माला, आदि से अनुक्रमणिका दी जाती है। लेखक एवं विषय ज्ञान होने पर यह अनुक्रमणिका अभीष्ट संदर्भ प्राप्त करने में सहायता करती है।

(६) **मूल्यांकन**—इण्डियन नेशनल बिब्लियोग्रैफी के सम्पादन में मुख्य समस्या भाषाओं एवं लिपियों की विविधता है। अगर एक सामान्य लिपि हो तो भाषाओं की विविधता विशेष समस्या नहीं उत्पन्न करती है किन्तु यहाँ पन्द्रह प्रमुख भाषाओं की लिपियों का प्रश्न है। इसका समाधान सम्पादकों ने रोमन लिपि को स्वीकार करके किया है। इससे लाभ यह हुआ है कि इसकी राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय आवश्यकता एवं उपयोगिता में वृद्धि हुई है।

अनुसंधानकर्त्ता अपने अभीष्ट विषय को पाने में, पुस्तकालयाध्यक्ष पुस्तक चयन, वर्गीकरण एवं सूचीकरण आदि के कार्य में और सरकार साहित्यिक नियन्त्रण के रूप में इससे लाभ उठाते हैं। यह ताजे भारतीय प्रकाशनों की जानकारी देने में भी अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है। विशिष्ट विषय को पाने में यह उपयोगी बने; इसी

दृष्टि से इसके दोनों भागों को मिला कर एक कर दिया गया जिससे उपयोगकर्ताओं का समय भी बचता है। अनुक्रमणिका भी उपयोगिता को दृष्टि में रख कर इसमें समाविष्ट कीगयी है।

इसके साथ ही इस वाङ्मयसूची का गहनतम अध्ययन करने पर कतिपय दोष भी पाये जाते हैं जो निःसन्देह इसकी प्रतिष्ठा पर आघात करते हैं। वे निम्नलिखित हैं :—

(क) रोमन लिपि से अपरिचित पाठक इसका उपयोग करने में अपने को असमर्थ पाते हैं। इसी समस्या को दृष्टिगत रखते हुए कमेटी ने प्रादेशिक भाषा में पृथक्-पृथक् वाङ्मयसूची प्रकाशित करने का सुझाव दिया था जो असफल रहा।

(ख) यह समय पर प्राप्त नहीं होती जेसा कि समयावधि से विदित होता है।

(ग) यह अपूर्ण होती है क्योंकि देश के सम्पूर्ण प्रकाशनों को समाहित नहीं करती। बहुत से भारतीय प्रकाशक अपनी प्रकाशित पुस्तकें प्रेषित करने में ढिलाई करते हैं। ऐसी स्थिति में उनकी पुस्तकें इसमें समाविष्ट नहीं हो पाती हैं क्योंकि वाङ्मयसूची का निर्माण संस्था में प्राप्त सामग्री के आधार पर ही किया जाता है। इसका एक प्रमुख कारण यह भी है कि अधिनियम कठोर नहीं है।

(घ) अपूर्ण होने के कारण इस पर आधारित पुस्तक-चयन भी पूर्णरूपेण सही नहीं होता है।

(च) प्रायः कोलन क्लैसीफिकेशन के सम्बन्ध में बहुत सी मूलभूत गलतियाँ प्राप्त होती हैं जो मुख्यतया निम्न रूप में हानि पहुँचाती हैं—

(१) इस पर आधारित होकर वर्गीकरण अपनाने वाले पुस्तकालय में भी ऐसी ही गलतियाँ हो जाती हैं जो स्वाभाविक ही है।

(२) इससे विदेशों में प्रतिष्ठा गिरती है जो विक्रय को भी प्रभावित करती है।

(छ) मूल्य अधिक है जिससे भारत में ही क्रय करना एक समस्या बन जाती है।

(ज) इसके सम्पादन, सूचीकरण एवं अनुक्रमणिका निर्माण में कुछ तकनीकी गलतियाँ एवं कमियाँ पायी जाती हैं। फलस्वरूप कुछ अच्छे स्टाफ द्वारा इसकी पुनः-जाँच एवं सावधानीपूर्वक सम्पादन अपेक्षित है।

**सुझाव**—वैसे भारतीय स्थिति एवं साधन को देखते हुए इसके महत्त्व के विषय में प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता तथापि कुछ ऐसे उपाय हैं जिनके परिपूर्ण होने से इसकी उपयोगिता एवं महत्त्व ही नहीं बढ़ते अपितु पुस्तकालय हेतु एक उत्तम उपकरण भी सिद्ध हो सकता है। ये सुझाव निम्न हैं :—

(१) कापीराइट ऐक्ट की निष्क्रियता को दूर किया जाय। बहुत से प्रकाशक पुस्तकें कई कारणों से नहीं भेज पाते हैं। इसके लिए ठोस एवं सही योजना बनायी जाय तथा ऐक्ट को गम्भीरता से पालन कराया जाय।

(२) कमेटी के सुझाव के अनुरूप विभिन्न राज्य सरकारें, विभिन्न स्टेट सेन्ट्रल लाइब्रेरी इसको अपने-अपने प्रदेश की भाषा की वाङ्मयसूची के प्रकाशन में रुचि लें।

(३) 'नेशनल लाइब्रेरी' देश के विभिन्न स्रोतों में जहाँ वाङ्मयसूची निर्मित होती है, सहायता, नियन्त्रण एवं सहयोग प्रदान करे।

(४) वर्गीकरण हेतु हर भाषा के विशेषज्ञ पृथक्-पृथक् हों, उनके कार्य के उपरान्त उसका पुनः निरीक्षण हो। ऐसा करने पर निःसन्देह यह महत्त्वपूर्ण होगी।

**ब्रिटिश बुक्स इन प्रिन्ट (British Books in Print)**

**(१) पूर्व इतिहास**—सन् १८७४ ई० में 'रिफ्रेंस कैटलॉग आफ करेन्ट लिट्रेचर' दो भागों में प्रकाशित हुआ था जिसे 'आथर एण्ड टाइटिल इण्डेक्स' कहा जाता था। इसी को सन् १९६५ ई० में 'ब्रिटिश बुक्स इन प्रिन्ट' के नाम से दो भाग में प्रकाशित किया गया और कालान्तर में सन् १९६७ ई० से एक ही भाग में प्रकाशित हो रहा है।

**(२) उद्देश्य**—इसका उद्देश्य ब्रिटेन में प्रकाशित अद्यतन साहित्य को सूचीबद्ध करना है।

**(३) प्राधिकारी**—यह वाङ्मयसूची लन्दन की व्यक्तिगत संस्था जे ह्वाइटेकर्स एण्ड सन्स लिमिटेड द्वारा प्रकाशित की जाती है। इसने इस कार्य हेतु योग्य एवं प्रशिक्षित कर्मचारियों की व्यवस्था की है जो प्रति सप्ताह प्रकाशित साहित्य को सूचीबद्ध करते हैं।

**(४) समयावधि** यह साप्ताहिक प्रकाशन है जिनका संकलित प्रकाशन प्रतिमाह, अर्द्धवार्षिक एवं वार्षिक होता है।

**(५) समाविष्ट क्षेत्र**—प्रविष्टियों के व्यवस्थापन एवं संकलन में पर्याप्त पूर्णता की ओर ध्यान दिया गया है। यह ब्रिटेन में प्रकाशित होने वाले समस्त साहित्य को समाविष्ट करता है। इसके अन्तर्गत ब्रिटेन के लगभग १८०० प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित साहित्य का समावेश हो जाता है।

**(६) व्यवस्थापन**—इसमें संलेख लेखक अनुक्रमणिका एवं आख्या अनुक्रमणिका दो रूपों में सुव्यवस्थित किये जाते हैं।

लेखक अनुक्रमणिका की व्यवस्था आनुवर्णिक लेखकों का क्रम वंशगत नाम (सर नेम) से दिया गया है और एक वंशगत नाम के अन्तर्गत आये हुए व्यक्ति नामों को उनके साथ नाम के संक्षेपों या पूर्ण नामों को भी आनुवर्णिक क्रम में कर दिया गया है। कल्पित नाम की अन्तर्निर्देशीय प्रविष्टि मूल नाम से की गयी है। संलेख में लेखक नाम के अतिरिक्त निम्न सूचनाएँ भी दी जाती हैं—आख्या, उपाख्या, खण्ड संख्या, आकार-प्रकार, प्रकाशन स्थान, पत्रादि विवरण, जिल्दबन्दी और मूल्य आदि।

आख्या अनुक्रमणिका में आख्या को मुख्य आधार मान कर व्यवस्थापन किया जाता है। इसमें लेखक संलेख की भांति पूर्ण सूचना दी जाती है। आख्या अनुक्रमणिका में आख्या के प्रथम अक्षर (A, An, The) को छोड़ देते हैं। पुस्तक का विषय जिन पुस्तक नाम में सम्मिलित है, उसे विषय के अन्तर्गत भी दिया गया है। इसका व्यवस्थापन शब्द प्रतिशब्द के रूप में किया जाता है।

(७) **मूल्यांकन**—यह ब्रिटेन में प्रकाशित होने वाली अध्ययन-सामग्री की सूचना देने के कारण पुस्तक-चयन एवं संदर्भ सेवा हेतु उत्तम उपकरण माना जाता है। साथ ही यह ब्रिटेन के साहित्यिक नियन्त्रण में भी सफल रहा है।

**बुक्स इन प्रिन्ट (Books in Print)**

(१) **उद्देश्य**—संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में प्रकाशित सभी भाषाओं एवं विषयों के नवीनतम प्रकाशनों की सूचना प्रदान करना ही इसका प्रमुख उद्देश्य है।

(२) **प्राधिकारी**—यह एक व्यक्तिगत प्रकाशन है जो सुविख्यात संस्था आर० आर० तोरकर कम्पनी, न्यूयार्क के बिब्लियोग्रैफी डिपार्टमेन्ट द्वारा निर्मित की जाती है। यह संस्था इस कार्य हेतु शासन से अधिकृत है जो अपने योग्य, प्रशिक्षित एवं अनुभवी कर्मचारियों के माध्यम से प्राथमिक स्रोतों से प्राप्त सूचना के आधार पर इसे निर्मित एवं प्रकाशित करती है।

(३) **समयावधि**—यह वार्षिक प्रकाशन है परन्तु अद्यतन बनाने के लिए मासिक प्रकाशन होता है। इसी को एक में समाविष्ट करके वार्षिक प्रकाशन किया जाता है।

(४) **समाविष्ट क्षेत्र**—इसमें संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के समस्त प्रकाशनों को समाविष्ट किया जाता है। इसमें पुस्तकों के अतिरिक्त शासकीय प्रकाशन, सन्दर्भ पुस्तकें आदि को भी समाविष्ट करते हैं। पुस्तकों के अतिरिक्त अध्ययन-सामग्री यथा सामयिकी, संगीत के रिकार्ड आदि का इसमें समावेश नहीं किया जाता है। एक पुस्तक के सम्बन्ध में एक ही स्रोत की सूचना अंकित की जाती है। इस वाङ्मयसूची में उन्हीं प्रकाशकों के प्रकाशन की सूचना दी जाती है जो व्यावसायिक प्रकाशकों की सूची में सूचीबद्ध है।

(५) **व्यवस्थापन**—यह प्रायः दो रूपों में प्रकाशित होती है—लेखक अनुक्रमणिका तथा आख्या अनुक्रमणिका। प्रत्येक के दो-दो खण्ड होते हैं। ऐसा प्रायः विस्तार को दृष्टि में रखकर किया जाता है। एक एवं दो खण्ड लेखक तथा तीन एवं चार खण्ड आख्या का होता है। इसे प्रायः निम्न रूप में विभाजित करते हैं—

| | | | |
|---|---|---|---|
| (1) Author's | Vol. 1 | A—J | I |
| (2) Author's | Vol. 2 | K—Z | |
| (3) Title | Vol. 1 | A—J | II |
| (4) Title | Vol. 2 | K—Z | |

दोनों अनुक्रमणिकाओं में प्रविष्टियों का व्यवस्थापन आनुवर्णिक क्रम में होता है। अन्तिम और चौथे खण्ड के अन्त में प्रकाशकों की अनुक्रमणिकाएँ भी दी जाती हैं जो प्रायः प्रकाशकों के संक्षिप्त नामों के आनुवर्णिक क्रम में होती हैं। साथ ही एक आनुवर्णिक अनुक्रमणिका संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के प्रकाशकों की होती है।

ग्रन्थ की भूमिका में लेखक खण्ड की उपयोग विधि दी गई है। पुस्तक के प्रारम्भ में संक्षेपण के संकेताक्षर भी दिये गये हैं, यथा Division = Div.

प्रविष्टियों में प्रायः निम्न सूचनाएँ दी जाती हैं—लेखक, सहकार, आख्या, खण्ड संख्या (Number of vol ), संस्करण, वर्गाङ्क (Class no according to Library of Congress), ग्रन्थमाला, भाषा (अंग्रेजी भाषा के अतिरिक्त), चित्रादि विवरण, प्रकाशन स्थान, मूल्य, जिल्दबन्दी (कपड़े के अतिरिक्त), आदि।

(६) **मूल्यांकन**—बुक्स इन प्रिन्ट की आन्तरिक विशेषताओं का अवलोकन करते हुए यह कहा जा सकता है कि पुस्तक चयन, संदर्भ सेवा तथा अमेरिकन पुस्तकों के सूचना देने के सम्बन्ध में यह अद्वितीय वाङ्मयसूची है।

**ब्रिटिश नेशनल बिब्लियोग्रैफी (B. N. B.)**

(१) **उद्देश्य**—इसका मुख्य उद्देश्य 'कापीराइट ऐक्ट' के अन्तर्गत आने वाली अध्ययन-सामग्री को सूचीबद्ध करना तथा उनका यथासम्भव व्याख्यायित करना है।

(२) **प्राधिकारी**—यह काउन्सिल ऑफ ब्रिटिश नेशनल बिब्लियोग्रैफी, लन्दन द्वारा प्रकाशित होती है। यह संस्था ब्रिटिश म्यूजियम के कापीराइट विभाग, ग्रन्थ उत्पादन से सम्बन्धित कुछ संघों एवं पुस्तकालय संघों आदि से मिल कर बनी है। वाङ्मयसूची में ब्रिटिश म्युजियम द्वारा कापीराइट ऐक्ट के अन्तर्गत प्राप्त नये प्रकाशनों को लेखाबद्ध करते हैं, जिसका उत्तरदायित्व इस संस्था पर ही होता है।

(३) **समयावधि**—यह सन् १९५० ई० से प्रकाशित हो रही है। यह साप्ताहिक प्रकाशन है, जो प्रत्येक बुधवार को प्रकाशित होता है। साथ ही समय-समय पर मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक, नौमासिक, वार्षिक एवं बहुवार्षिक संकलन भी प्रकाशित किये जाते हैं। ऐसा ब्रिटिश पुस्तकों के संदर्भ में अद्यतन संदर्भ सेवा हेतु किया जाता है।

(४) **समाविष्ट क्षेत्र**—यह वाङ्मयसूची पहले ब्रिटेन में प्रकाशित समस्त साहित्य (अपवाद को छोड़ कर) को विस्तृत रूप में समाविष्ट करती थी। विगत कुछ वर्षों से इसका क्षेत्र अति विस्तृत हो गया और यह ऐक्ट के अधीनस्थ सम्पूर्ण विश्व के साहित्य को समाविष्ट कर रही है परन्तु निम्नलिखित श्रेणी की सामग्री को छोड़ कर यह पूर्ण होती है—

(क) सस्ते उपन्यास

(ख) संगीत

(ग) मानचित्र

(घ) सामयिकी (प्रत्येक सामयिकी का प्रथमांक छोड़ कर)

(च) कुछ शासकीय प्रकाशन

(छ) बाल साहित्य

(ज) अपरिवर्तित पुनर्मुद्रित सामग्री जो कि कापीराइट ऐक्ट के अन्तर्गत ब्रिटिश म्युजियम में जमा नहीं की जाती आदि।

(५) **व्यवस्थापन**—इसके मुख्यतया दो भाग हैं जिसे विषय-अनुक्रमणिका (**Subject Index**) तथा लेखक अनुक्रमणिका (**Author Index**) नाम दिया गया है। इसमें प्रत्येक पुस्तक तथा अन्य अध्ययन सामग्री दशमलव वर्गीकरण (D. C.) के द्वारा वर्गीकृत एवं एंग्लो अमेरिकन कोड के अनुसार सूचीकृत होती है। प्रविष्टि में वर्गाङ्क, लेखक का पूर्णनाम, आख्या, प्रकाशक, मूल्य, जिल्दबन्दी, माला, प्रकाशन वर्ष, पृष्ठ संख्या, चित्रादि-विवरण, आकार-प्रकार और आवश्यक स्थानों पर टिप्पणी भी दी जाती है। ब्रिटिश म्युजियम के परम्परानुसार टाइटिल पेज को ज्यों के त्यों छद्मनाम कृतियों के सूचीकरण में दिया जाता है। इसकी प्रविष्टि छद्मनाम के अन्तर्गत बनायी जाती है।

लेखक की अनुक्रमणिका में उसके विविध रूपों के अन्तर्निर्देशी संलेखों के साथ लेखक का नाम दिया जाता है। कथा साहित्य की पुस्तकों के टाइटिल एवं अकथा साहित्य के भी कुछ पुस्तक नामों को दिया जाता है। लेखक एवं विषय अनुक्रमणिका को एक साथ सुव्यवस्थित किया जाता है, जिसमें अनुकूल क्रम की सुविधा भी रहती है।

इसमें अंग्रेजी भाषा का माध्यम बनाया गया है। इस कारण इसमें इण्डियन नेशनल बिब्लियोग्रेफी की भांति लिप्यन्तर, प्रतीक चिह्न आदि की समस्या नहीं आती है।

इसके व्यवस्थापन में एक विशिष्ट विशेषता है विषय-शीर्षक हेतु शृङ्खला-प्रक्रिया (**Chain Procedure**) का प्रयोग।

(६) **मूल्यांकन**—इसका मूल्यांकन निम्न रूपों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है—

यह बहुत ही व्यवस्थित ढंग से अद्यतन ब्रिटिश प्रकाशनों तथा ऐक्ट के अधीनस्थ अन्य प्रकाशनों का रिकार्ड प्रस्तुत करने में अद्वितीय है।

ग्रन्थ चयन के गाइड के रूप में इसकी उपयोगिता निःसन्देह अनिवार्य है। इस सन्दर्भ में इण्डियन नेशनल बिब्लियोग्रेफी की भांति प्रश्न-चिह्न नहीं लगाया जा सकता।

इसके संलेखों को अन्य पुस्तकालयों में सूची संलेखों के निर्माण में आधार माना जा सकता है। यह सूचीकार को दो विधियों से सहायता करता है—

(अ) इसके पृष्ठों के एक ओर छपे हुए संलेखों का उपयोग अन्य पुस्तकालय

कर सकते हैं। वहाँ के सूचीकारों का समय एवं श्रम बचता है। यदि वे चाहें तो अपने कैटलॉग कार्डों पर इस बिब्लियोग्रेफी के संलेखों की प्रतिलिपि कर सकते हैं।

(ब) इसकी विषय-अनुक्रमणिका सूचीकारों के लिए एक प्रामाणिक गाइड है जिससे वे सही विषय-शीर्षक का पता लगा सकते हैं।

इसके माध्यम से एक यूनीफॉर्म कैटलॉगिग भी स्थापित की जा सकती है।

इसके प्रकाशन से अन्य राष्ट्रों में भी अपने-अपने राष्ट्र की नेशनल ब्रिब्लियोग्रेफी निर्माण करने की प्रेरणा मिली है। भारत की इण्डियन नेशनल बिब्लियोग्रेफी इसी का प्रतिफल है।

इसका क्षेत्र विस्तृत होने के कारण यह अन्य देश की नेशनल बिब्लियोग्रेफी के समान अपने देश के पुस्तकालयों तक ही सीमित नहीं है वरन् यह संसार के विशेषज्ञ, वाङ्मयसूचीकार, विषय विशेषज्ञ, वर्गकार, सन्दर्भ-प्रदायक आदि को विभिन्न रूपों में सहायता पहुँचाती है।

ब्रिटिश नेशनल बिब्लियोग्रेफी का संगठन इतना पूर्ण रहा है कि इसमें बिब्लियोग्रैफी के अन्तर्गत रिकार्ड किये गये ग्रन्थों का तैयार कैटलॉग कार्ड करोड़ों की संख्या में देश-विदेश के पुस्तकालयों को वितरित करता है। इसी कारण इसे सेन्ट्रल कैटलॉगिग सर्विस के रूप में देखा जाता है।

आर्थिक दृष्टि से यह एक स्वावलम्बी प्रकाशन है। इससे अर्थ सम्बन्धी समस्या का समाधान स्वतः हो जाता है।

परन्तु यह दोषमुक्त नहीं है। आलोचकों ने इसकी भी आलोचना की है—

इसका व्यवस्थापन आनुवर्णिक क्रम से न होने के कारण नॉनटेकनिकल विद्वानों एवं शोधकर्त्ताओं को परेशानी होती है। पर इस दोष को इस दृष्टि से निराधार बताया जाता है कि इसकी पूर्ति अनुक्रमणिका से उपयोगकर्त्ता कर सकता है।

द्वितीय आक्षेप यह है कि कुछ श्रेणियों की सामग्री को समाविष्ट नहीं किया जाता है, इससे उपयोगकर्त्ता उन प्रकाशनों की जानकारी से वंचित रह जाते हैं। पर यह आरोप भी निराधार है क्योंकि ये सामग्री विशेष महत्त्व की न होने के कारण छोड़ दी जाती है। तथापि इस सामग्री की जानकारी अन्य साधनों से भी की जा सकती है।

□ □

अध्याय ६

# वाङ्मयसूची के प्रकार का विभाजन

**भारतीय मत** पुस्तकालय विज्ञान के भारतीय आचार्य डॉ० एस० आर० रंगनाथन ने तीन दृष्टिकोण से वाङ्मयसूची के प्रकार का विभाजन किया है—

(१) पी० एम० ई० एस० टी० के आधार पर।

(२) आर्थिक वाङ्मयात्मक शृङ्खला (इकोनॉमिक बिब्लियोग्रैफिकल चेन) के आधार पर।

(३) ग्रन्थ के भौतिक एवं आत्मिक स्वरूप के आधार पर।

**(१) पी० एम० ई० एस० टी० के आधार पर**— संश्लेषण एवं विश्लेषण के आधार पर ग्रन्थों का वर्गीकरण करने के लिए उन्होंने पाँच मूलभूत कोटियाँ (**Five fundamental categories**) को आधार माना है जिनको संक्षेप में पी० एम० ई० एस० टी० कहते हैं। ये क्रमशः व्यक्तित्व (Personality), पदार्थ (Matter), क्रिया (Energy), क्षेत्र (Space), समय (Time) के अंग्रेजी के आदि अक्षर हैं। किसी ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय (Thought Content) के आधार पर जो वाङ्मयसूची बनाई जाती है उसको वे विषय वाङ्मयसूचियाँ (सब्जेक्ट बिब्लियोग्रैफी) कहते हैं। जब वाङ्मयसूची पदार्थ (Matter) को दृष्टि में रख कर बनायी जाती है, जैसे पुस्तकें लेख आदि तो उसे इस वर्ग में रखा जाता है। जब वाङ्मयसूची को क्रियाओं (Energy) के आधार पर विभाजित करके बनाया जाता है, जैसे वर्णक्रम, वर्गीकृत क्रम तो इसे इस वर्ग में रखते हैं। यह व्यवस्थापन (Arrangement) के आधार पर होती है। जब वाङ्मयसूचियों का विभाजन भौगोलिक (स्थान विशेष के) आधार पर किया जाता है तो इसको इस पृथक् वर्ग में रखा जाता है, जैसे सार्वभौम, राष्ट्रीय वाङ्मयसूची आदि। जो वाङ्मयसूची काल (Time) को आधार मान कर निर्मित की जाती है तो उसे इस वर्ग में रखा जाता है, जैसे इनक्युनेबुला।

**(२) आर्थिक वाङ्मयात्मक शृंखला**—यह एक प्रकार से सर्किल के रूप में चलती है जो लेखक (Author) से प्रारम्भ होकर लेखक पर ही समाप्त होती है। इसके तीन अंग हैं—उपभोक्ता, वितरक एवं उत्पादक।

उपभोक्ता दो प्रकार के होते हैं—लेखक एवं पाठक। लेखक-उपभोक्ता इस दृष्टि से है कि वह अपने भाव की अभिव्यक्ति हेतु पुस्तकों आदि का अध्ययन एवं मनन करता है। तत्पश्चात् वह लिखता है। इस तरह वह उपभोक्ता है।

अध्ययन-सामग्री का उपयोगकर्त्ता ही पाठक कहलाता है।

वितरक के भी कई वर्ग होते हैं। लेखक द्वारा पुस्तक लिखने के उपरान्त उस पुस्तक आदि को प्रकाशक प्रकाशित करता है तथा तदुपरान्त पुस्तक-विक्रेता वितरण करता है। ये दोनों पुस्तक से आर्थिक दृष्टि से जुड़े रहते हैं न कि विषयवस्तु से।

इसी तरह वितरण में पुस्तक-चयनकर्त्ता, सूचीकार एवं सन्दर्भ-प्रदायक आदि का भी हाथ रहता है। ये पुस्तकों की विषयवस्तु के वितरण का कार्य करते हैं। ये अध्ययन-सामग्री की विषयवस्तु का उपयोग इसलिए करते हैं कि जिससे वे विभिन्न पाठकों को उनकी रुचि के अनुकूल अध्ययन-सामग्री तथा सन्दर्भ-प्रदान कर सकें। इस तरह वितरक के दो वर्ग प्रमुख हैं एक जो व्यावसायिक दृष्टि से जुड़े रहते हैं, द्वितीय वे जो विषयवस्तु से सम्बद्ध रहते हैं।

उत्पादक के भी दो प्रमुख वर्ग हैं—एक जो पुस्तक से भौतिक दृष्टि से सम्बद्ध रखता है, जैसे मुद्रक, सरकार, जिल्दसाज आदि और द्वितीय जो पुस्तक की विषयवस्तु से सम्बन्धित होता है। पुस्तक आदि को विषयवस्तु (Thought Content) की दृष्टि से कौन निर्मित करता है, इसे लेखक तैयार करता है अर्थात् लेखक ही पुस्तक आदि के उत्पादन से सम्बन्धित होता है।

इस तरह डॉ० रंगनाथन की दृष्टि से उत्पादन एवं उपभोक्ता दोनों पुस्तक के उत्पादन से सम्बन्धित रहते हैं। यह एक सर्किल की तरह चलता है। इसी कारण इसे चेन अथवा शृङ्खला कहा जाता है।

**(३) ग्रन्थ के भौतिक एवं आत्मिक स्वरूप के आधार पर**—डॉ० रंगनाथन ने तीसरा प्रकार निम्नलिखित रूप में किया है—

उन्होंने पुस्तक के तीन भेद किये हैं—

**(अ) स्थूल शरीर** ( Gross or Physical body )—भौतिक सामग्री (कागज, जिल्दसाजी, नक्शा आदि) के आधार पर।

**(ब) सूक्ष्म शरीर** (Subtle body)—डॉ० रंगनाथन ने भाषा, व्याकरण, शैली आदि को सूक्ष्म शरीर कहा है।

**(स) आत्मा** (Soul)—जैसे प्रत्येक शरीर में आत्मा होती है, वैसे पुस्तक में भी एक आत्मा होती है जिसे विषयवस्तु (Thought Content) कहा गया है।

इन्हीं तीनों के आधार पर रङ्गनाथन ने वाङ्मयसूची के निम्न भेद बताये हैं—

**(१) भौतिक वाङ्मयसूची** (Physical Bibliography)—इस वर्ग में उस वङ्मयसूची को रखा है, जो पुस्तक के भौतिक अङ्गों का वर्णन करती है, जैसे कागज, मुद्रण, जिल्दबन्दी आदि।

**(२) भाषात्मक वाङ्मयसूची** (Lingual Bibliography)—जो वाङ्मय-सूची अध्ययन सामग्री की भाषा, शैली आदि को आधार मान कर निर्मित की जाती है उसे भाषात्मक वाङ्मयसूची वर्ग के अन्तर्गत रखते हैं।

**(३) विषय वाङ्मयसूची** (Subject Bibliography)—वह वाङ्मय-सूची जो अध्ययन सामग्री की विषयवस्तु (आत्मा) का अध्ययन करती है उसे इस वर्ग में रखते हैं।

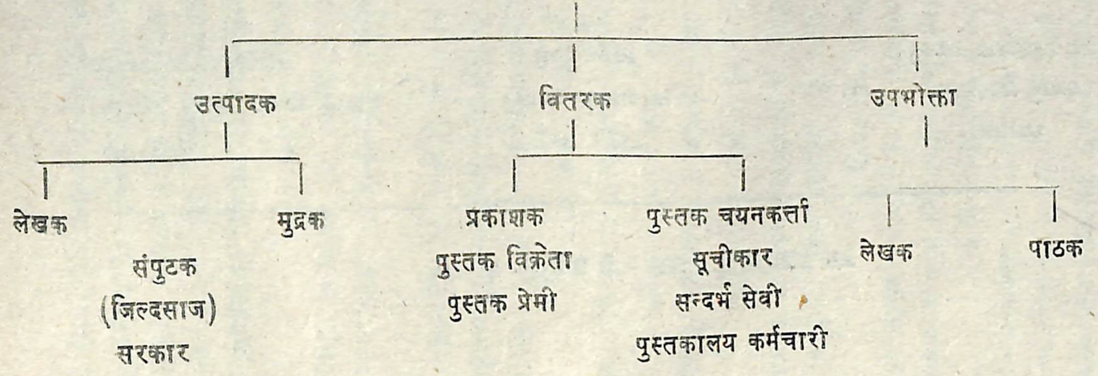
**पाँच मूलभूत कोटियों के आधार पर**

- (P) विषय वाङ्मयसूची
- (M) पुस्तकों, लेखों आदि की सूची
- (E) वर्णक्रम, वर्गीकृत क्रम आदि
- (S) सार्वभौम, राष्ट्रीय आदि
- (T) आदिमुद्रित ग्रन्थ आदि

**ग्रन्थ के भौतिक रूप आदि के आधार पर**

- स्थूल शरीर (कागज, जिल्द, नक्शा आदि) भौतिक वाङ्मयसूची
- सूक्ष्म शरीर भाषा, व्याकरण, शैली आदि
- आत्मा प्रतिपाद्य विषय (विषय वाङ्मयात्मकसूची)

डॉ० रंगनाथन के 'इकोनॉमिक बिब्लियोग्रैफिकल चेन' के आधार पर
वाङ्मयसूची के प्रकार




उक्त आधार पर निम्नलिखित वाङ्मयसूचियाँ निर्मित होती हैं—

(१) लेखक वाङ्मयसूची
(२) मुद्रक वाङ्मयसूची
(३) संपुटक वाङ्मयसूची
(४) मुद्रण सर्वाधिकार सूची
(५) प्रकाशक सूची
(६) पुस्तक विक्रेता सूची
(७) पुस्तक प्रेमी वाङ्मयसूची
(८) पुस्तक-चयन सूची
(९) पुस्तकालय सूची
(१०) विषय वाङ्मयसूची
(११) लेखक वाङ्मयसूची
(१२) पठनीय सूची ।

# द्वितीय भाग

# प्रलेखन

## [ Documentation ]

## प्रलेखन (Documentation)

- —प्रलेखन
- —प्रलेख के प्रकार
- —प्रलेखन के पक्ष
- —प्रलेखन सूचियां
- —सूचना पुनर्प्राप्ति
- —अनुक्रमणिका और अनुक्रमणीयन
- —सूचना पुनर्प्राप्ति पद्धतियां
- —सार और सारणीयन
- —अनुवाद सेवा
- —पुनर्प्रतिलिपिकरण
- —प्रलेखन स्टाफ
- —प्रलेखन कार्य का विकास एवं प्रलेखन संस्थाएँ

अध्याय १

# प्रलेखन

## ( DOCUMENTATION )

### सामान्य-परिचय

हिन्दी भाषा में प्रलेखन शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के 'डाकुमेन्टेशन' (Documentation) शब्द के स्थान पर लिया जाता है। अंग्रेजी भाषा में यह शब्द डाकुमेन्ट (Document) शब्द से बनता है। इसका अर्थ है 'किसी प्रस्तावित कल्पना (Hypothesis) या वक्तव्यों की पुष्टि के लिए तथ्यात्मक या अन्य रूप में ठोस प्रमाण प्रस्तुत करना।'[1]

डाकुमेन्ट या प्रलेख वह है जो कागज या किसी अन्य आधार धातु, काष्ठ-फलक, वस्त्रादि पर विचार को किसी भाषा में या संकेतों में लिपिबद्ध किया गया हो।

इस दृष्टि से 'पुस्तक' को भी 'डाकुमेन्ट' कहा जा सकता है किन्तु 'डाकुमेन्टेशन' शब्द का व्यवहार 'पुस्तकालय विज्ञान' के क्षेत्र में इसके सामान्य अर्थ से भिन्न एक विशेष अर्थ में किया जाता है। इस शब्द से पत्र-पत्रिकाओं आदि में प्रकाशित प्रलेखों को वैज्ञानिक-विधि से चयन, संग्रहण, पुनर्प्राप्ति और प्रस्तुत करने से है।

### वाङ्मयसूची और प्रलेखन में अन्तर

वाङ्मयसूची (Bibliography) बनाने का कार्य पुस्तकालयाध्यक्षों द्वारा बहुत पहले प्रारम्भ हुआ। विषय वाङ्मयसूचियों (सब्जेक्ट बिब्लियोग्रैफीज) में विषयानुसार पुस्तकों की विवरण सहित सूची बनाई जाती थी। उसका विशेष 'पदनाम' सिस्टमेटिक बिब्लियोग्रैफी रखा गया। वह एक कला थी। इसी आधार पर जब पत्रिकाओं के लेखों की विषयानुसार सूची बनाने का कार्य प्रारम्भ किया गया तो उसका नाम भी बिब्लियोग्रैफी ही रखा गया। बाद में, बिब्लियोग्रैफी और डाकुमेन्टेशन इन दोनों के क्षेत्र में अलगाव हुआ। परिणामस्वरूप अब पुस्तकों की विषयानुसार या

---

1. 'To provide with factual or substantial support for statements made or a hypothesis proposed.'

Webester's Third New International Dictionary.

लेखक आदि के अनुसार अनेक प्रकार की बिब्लियोग्रैफी बनाने का कार्य होने लगा। डाकुमेन्टेशन सामयिकों (पत्र-पत्रिकाओं) का तथा इसी प्रकार की अन्य अध्ययन सामग्रियों का अलग क्षेत्र बना दिया गया।

प्रथम प्रयोग—'डाकुमेन्टेशन' पद के प्रथम प्रयोग की कहानी इस प्रकार है—

सन् १८९५ ई० में बेलजियम में Henry La Fortaine और Paul Otlet ने सामयिकों में प्रकाशित लेखों तथा अन्य अणु प्रलेखों के सूक्ष्म वर्गीकरण की आवश्यकता का अनुभव किया। विशेषज्ञों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ऐसा आवश्यक समझा गया। पुस्तकों तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों की जो विश्व में बारह मिलियन के लगभग थे और प्रति वर्ष लगभग सौ हजार पुस्तकें तथा लाखों लेखों की वृद्धि हो रही थी, उनको वर्गीकरण कर के सूची बनाना तथा प्रत्येक अनुसंधानकर्त्ता को उसके विषय से सम्बन्धित सामग्री को उपलब्ध कराना दुष्कर कार्य था। ऐसा भगीरथ प्रयास कौन व्यक्ति करता। अतः ब्रुशेल्स में १८९५ ई० में इण्टरनेशनल बिब्लियाग्राफिक कान्फ्रेंस का आयोजन किया गया। फलतः इण्टरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ बिब्लियाग्रैफी की स्थापना करने का निश्चय किया गया। बेलजियम सरकार ने इसके लिए धन दिया।

सन् १९३१ ई० में इस संस्था का नाम बदल कर 'इण्टरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ डाकुमेन्टेशन' किया गया। यह प्रथम प्रयास था जबकि 'बिब्लियोग्रैफी' पद के स्थान पर 'डाकुमेन्टेशन' पद का प्रयोग किया गया। १९३७ में पुनः उक्त नाम को बदलकर इण्टरनेशनल फेडरेशन फार डाकुमेन्टेशन (FID) रखा गया और इसका मुख्यालय ब्रुशेल्स से हेग किया गया। यह संस्था विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ विद्वानों विशेषतया औद्योगिक अनुसन्धानकर्त्ताओं का संगठित रूप है। इन लोगों ने विविध विषयों पर प्रलेखन सूचियों का प्रकाशन किया। उन्होंने बुलेटिन ऑफ इन्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ बिब्लियोग्रैफी का प्रकाशन बन्द करके सन् १९३० ई० में Documentation Universalis का प्रकाशन शुरू किया।

इस प्रकार 'डाकुमेन्टेशन' शब्द की पृथक् सत्ता स्थापित हुई और यह शब्द (Term) विज्ञान, टेक्नोलॉजी और व्यवसाय से सम्बन्धित क्षेत्र के पुस्तकालयों में अधिक से अधिक व्यवहार में आने लगा और इसको मान्यता प्राप्त हो गई।

## अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता

श्री एस० सी० ब्रैडफोर्ड ने अपनी पुस्तक 'डाकुमेन्टेशन' में डाकुमेन्टेशन शब्द की जो परिभाषा की वह परिभाषा यूरोप के अधिकांश देशों और अमेरिका में भी प्रचारित और मान्य हुई। फलतः यूनेस्को की सहायता से कई देशों में नेशनल डाकुमेन्टेशन सेन्टर स्थापित हुए। भारत में भी DRTC, DESIDOC, INSDOC आदि डाकुमेन्टेशन सेन्टर स्थापित हुए। पॉल ओटलेट (Paul Otlet) और हेनरी ला

फोन्टेन (Henri La Fortaine) के प्रयास से डाकुमेन्टेशन शब्द को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता प्राप्त हुई । अमेरिका में सन् १६३७ ई० में 'अमेरिकन डाकुमेन्टेशन इन्स्टीट्यूट' बना । वहां स्पेशल लाइब्रेरी एसोसियेशन की डाकुमेन्टेशन कमेटी ने इसमें अपना योगदान दिया । इसी प्रकार ASLIB ने लन्दन में भी इस ओर कार्य किया । रायल सोसाइटी ने लन्दन में एक कांफ्रेंस का आयोजन किया जिसने अपनी रिपोर्ट में डाकुमेन्टेशन की समस्याओं और तकनीकों की रूपरेखा प्रस्तुत की ।

**क्षेत्र**

प्रलेखन का लक्ष्य प्रलेखों की खोज, उनका विश्लेषण और उनके स्थिति-स्थान (Location) को सूचित करना है । इसकी टेक्निकल विधियों में वर्गीकरण, सूचीकरण, अनुक्रमणीयन ( Indexing ), सारांशीकरण ( Abstracting ), अनुवाद और पुनर्प्रतिलिपिकरण (रिप्रोग्राफी) के अतिरिक्त विषय अनुक्रमणिकायें, डाइजेस्ट्स, समीक्षाएँ आदि का सम्पादन और प्रकाशन भी है ।

प्रलेखन अपने अन्तर्गत प्रत्येक विधा में क्रमशः तेजी से विकास कर रहा है । अब यह विश्व भर के वैज्ञानिक साहित्य को राष्ट्रीय प्रलेखन केन्द्रों के माध्यम से कवर करने लगा है । वर्तमान काल में तो प्रलेखन अपने सिद्धान्तों और प्रविधियों (टेकनिक्स) में उच्च विकसित अवस्था को पहुँच रहा है ।

**परिभाषा**

विद्वानों ने प्रलेखन की परिभाषा इस प्रकार की है :—

'प्रलेखन, बौद्धिक क्रियाकलापों के हर प्रकार के रिकार्डों को संग्रह करके वर्गीकरण करने तथा उपयोग योग्य बनाकर उनको सुलभ करने की कला है ।[1]

—एस० सी० ब्रेडफोर्ड

विशिष्ट ज्ञान की रिकार्डिंग, संगठन और वितरण ।[2]

—ASLIB

प्रलेखन, मानव क्रियाकलापों के सब क्षेत्रों के सब प्रकार के प्रलेखों को एकत्र करने, वर्गीकरण करने और वितरित करने की एक प्रक्रिया है ।[3] —पाल आटलेट

---

1. The art of collecting, classifying and making readily accessible the records of all kinds of intellectual activity.

—S. C. Bradford

2. Recording, organisation and dissemination of specialised knowledge.

—ASLIB

3. A process by which are brought together, classified and distributed all the documents of all kinds of all the areas of human activity.

Paul Otlet

विशेषज्ञों द्वारा सूक्ष्म विचारों को विशेषज्ञों के उपयोग में लाने के लिए सटीक और विस्तृत द्रुत सेवा का प्रोनयन और अभ्यास।[1]

—डॉ० एस० आर० रंगनाथन

अतः संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रलेखन से तात्पर्य ऐसी सेवा या प्रक्रिया से है जो पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तिकाओं, ग्रन्थों आदि में प्रकाशित सूक्ष्म विचारों को एकत्र करता है तथा उनका वर्गीकरण, सूचीकरण, सारांशोकरण, अनुवाद आदि करके उस पठनीय सामग्री की सूचियाँ प्रकाशित करता है जिससे विशेषज्ञ एवं अनुसंधानकर्त्ता उनका उपयोग कर सकें।

**आवश्यकता** (Need)

प्रलेखन सेवा की आवश्यकता को निम्नलिखित कारणों से समझा जा सकता है—

(१) सामयिक प्रकाशनों में वृद्धि तथा विभिन्न पाठ्य-सामग्री को पाठकों द्वारा क्रय करने में असमर्थ होना।

(२) विभिन्न भाषाओं के ज्ञान की समस्या।

(३) अनुसंधान के क्षेत्र में तीव्रता एवं सूक्ष्मतम विषयों में खोज होना।

(४) विभिन्न रूपों में, विभिन्न भाषाओं में, विभिन्न स्थानों में प्रकाशित सामग्री को खोज पाना अनुसंधानकर्त्ताओं हेतु सम्भव न होना।

(५) अनुसंधानकर्त्ताओं के पास सम्पूर्ण साहित्य के अध्ययन के लिए समय न होना।

(६) पाठ्य-सामग्री की रिपोर्ट, चार्ट्स, डाइग्राम्स, माइक्रोफिल्म्स, माइक्रोकार्ड्स, फोटो स्टेट ड्राइंग, पत्र व्यवहार आदि विभिन्न रूपों में प्रस्तुत होना जिसे अनुसंधानकर्त्ताओं द्वारा—

(क) खोजना असम्भव एवं श्रमसाध्य है।

(ख) इन सब को स्मरण रखना सम्भव नहीं।

(ग) इनका एकत्रीकरण सम्भव नहीं (संग्रह करना, लेखा रखना)

(घ) अनुसंधानकर्त्ताओं द्वारा इसे सुव्यवस्थित करना, उपयोगी बनाना दुष्कर है।

(७) विभिन्न क्षेत्रों में मितव्ययता हो अर्थात् पुस्तकालय से सम्बद्ध सभी का श्रम, समय और धन बचे। इस दृष्टि से इसकी आवश्यकता है।

(८) राष्ट्र के उत्थान हेतु।

---

1. Promotion and practice of bringing into use of nascent microthought by specialists and pinpointed, exhaustive and expeditious service of nascent microthought to specialists.

—S. R. Ranganathan

(९) अनुसंधान में होने वाले पुनरावृत्ति को रोकने हेतु।

(१०) रिसर्च के कार्य को निरन्तर बनाये रखने हेतु।

(११) इसकी आवश्यकता इस कारण से भी है कि दिन-प्रति-दिन हो रही नवीन खोजों का उपयोग हो, नहीं तो कालान्तर में लाखों की संख्या में प्रकाशित ज्ञान के बीच उनके गुम हो जाने का भय बना रहता है।

उद्देश्य (Aim)— इसके उद्देश्य के सम्बन्ध में शोर्स ने लिखा है —"प्रलेखन का मुख्य उद्देश्य अन्वेषण और इस अन्वेषण के प्रयोग तथा नवीन अन्वेषण के कार्य के मध्य समय की दूरी को न्यूनतम करना है।"

विशेष पाठकों की विभिन्न समस्याओं को देखते हुए इसके समाधान हेतु जहाँ प्रलेखन सेवा उपलब्ध है, ऐसी संस्था में एक प्रलेखनाधिकारी (Document Officer) या प्रलेखनाचार्य (Documentionist) होता है जिसका प्रमुख कार्य उपयोगकर्त्ताओं हेतु सामग्री का चयन करना, उसको सुव्यवस्थित करना (वर्गीकरण, सूचीकरण आदि करके), माँग पर प्रस्तुत करना, साथ ही उपयोगकर्त्ताओं की माँग पर अनुक्रमणिका, संक्षेपण, अनुवाद और आँकड़े तैयार करना एवं प्रस्तुत करना जिससे समाज का चतुर्दिक् विकास हो सके।

## प्रलेखन सेवा (Documentation Service)

प्रलेखनसूची का विशिष्ट अध्ययन और अनुसन्धानकर्त्ताओं को उसे सुलभ करना प्रलेखन सेवा का मुख्य कार्य है। इससे उनको अपने-अपने अभीष्ट टॉपिक पर नवीनतम जानकारी उपलब्ध होगी। फिर वे अपनी आवश्यकता के अनुसार चाहेंगे तो मूल प्रलेख की प्रतिलिपि की भी माँग कर सकते हैं। उस मूल लेख की प्रतिलिपि उस माँगकर्त्ता को प्रलेखन केन्द्र पर आये बिना ही प्रलेखन केन्द्र से प्राप्त हो सकेगी।

श्रेष्ठ प्रलेखन सेवा हेतु निम्नलिखित कार्य आवश्यक होते हैं :—

(क) पाठकों की शीघ्र एवं उत्तम सेवा प्रदान करने के लिए निरन्तर सभी विषयों के संलेखों पर दृष्टि रखना।

(ख) पुस्तकालय में अनुपलब्ध सामग्री को अन्य प्रलेखन केन्द्रों से मँगवाना एवं उपयोगकर्त्ताओं को प्रदान करना। इसके लिए यह अपेक्षित है कि अमुक-अमुक विशिष्ट पठन-सामग्री कहाँ से एवं कैसे प्राप्त हो सकेगी इसकी जानकारी रखना तथा परस्पर अन्तर्पुस्तकालय ऋण (इण्टरलाइब्रेरी लोन) आदि के माध्यम से सहयोग बनाये रखना।

(ग) उपयोगकर्त्ताओं द्वारा माँग होने पर किसी विशेष सामग्री को फोटोस्टेट, फोटोकापी, माइक्रोफिल्म, टाइप आदि अन्य विधि से प्रतिलिपि तैयार कर उनको प्रदान करना।

(घ) अनुवाद सेवा प्रदान करना।

(ङ) प्रलेखों को सारांशीकरण सेवा उपलब्ध करना।

(च) प्रलेखन सूची का वितरण।

अध्याय २

# प्रलेख के प्रकार

## ( TYPES OF DOCUMENTS )

प्रलेख (Document) का प्रयोग पुस्तकालय विज्ञान के क्षेत्र में एक व्यापक अर्थ में किया जाता है। अर्जित ज्ञान, विचार एवं भाव जिस किसी रूप में लिपिबद्ध हों उनका संग्रह करना मानवता के विकास के लिए आवश्यक है। डॉ० रंगनाथन के अनुसार प्रलेख चार प्रकार के होते हैं—

(१) परम्परागत प्रलेख (Conventional documents)

(२) अपरम्परागत प्रलेख (Non-Conventional documents)

(३) नव-परम्परागत प्रलेख (Neo-Conventional documents)

(४) अनुप्रलेख (Meta-documents)

स्तर और स्वरूप की दृष्टि से इनके उपभेद भी होते हैं।

(१) परम्परागत प्रलेख के अन्तर्गत स्तर के आधार पर मौलिक स्तर, शोध स्तर, सामान्य स्तर, प्रारम्भिक स्तर, प्रतिवेदनात्मक स्तर तथा व्यवस्थापकीय स्तर के प्रलेख आते हैं।

स्वरूप की दृष्टि से परम्परागत प्रलेख के अन्तर्गत पुस्तकें (इनमें अनेक खण्डों वाली पुस्तकें, पूरक, सम्मिश्र (सामान्य और कृत्रिम) तथा सामान्य (साधारण) की गणना की जाती है। इनके अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाएँ भी इसी वर्ग में आती हैं। ये स्थूल स्वरूप की सामग्री होती हैं। इनको माइक्रो-डाकुमेंट्स (Micro-documents) कहते हैं।

(२) अपरम्परागत प्रलेख के अन्तर्गत पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख या पुस्तक का कोई अंश जो देखने में छोटे हों किन्तु मैटर में गम्भीरता लिए हों इनको सूक्ष्म प्रलेख (Micro-document) कहते हैं।

(३) नव-परम्परागत प्रलेखों के अन्तर्गत अत्याधुनिक सूक्ष्म प्रलेखों की जैसे मानक, प्लान, डाटा, पेटेंट्स आदि की गणना की जाती है।

(४) अनुप्रलेख के अन्तर्गत चित्र आदि आते हैं जिनमें यंत्रों का विशेष रूप से योगदान रहता है। इनमें मानव का योगदान नगण्य रहता है।

□ □

अध्याय ३

# प्रलेखन के पक्ष

## ( FACETS OF DOCUMENTATION )

प्रलेखन से सम्बन्धित कार्य और उसके द्वारा की गई सेवाओं को देखते हुए उसके निम्नलिखित पांच पक्ष हो सकते हैं—

(१) प्रलेखन कार्य (Documentation work)
(२) प्रलेखन सेवा (Documentation service)
(३) सारांशीकरण कार्य (Abstracting work)
(४) प्रलेख पुनर्प्रतिलिपिकरण सेवा (Document reproduction service)
(५) अनुवाद सेवा (Translation service)।

उक्त पक्षों का संक्षिप्त परिचय क्रमशः इस प्रकार है—

(१) प्रलेखन कार्य—सफल प्रलेखन सेवा का मूल आधार प्रलेखन कार्य है। चाहे किसी पुस्तकालय में प्रलेखन की व्यवस्था हो या पृथक् स्थापित प्रलेखन केन्द्र हो, प्रलेखन सेवा से पूर्व जो कार्य किये जाते हैं उनको प्रलेखन कार्य कहते हैं।

विशेष अध्ययन और अनुसन्धान में लगे विशिष्ट उपयोगकर्त्ताओं के लिए एक नियमित पत्रिका के रूप में प्रलेखन सूची (Documentation list) तैयार की जाती है। फिर वह मुद्रित या साइक्लोस्टाइल आदि किसी रूप में उन विशिष्ट उपभोगकर्त्ताओं को सुलभ की जाती है। उस प्रलेखन सूची को तैयार करने से पूर्व जितने कार्य होते हैं उनको प्रलेखन कार्य कहते हैं।

प्रलेखन कार्य के अन्तर्गत उपयोगकर्त्ताओं के लिए उपयोग की अध्ययन-सामग्री अर्थात् शोध प्रधान पत्रिकाओं, पुस्तिकाओं, कार्यवृत्तों प्रोसीडिंग्स आदि का अर्जन (Acquisition) करना, मँगाना, आगत सामग्री को पढ़कर उपयोगकर्त्ताओं के लिए उपयोगी प्रलेखों का चयन करना और उन पर चिह्न (Mark) लगाना, चुने हुए प्रलेखों का विषय के अनुसार वर्गीकरण करना, सूचीकरण (Cataloguing) करना, विषय-शीर्षक निर्धारित करना, प्रलेखों के नाम (आख्या), लेखक और विषय के अनुसार अनुक्रमणिका (Index) बनाना, उसके बाद उक्त प्रलेखन सूची का सम्पादन और प्रकाशन (मुद्रण, साइक्लोस्टाइल, टंकण किसी रूप में) करके, उपयोगकर्त्ताओं के लिए तैयार कर देना और सबसे अन्त में उन प्रलेखों आदि का व्यवस्थापन करके सुरक्षित रखना जिससे कि उपयोगकर्त्ताओं की मांग पर उनको दिया जा सके।

इस प्रकार प्रलेखों आदि का अर्जन, चयन, परिग्रहण, वर्गीकरण, सूचीकरण, विषय शीर्षकों का निर्धारण, अनुक्रमणिका निर्माण, समस्त प्रलेखों का सम्पादन,

प्रलेखन सूची का प्रकाशन तथा अन्त में व्यवस्थापन एवं संरक्षण (Preservation) आदि प्रलेखन कार्य हैं।

(२) **प्रलेखन सेवा**—प्रलेखन सेवा में प्रलेखन सूची और विशेष अध्ययन में लगे व्यक्तियों और अनुसन्धानकर्त्ताओं के बीच सम्पर्क स्थापित किया जाता है। उनको प्रलेखन सूची वितरित की जाती है। जितने ही अधिक लोग प्रलेखन सूची पढ़ेंगे उतना ही उसकी उपयोगिता बढ़ेगी। अनेक विद्वान् नये-नये प्रलेखों की जानकारी प्राप्त करेंगे और मूल प्रलेख को देखना चाहेंगे।

(३) **सारांशीकरण सेवा** (Abstracting service)

(४) **अनुवाद सेवा** (Translation service)

(५) **पुनर्प्रतिलिपिकरण सेवा** (Reproduction service)—का परिचय आगे अलग-अलग अध्यायों में दिया गया है।

### प्रलेखन सेवा और सूचना सेवा में अन्तर

इन दोनों सेवाओं के अन्तर को समझने से पहले यह आवश्यक है कि दोनों की प्रक्रियाओं को समझ लिया जाय। इन दोनों सेवाओं की तैयारी में सूचना स्रोतों का सर्वेक्षण, आवश्यकतानुसार प्रलेखों का चयन, चयनित प्रलेखों की रिकार्डिंग, सारांशीकरण (Abstracting) और अनुक्रमणीयन (Indexing), स्मृति में उनका संग्रहण (Storage in memory) और छँटाई एवं समन्वयन (Scanning and co-ordination) किया जाता है। अतः स्पष्ट रूप में इन दोनों में कोई अन्तर नहीं दिखाई पड़ता। प्रलेखन (Document) पद का प्रयोग सर्वप्रथम १९३१ ई० में आया। उसके बाद उसके स्थान पर १९५९ में सूचना विज्ञान (Information Science) का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। यदि 'डाकुमेन्टेशन' शब्द का प्रयोग न किया गया होता तो Reference-Service के बाद Information Service शब्द का ही प्रयोग होता जो ज्यादा व्यापक और स्पष्टता का बोधक पद (Term) है।

अतः सूचना विज्ञान एक विस्तृत सेवा का बोधक नया पद (Term) है। इसके अन्तर्गत प्रलेखन (Documentation) भी आ जाता है क्योंकि एस० सी० ब्राडफोर्ड और पॉल ओटलेट की दी गई परिभाषाओं के अनुसार डाकुमेन्टेशन केवल एक प्रक्रिया (Process) या कला (Art) है जबकि पाश्चात्य विद्वानों ने सूचना विज्ञान (Information Science) को विज्ञान (Science) माना है। यह नया वैज्ञानिक विषय है। यह सूचना के गुण धर्मों (Properties) व्यवहार (Behaviour) और सूचना के प्रवाह (Flow of Information) के अध्ययन से सम्बन्धित है तथा इसके अन्तर्गत सूचना के स्रोत से प्रसार तक के सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं (Principles and Techniques) का अध्ययन भी किया जाता है।

□ □

अध्याय ४

# प्रलेखन सूची

## ( DOCUMENTATION LIST )

प्रलेखन सूचियों के द्वारा विशिष्ट अध्ययन और अनुसन्धान में लगे हुए लोगों की सहायता की जाती है। यह अनुसन्धानकर्त्ताओं, वैज्ञानिकों, प्रौद्योगिकीविदों तथा विद्वानों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए तैयार की जाती है। यह किसी विशिष्ट विषय या उसके टॉपिक से सम्बन्धित सूची होती है। यह किसी भी भाषा में बनाई जा सकती है।

### उद्देश्य : कार्य

प्रलेखन सूची का उद्देश्य विशिष्ट पाठकों और शोधकर्त्ताओं को उनके अभीष्ट विषय पर नवीनतम प्रकाशित और उपलब्ध प्रलेखों की जानकारी देना है जिससे वे अपने विषय के क्षेत्र में हुई प्रगति से अवगत हो सकें। उनका समय बच सके। अभीष्ट प्रलेख की प्राप्ति में उनका कम से कम समय और धन व्यय हो। ऐसे विशिष्ट उपयोगकर्त्ता विभिन्न स्रोतों से प्राप्त प्रलेखों में से अपने लिए सर्वाधिक उपयोगी प्रलेख का चयन कर सकें। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति करना प्रलेखन सूची का कार्य है।

### प्रलेखन सूची के प्रकार

डॉ० रंगनाथन ने प्रलेखन सूची को दो आधार मानकर उसके प्रकार का निर्धारण किया है।

(१) प्रलेखन सूची में संलेख की प्रकृति (Nature of entry)

(२) सूची की संरचना (Structure)।

इनमें से प्रथम आधार पर निम्नलिखित प्रकार की प्रलेखन सूचियाँ आती हैं—

(१) शुद्ध प्रलेखन सूची (Bare documentation list)

(२) अनुक्रमणीयन पत्रिकायें (Indexing periodicals)

(३) टिप्पणीयुक्त प्रलेखन सूची (Annotated documentation list)

(४) सारयुक्त प्रलेखन सूची (Abstracted documentation list)

(५) सारणीयन सामयिक (Abstracting periodical)।

सूची की संरचना के आधार पर निम्नलिखित प्रकार की प्रलेखन सूचियाँ आती हैं—

(१) विषयमूलक प्रलेखन सूची (Subject documentation list)

(२) अनुवर्ण प्रलेखन सूची (Dictionary documentation list)

(३) अनुवर्ग प्रलेखन सूची (Classified documentation list)।

प्रलेखन सूचियाँ क्षेत्रीय आधार पर भी बनाई जाती हैं—जैसे, अन्तर्राष्ट्रीय प्रलेखन सूची, राष्ट्रीय प्रलेखन सूची, क्षेत्रीय प्रलेखन सूची और स्थानीय प्रलेखन सूची। आजकल तो प्रलेखन सूचियाँ बनाने में यांत्रिक सहायता भी ली जाने लगी है जिससे उपयोगकर्त्ताओं को कम से कम समय में अधिक से अधिक जानकारी मिल सके।

**निर्माण**

प्रलेखन सूची के निर्माण में निम्नलिखित मानक (Standard) स्वरूप रखा जाना चाहिये—

(१) लेखक का वंश नाम तथा व्यक्ति नाम। यदि नाम अंग्रेजी में हो तो उसे कैपिटल लेटर में लिखा जाय।

(२) स्क्वायर ब्रैकेट [ ] में जहाँ लेखक कार्यरत हो उस संस्था का नाम।

(३) संस्था का पता।

(४) लेख का टाइटिल (यदि लेख किसी विदेशी भाषा में हो तो उसके नाम को उस भाषा में अनुवाद करके स्क्वायर ब्रैकेट में लिखा जाय जिसमें प्रलेखन सूची बन रही हो।)

(५) पत्रिका के नाम का संक्षिप्त रूप।

(६) पत्रिका के खण्ड (Volume) और अंक (Number) का विवरण।

(७) पत्रिका के वर्ष और मास का विवरण।

(८) लेख की पृष्ठ संख्या (आदि से अन्त तक)।

(९) प्लेट्स यदि हों तो उसका उल्लेख।

(१०) ग्रन्थ परक सन्दर्भों की व्याख्या।

(११) लेख का सार।

**उदाहरण**

सामान्य रूप से निम्नलिखित विवरण के अनुसार संलेख बनाये जाते हैं।

८६.

दीक्षित [सूर्य प्रकाश] (प्रोफे० हि० वि० लख० वि० वि०) राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और सुब्रह्मण्य भारती, सम्मेलन पत्रिका, भाग ७२, अंक ३-४ राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त विशेषांक संपा० प्रे० ना० शुक्ल, पृ० २८७-२९३।

मैथिलीशरण गुप्त और सुब्रह्मण्य भारती ये दोनों कवि विश्व प्रेम, राष्ट्र प्रेम एवं अपनी भाषा और संस्कृति से आबद्ध हैं। दोनों अपने-अपने आराध्य के प्रति तदाकार हैं। इनका तुलनात्मक विवेचन इस अध्याय में किया गया है।

SHASTRI (D. P.)

**Four days with Dr. Ranganathan *in* Library Science to day :**

**Ranganathan Festschrift, ed. by P. N. Kaula, New York Asia Pub. 1965 VI, pp. 759-763.**

**A reminiscence about Dr. Ranganathan's personal qualities and multiform personalities.**

7615 RAJAMOHAN R, RAHEEM K C A, JAYARAJAN A P (Indian Inst. Astrophys, Bangalore 560034) : Spectrophotometry of the inner corona. Proc Indian natn Sci Acad—Pt A 1981, 47 (1), 24.

An attempt is made for the evaluation of the temperature and density structure of the inner corona, from the total intensities of the continuum and the emission lines.

9221 BARLA, Chain Singh.

An Analysis of Co-operative Agricultural Credit Institutions in India : A Case Study of the Primary Credit Societies in Rajasthan. Michigan State, 1973 (Ph. D. in Agricultural Economics), 249 p. DAI 34, no. 9 (Mar. 2574) : 5429-30-A; UM 74-6004. Based on a survey of farm households in Jhalwar district.

5 DOLKE, ASHOK Metal : Measures for the selection of weavers in the textile industry. Journal of the Textile Association, 1975, 36 (3), 101-106.

The paper presents the results on standardization of psychological tests for the selection of weavers. It has been shown that some psychological tests are relevant to the weaver's job and these tests can be used, at the time of selection, for predicting the performance of weaver at the shopfloor. Norms for these tests have been developed. How to use these norms in the actual selection procedure has also been explained. (AA)

1 SINGH K. K. : Quality control and standardisation of raw materials for paint industry. Paintindia Annual, 1981, 31-36. Indicates the Indian standards for raw materials for paint industry and the important aspects of implementation of standards. (KSDR)

□ □

## अध्याय ५

# सूचना पुनर्प्राप्ति

## ( INFORMATION RETRIEVAL )

भावों का क्रमबद्ध रूप में सम्पूर्ण योग ही सूचना (Information) है। यह एक प्रकार से सामूहिक विचारों का योग है। वैज्ञानिक शोध इस प्रकार की सूचनाओं पर आधारित है। इसमें शोधकर्त्ताओं के लिए उनकी अभीष्ट विषयों की सामग्री निहित रहती है जो विषय से सम्बन्धित सम्पूर्ण सूचना देने में समर्थ होती है।

डाकुमेन्टेशन पद से सूचना पुनर्प्राप्ति का कोई संकेत या बोध नहीं होता था। इस कमी का अनुभव करते हुए अमेरिकन विद्वान् कालविन मूरे आदि विद्वानों ने इनमें 'Information' शब्द को सम्मिलित किया। यह आवश्यक था। ऐसा करने से डाकुमेन्टेशन का एक उद्देश्य या कार्य (Function) स्पष्ट हो गया। बाद में Information retrieval पद को सुधार कर उसके साथ Storage पद जोड़ दिया गया। तब डाकुमेन्टेशन की जो परिभाषा बनी वह उसके उद्देश्यों और कार्यों को स्पष्ट करने लगीं।

पुनर्प्राप्ति (Retrieval)—यह प्रलेखन का महत्त्वपूर्ण कार्य है कि एकत्र की गई, विषय-वस्तु को विभिन्न क्षेत्रों में, विभिन्न उद्देश्यों के लिए चाहने वालों को सूचनाएँ संप्रेषित की जाय। इसके लिए नये और पुराने सब विचारों को, तर्क-वितर्क को विभिन्न माध्यमों (अनुक्रमणिका, सारांशीकरण अनुवाद, छाया, पुनः प्रतिलिपिकरण आदि द्वारा विभिन्न क्षेत्रों में उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रसारित किया जाता है। इसके माध्यम से विद्वानों के विचार जो एकत्रित रहते हैं, उन्हें अन्य लोगों तक पहुँचाया जाता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि यह एक विधि है जिसके विभिन्न माध्यमों से सूचना, उपयोगकर्त्ताओं को प्रस्तुत की जाती है।

### परिभाषा

विद्वानों ने सूचना पुनर्प्राप्ति को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया हैं—

(१) "ज्ञान भण्डार से विषय के अन्तर्गत विशिष्टता के अनुसार सूचना की खोज और उसकी पुनर्प्राप्ति।"[1]

—Calvin Moores

---

1. Calvin Moores—"Searching and retrieval of information from storage according to specification by subject."

(२) "किसी प्रदत्त माँग से सम्बद्ध आँकड़ों का चयन करना और उनका पता बताने की एक प्रक्रिया।"[1] —Shera

(३) "आलेखात्मक सूचना का चयन करने के लिए स्वरूपों और युक्तियों के विनियोग के साथ अत्यावश्यक रूप से सम्बद्ध पुनर्प्राप्ति।"[2] —Vickery

सूचना संग्रहण और पुनर्प्राप्ति में निम्नलिखित प्रक्रिया अपनाना लाभकर होता है—

(१) सूचना-सामग्री को मँगाना।

(२) उनमें से प्रत्येक प्रलेख की विषय-वस्तु का विश्लेषण करना।

(३) विश्लेषण किये गये प्रलेख के विषय का तदनुसार अनुक्रमणिका पद (Index term) निर्धारित करना और अनुक्रमणिका का कार्ड बनाना।

(४) अनुक्रमणिका कार्ड पर संकेत संख्या (कोड नम्बर) डालना।

(५) अनुक्रमणिका कार्ड को यथास्थान फाइल करना तथा प्रलेख को भी तदनुसार व्यवस्थित करके रखना।

(६) उपयोगकर्त्ता द्वारा अनुक्रमणिका में अपने अभीष्ट विषय का सन्दर्भ देखना

(७) उपयोगकर्त्ता द्वारा खोज कर अभीष्ट तथ्य की प्राप्ति।

(८) प्रलेखन कर्मचारी द्वारा उपयोगकर्त्ता के लिए उसके अभीष्ट मूल मुद्रित प्रलेखन की प्रस्तुति।

अनुक्रमणिका, संक्षेपण, अनुवाद और पुनर्प्रतिलिपिकरण का परिचय क्रमशः अलग-अलग अध्याय में आगे दिया गया है।

□ □

---

1. Shera—"It is a process of locating and selecting data, the relevant to a given requirement."
2. Vickery — "Retrieval is essentially concerned with the structure and operation of devices to select documentary information......"

अध्याय ६

# अनुक्रमणिका और अनुक्रमणीयन

## ( INDEX AND INDEXING )

सूचना सामग्री इतनी अधिक और विविध रूप में उपलब्ध हो रही है कि उनको टेकनिकल प्रक्रियाओं से भी नियन्त्रण में रखने में कठिनाई हो रही है। उपयोगकर्त्ताओं को अपने टापिक पर ताजी नवीनतम सूचनाएँ चाहिए और वे होते हुए भी उपलब्ध न हो सकें तो उससे क्या लाभ ? अतः उपयोगकर्त्ताओं, विशिष्ट अध्येताओं और अनुसंधानकर्त्ताओं को तथा प्रलेखन केन्द्र, सूचना केन्द्रों के कर्मियों को मूल सूचना सामग्री तक पहुँचने तथा उन्हें उपलब्ध करने-कराने के लिए एक टेकनिकल विधि की खोज की गई उसको अनुक्रमणीयन (Indexing) कहा जाता है।

**लाभ**

अनुक्रमणीयन से उपयोगकर्त्ताओं के समय और श्रम की बचत होती है। अनुक्रमणिका को देख कर उपयोगकर्त्ता को अपने विषय पर उपलब्ध सूचना सामग्री को जानने में सुविधा होती है। अनुक्रमणिका में प्रत्येक विषय पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं तथा अन्य स्रोतों में बिखरी हुई सूचनाएँ (अध्ययन सामग्री) एक स्थान पर मिल जाती हैं। इससे उनका उपयोग सरलतापूर्वक होता है। इस प्रकार इससे अनेक लाभ होते हैं।

**उदाहरण**

| CORPUSCLES, BLOOD | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 |
| | 11 | | 43 | | | | | | |

अध्याय ७

# सूचना पुनर्प्राप्ति पद्धतियाँ

## ( INFORMATION RETRIEVAL SYSTEMS )

अनुक्रमणिका के निर्माता को अनुक्रमणिकाकार (indexer) तथा अनुक्रमणिका बनाने के कार्य को अनुक्रमणीयन (indexing) कहते हैं।

अनुक्रमणिका बनाने का कार्य मशीनों के आविष्कार होने के पहले से होता आ रहा है। पहले यह कार्य पुस्तकालयों में कर्मचारी हाथ से करते थे अर्थात् यह पूर्णतया मानवीय (Manual) कार्य था। अब प्रत्येक विषय पर उपलब्ध विपुल सूचना सामग्री को अधिकतम उपयोगकर्त्ताओं के लिए अल्प समय में सुलभ करने के उद्देश्य से इस कार्य में अनेक टेकनिकल विधियों का आविष्कार किया गया है और यांत्रिक विधियों का भी सहयोग लिया जाने लगा है।

इस दृष्टि से अनुक्रमणीयन पद्धतियाँ दो प्रकार की होती हैं :—

(१) परम्परागत पद्धतियाँ (Conventional systems)

(२) अपरम्परागत पद्धतियाँ (Non-Conventional systems)

**(१) परम्परागत पद्धतियाँ**—अनुक्रमणीयन की पुरानी पद्धतियाँ जिनमें मशीनों का प्रयोग नहीं होता था उनकी गणना परम्परागत पद्धतियों में की जाती है। कर्मचारी अपने हाथ से श्रम करके उन पद्धतियों में से किसी एक से अनुक्रमणीयन (indexing) करते थे। अतः वे मानवीय पद्धतियाँ (Manual systems) थीं। पुस्तकालयों में पुस्तकों की विषय के अनुसार हाथ से सूची उन्हीं विधियों से बनाई जाती थी। बाद में उनकी अनुक्रमणिका भी उन्हीं पद्धतियों के क्रम से बनने लगी, जैसे आनुर्वणिक विषय सूची (Alphabetical subject catalogue) के आधार पर विषयों की आणुर्वणिक अनुक्रमणी।

इस प्रकार परम्परागत पद्धतियों में निम्नलिखित पाँच पद्धतियाँ प्रसिद्ध हैं :—

(१) आनुर्वणिक विषय अनुक्रमणीयन

(२) आनुर्वणिक विशिष्ट विषय अनुक्रमणीयन

(३) आनुर्वणिक वर्गीकृत विषय अनुक्रमणीयन

(४) वर्गीकृत अनुक्रमणीयन

(५) शृङ्खला अनुक्रमणीयन।

**(२) अपरम्परागत पद्धतियाँ**—उक्त परम्परागत पद्धतियों में से किसी पद्धति से अनुक्रमणी एक तो हाथ से तैयार करने में अधिक समय और श्रम लेती थी और तैयार हो जाने पर भी अधिक से अधिक उपयोगकर्त्ता उसका लाभ नहीं उठा पाते थे। इस कमी को दूर करके अनेक नई पद्धतियों की खोज की गई। कम्प्यूटर आदि मशीनों को तथा अन्य विकसित टेकनिकल विधियों को भी अपनाया गया। वे पद्धतियाँ अपरम्परागत पद्धतियाँ कहलाती हैं। ये निम्नलिखित हैं—

(१) खण्ड-कार्ड अनुक्रमणीयन
(२) कोरनुचा कार्ड अनुक्रमणीयन
(३) जैटोकोडिंग पद्धति
(४) पीक-ए-बू पद्धति
(५) क्विक पद्धति
(६) क्वोक पद्धति
(७) क्वैक पद्धति
(८) कीविक पद्धति
(९) वाडेक्स पद्धति
(१०) कीटल्का पद्धति
(११) चक्रात्मक अनुक्रमणीयन पद्धति
(१२) उद्धरण अनुक्रमणीयन पद्धति
(१३) एक पदीय अनुक्रमणीयन पद्धति ।

इन सभी पद्धतियों की दिये गये वर्गीकरण क्रम को देखने से अधिक जानकारी हो सकेगी।

इन पद्धतियों में से KWIC,KWWIC,KWOC, KWAC आदि कम्प्यूटर पर आधारित (Based) हैं। इनमें कम्प्यूटर द्वारा ही सम्पूर्ण कार्य हो जाता है किन्तु PRECIS, POPSI आदि ऐसी विधियाँ हैं जिनमें कम्प्यूटर का उपयोग सहयोग के रूप में लिया जाता है।

इन पद्धतियों में से एक पदीय अनुक्रमणीयन पद्धति (Uniterm indexing system) मैनुअल विधि और कम्प्यूटराइज्ड विधि इन दोनों विधियों में अपनाई जा सकती है।

**लेखन प्रक्रिया**—इस विधि में कार्ड पर हाथ से सूचना स्रोत या प्रलेख में वर्णित विषय या विषयों का पद (Term) मानक पद में परिवर्तित शीर्षक (Heading) के रूप में यथास्थान लिखा जाता है। विषय का यह मानक पद (Standard term) किसी अनुभूत और प्रामाणिक list of subject heading से लिया जाता है। कार्ड के शेष भाग ० से ९ तक १० भागों में बँटे रहते हैं। इसके बाद टाइटिल से यदि कई पद शीर्षक बनते हों तो उनको अलग कार्ड पर यथा-स्थान लिखा जाता है। उसके बाद प्रत्येक कार्ड पर सम्बन्धित खाने में प्रलेख का सूचक अंक लिखकर कार्डों को विषय शीर्षक के वर्णानुक्रम (Alphabetical order) में लगाकर व्यवस्थित कर दिया जाता है।

सरल होने, अनुक्रमणिका बनाने में समय और श्रम की बचत होने तथा उपयोगकर्त्ताओं द्वारा अभीष्ट विषय को आसानी से खोज लेने के कारण यह पद्धति लोकप्रिय हुई है।

**उदाहरण**

| BLOOD | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 |
| | 11 | | 23<br>43 | | | | | | |

| PRESSURE, BLOOD | | | | | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 0 | 1 | 2 | 3 | 4 | 5 | 6 | 7 | 8 | 9 |
| | 11 | 32 | 23 | | | | | 28 | |

अध्याय ८

# सार और सारणीयन

## ( ABSTRACTING )

**सार (Abstracting)**

प्रलेखन के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण विचारों की लघुलेख श्रृङ्खला है जिसमें किसी कहानी, लेख का सारगर्भित विवेचन कुछ ही शब्दों द्वारा किया जाता है जो कि अपनी महत्त्वपूर्ण विचारों की अभिव्यक्ति का ठोस मापदण्ड है। इस विषय पर विद्वानों की परिभाषा निम्नवत् है—

(१) रंगनाथन (Ranganathan) "सामान्यतया सामयिक में प्रकाशित किसी लेख या कृति के अत्यावश्यक प्रतिपाद्य विषय की संस्थिति के साथ व्यवसायात्मक दृष्टि से किया गया सारांश।"[1]

(२) केन्ट (Kent)—"किसी लेख या प्रकाशन का सारांश ही उसका संक्षेपण (Abstract) है।"[2]

(३) T. S. O.—"किसी लेख के या किसी कृति पर स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित अन्य सामग्री की विषय-वस्तु को सार रूप में बताने की विधि 'संक्षेपण' (Abstract) है जिसमें वाङ्मयात्मक सन्दर्भ सम्मिलित हो।"[3]

(४) यूनेस्को—"पर्याप्त वाङ्मयात्मक सन्दर्भ सहित किसी प्रकाशन या लेख का विश्लेषण या सारांश जिसके द्वारा लेख का पता लगाया जा सके, वह संक्षेपण है।"

---

1. Ranganathan—"A summary, usually be a professionai other than author, of the essential contents of a work usually an article in a periodical, together with the specification of its focus."
2. Allen & Kent—"An abstract is a summary of a publication or an article."
3. T. S. O.—"It is a brief indication of the contents of an article or other work issued independently of it and includes the bibliographical references."
4. UNESCO—"Summary or analysis of a publication or article accompanied by adequate bibliographical description to enable article to be traced."

इस तरह इसकी दो बातें स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती हैं—

(१) सूचना

(२) प्राप्ति स्थान—विस्तृत बिब्लियोग्राफिकल सूचना, लोकेशन सहित दी जाती है।

इसके अतिरिक्त केन्ट (Kent) ने निम्न विशेषतायें भी बतलाई हैं—

(१) यह विषय का संकेत करता है।

(२) यह अलग से प्रकाशित होता है, यदि लेख के साथ है तो वह सार नहीं कहलाता है।

(३) इसमें बिब्लियोग्राफिकल सूचना भी दी जाती है।

**उद्देश्य एवं कार्य (Aim and Function)**

विद्वानों द्वारा सार के निम्न उद्देश्य बताये गये हैं—

(१) लेख की वास्तविक स्थिति (Location) की जानकारी

(२) विषय-वस्तु का ज्ञान कराना

(३) समय की बचत

(४) लेखक की विचारधारा (Thoughts) बताना।

सार को आवश्यकतानुरूप सारांश से सम्बन्धित मूल लेख का अध्ययन अभीष्ट सूचना पाने में तथा उसके चयन करने में सहायक होना चाहिये। इसका यही मुख्य कार्य है कि यह पाठक को निर्णय लेने में मदद करे कि मूल लेख पढ़ा जाय अथवा नहीं। ऐसे सार को 'निर्देशक सार' कहते हैं।

इसका अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि किसी भी विषय से सम्बन्धित समस्त साहित्य की पूर्ण सर्वेक्षणात्मक सूचना उपलब्ध कराना, जिससे अनुसन्धानकर्त्ता उनमें से अपनी आवश्यक सामग्री का चयन कर सके।

उत्तम Abstracting Journal की उपयोगिता उसके विस्तृत होने और शीघ्र प्रकाशन पर निर्भर होती है। आजकल एक हजार से अधिक Abstracting Journal विभिन्न विषयों के विभिन्न एजेंसियों द्वारा प्रकाशित हो रहे हैं। उनमें से निम्नलिखित मुख्य हैं—

(1) Biological Abstracts, 1927.

(2) Chemical Abstracts, 1907.

(3) Indian Science Abstracts, 1965.

(4) Mathematical Reviews, 1940.

(5) Nuclear Science Abstracts, 1948.

(6) Science Abstracts.

(7) Physics Abstracts, 1898.

(8) Psychological Abstracts, Washington, American Psychological Association, 1927.

(9) Library and information Science Abstracts, London, Library Association, 1950—to date.
(10) Historical Abstracts, 1965—to date.
(11) Documentation Abstracts, Washington, Documentation Abstracts, 1966—to date.
(12) Geophysical Abstracts, Washington, Geological Survey, 1929—Quarterly.
(13) Educational Abstracts, Paris, UNESCO, 1949—Quarterly.
(14) Sociological Abstracts, Michigan, Edwards Brothers, 1953—Quarterly.
(15) Fuel Abstracts, London, H. M. Stationary office—Monthly.
(16) Indian Library Science Abstracts, Calcutta, Indian Association of Special Libraries and Information Centre, 1967—Quarterly.

**आवश्यकता एवं महत्व**—ज्ञान के विकास के क्षेत्र में विषयगत क्रांति दिखाई दे रही है। शोधकर्त्तागण अपना समय अधिक से अधिक बचाना चाहते हैं। अतः उन्हें ऐसी विषय-सामग्री चाहिये जो उन्हें कुछ शब्दों के द्वारा विचार प्रगट कर उनके उद्देश्यों की पूर्ति में सहयोग दें। इसीलिए सार की आवश्यकता है। वैज्ञानिकों को इससे बहुत सहयोग मिलता है क्योंकि उनके पास शोधकार्य बहुत ही विस्तृत पैमाने पर होता है। वे बड़े-बड़े शोधग्रन्थ, सामयिक, समाचार-पत्र आदि विस्तृत रूप से अध्ययन नहीं कर सकते और न ही इतने विस्तृत क्षेत्र को संक्षिप्त कर सकते हैं क्योंकि उनके पास समय कम होता है। उनके आर्थिक साधन भी इतने सीमित होते हैं कि वे इन सब को क्रय भी नहीं कर सकते। अतः यह सार उन्हें अपने महत्त्वपूर्ण विचार प्रदान कर उनकी बहुत सहायता करता है। ये तैयार सारांश भावी शोधकर्त्ताओं को भी माँग पर उपलब्ध हो जाते हैं जिससे नया शोधकार्य शीघ्रता से आगे बढ़ता है।

इसमें कई पृष्ठों में बिखरे विचार एक ही स्थान पर पढ़ने को मिल जाते हैं। कई पन्ने पलटने एवं समय व्यर्थ करने तथा श्रम नष्ट करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

इसके महत्त्व को निम्न रूप में सरलता से समझा जा सकता है—

(१) भाषा के अनुवाद में सार।
(२) सामग्री-चयन में सहायता।
(३) अभीष्ट विषय-सामग्री प्राप्त करने में सहायता।

(४) उपयोगकर्त्ता सारांश की उपयोगिता से परिचित हो जाते हैं।

(५) सारांशों को सम्बन्धित रूप में व्यवस्थित करने में सरलता होती है।

(६) कभी-कभी केवल सारांश से ही कार्य चल जाता है।

(७) इससे विशिष्ट अभिगम (Approach) की सन्तुष्टि होती है।

इसका महत्त्व निम्न सांख्यकी से भी लगाया जा सकता है—

'इण्डेक्स मेडिकल' में १९६१ में एक लाख बीस हजार आर्टिकल्स की लिस्ट बनाई गई थीं जो १९७० में तीन लाख, १९७५ में चार लाख तक पहुँच गई थी। इस तरह निरन्तर वृद्धि होती रहती है।

इसी प्रकार Chemical Abstracts में १९६० में १,९७३ प्रविष्टियाँ (इन्ट्रीज) थीं, जो १९६१ में वृद्धि हो कर लगभग एक लाख पचास हजार तक हो गयीं, १९६६ ई० में सवा दो लाख, १९७० में तीन लाख दस हजार, १९७४-७५ में चार लाख तक बढ़ गयीं। इसमें निरन्तर वृद्धि हो रही है, जो इसके महत्त्व को स्पष्ट करती है।

**सार के गुण**

सार में मुख्य रूप में निम्नलिखित गुण होने चाहिये—

(१) **संक्षिप्त हो**—यह जितना संक्षिप्त हो सके, उतना संक्षिप्त रूप में दिया जाना चाहिये, जिससे उपयोगकर्त्ताओं का समय बचे।

(२) **पूर्ण हो**—जितनी भी जानकारी आवश्यक हो वह पूर्ण हो, जिससे उपयोगकर्त्ताओं को अभीष्ट सन्दर्भ हेतु अन्यत्र न खोजना पड़े।

(३) **पूर्ण भाव**—सार में आर्टिकल के पूर्णभाव आने चाहिए, जिससे उपयोगकर्त्ता निर्णय ले सके कि मूल लेख को पढ़ा जाय अथवा नहीं।

(४) **स्पष्टता**—सार इतना स्पष्ट होना चाहिए कि उपयोगकर्त्ता सरलता से उसे समझ सकें।

(५) **शब्दों का उपयोग**—सार में वे ही शब्द उपयोग किये जाने चाहिये जो कि विशेषज्ञों में प्रचलित हों, जिससे उसके अर्थ हेतु अन्यत्र सन्दर्भ न देखना पड़े।

(६) **शीघ्रता**—सार लेख के प्रकाशित होने के बाद शीघ्र ही प्रकाशित होना चाहिये अन्यथा इसका उपयोग नहीं हो पाता या कम होता है। इस सन्दर्भ में यह मत है कि लेख के प्रकाशन के एक माह से अधिक समय नहीं लगना चाहिये। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि रंगनाथन जी ने प्रकाशन से पूर्व (प्री पब्लिकेशन) की कल्पना की है। इनके अनुसार लेख के प्रकाशन से पूर्व ही सारांश बन जाना चाहिये।

(७) **आँकड़े हों**—संक्षेप में यथास्थान आंकड़े भी प्रस्तुत करना चाहिये।

(८) **नवीनतम विचार हो।**

(९) **लेख की सीमा**—ऐसा माना जाता है कि १/१० से अधिक लम्बाई नहीं होनी चाहिये। यह भी लोगों का विचार है कि ५ से १५ पंक्ति या अधिकतम

२५ पंक्तियों तक सूचनात्मक सारांश (Informative Abstract) में और अन्य में १ से ३ पंक्तियों का सारांश होना चाहिये।

**(१०) आलोचना रहित**—सार में आलोचना को स्थान नहीं देना चाहिये।

**क्षेत्र (Scope)**—सार का क्षेत्र उन नवीन विचारों को जो आज के युग में वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं राजनीतिज्ञों द्वारा प्रगट किये जा रहे हैं, उन सभी को सारगर्भित कर के उनको सार के माध्यम से क्रमबद्ध शृङ्खलाओं में बांध देना है। इसके क्षेत्र में स्थानीय, प्रान्तीय, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय सभी का समावेश होता है। आज हम देख रहे हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय विचारों के क्षेत्र में इतने विचारों का प्रादुर्भाव हो रहा है, जिसे समझना साधारण पाठक के ज्ञान के बाहर है। जब पाठक इन सब को पढ़ता एवं समझता है तो उसे नवीन विचारों की जानकारी प्राप्त होती है। कुछ विशेष विषयवस्तु जो कि तकनीकी एवं यांत्रिकी या सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों को अपने में समाहित किये हैं, उनका कुछ सार पाठकों के समक्ष रखना है। इस प्रकार इसका क्षेत्र विस्तृत होते हुए भी अत्यन्त सीमित एवं संक्षिप्त है। इसके क्षेत्र में निम्नलिखित विधियां सहयोग देती हैं—

(१) नकारात्मक उपसूत्र (Canon Negative)

(२) स्वीकारात्मक उपसूत्र (Canon Positive)

**(१) नकारात्मक उपसूत्र (Canon Negative)**—सार या सारांश करते समय यह ध्यान रखना आवश्यक होता है कि किस विषय या वस्तु का समावेश करना है और किसे त्यागना है। जो सन्दर्भ या शब्द एक बार आ चुका है, उसकी पुनरावृत्ति न हो। इसके साथ निम्न बातें भी ध्यातव्य हैं—

(अ) जो शब्द विषय शीर्षक (Subject Heading) में आ गया है, उसका यदि पुनः प्रयोग हुआ तो सार के क्षेत्र में 'समय बचाओ' का सिद्धान्त निरर्थक सिद्ध होगा।

(आ) वे शब्द जो आख्या में आये हैं, उन्हें संक्षिप्त न करना चाहिये।

(इ) जो शब्द लेखक के विषय में कहे गये हैं, उन्हें संक्षिप्त न करना चाहिये।

(ई) जो भी लिखा जाय सरल भाषा-शैली में हो, जिसे पाठक समझ सकें।

(उ) वाक्य संक्षिप्त पर भावपूर्ण होना चाहिये।

**(२) स्वीकारात्मक उपसूत्र (Canon Positive)**—इस विधि में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना चाहिये—

(अ) लेख का क्षेत्र इतना हो कि जो विषयवस्तु इसमें आती हो, उसकी विशेषता नष्ट न हो।

(आ) लेख में उस नवीन बात को सन्दर्भित करना चाहिये जो अन्यत्र नहीं हैं। इसके साथ ही नवीन तकनीकी विधि को भी बताना चाहिये।

(इ) सार में यदि नये-नये आंकड़े हों तो उन्हें भी उचित स्थान देना चाहिये।

**सार के प्रकार** (Types of Abstracting)—सार को मुख्यतया निम्न रूपों में आबंटित किया जा सकता है—

(१) भौगोलिक (Area) दृष्टि से

(२) विषयानुसार (Subjectwise)

(३) सूचना (Information) की दृष्टि से

**(१) भौगोलिक दृष्टि से**—इसमें सार को कई वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

**(अ) सार्वभौमिक**—इसमें विश्व के सम्पूर्ण भाषाओं, विषयों एवं समयों का सार कार्य आता है।

**(आ) अन्तर्राष्ट्रीय**—जब एक से अधिक और सम्पूर्ण अंक से एक कम राष्ट्र के प्रकाशित साहित्य का सार किया जाता है तो अन्तर्राष्ट्रीय सार कहलाता है।

**(इ) राष्ट्रीय**—यदि एक देश के साहित्य को इस क्षेत्र में समाहित किया जाय तो उसे राष्ट्रीय सार कहा जाता है। इसका प्रमुख उदाहरण—Indian Science Abstracting है।

इसके ही क्षेत्र को क्रमशः सीमित करके प्रान्तीय एवं स्थानीय सार का निर्माण कार्य किया जाता है।

**(२) विषयानुसार**—विषय की दृष्टि से सार को निम्न रूपों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) सार्वभौमिक (Universal)

(आ) विशिष्ट (Special)

(इ) विषयांश (Specific)

सार्वभौमिक (Universal) में किसी विषय का विश्व स्तर से सार कार्य इसके अन्तर्गत आता है।

विशिष्ट (Special) में एक (M. C.) विषय पर सार होता है, जबकि स्पेसिफिक में एक (M. C.) विषय के एक विषयांश (Facet) पर सार होता है। उदाहरणार्थ—पुस्तकालय विज्ञान में विशिष्ट (Special) सार है परन्तु केवल वर्गीकरण, सूचीकरण आदि पर सार को विषयांश सार कहा जाता है।

## सार के प्रकार

विस्तार में सूचना की मात्रा, सूचना के स्वरूप और शैली के आधार पर सार निम्नलिखित ८ प्रकार के होते हैं—

**(१) सूचना की मात्रा के आधार पर**

(i) संकेतात्मक (Indicative) सार

(ii) सूचनात्मक (Informativc) सार

(२) सूचना के स्वरूप के आधार पर

(i) आँकड़ानुमा (Data type) सार

(ii) माडुलर विषयवस्तु विश्लेषण सार

(iii) पाठक अभिमुख (Reader oriented) सार

(iv) पद सूची (Term list) सार

(३) शैली के आधार पर

(i) फार्मेटेड (Formated) सार

(ii) तारनुमा (Telegraphic) सार

(iii) योजनाबद्ध (Schematic) सार।

इनमें से संकेतात्मक, सूचनात्मक और सारनुमा संक्षिप्त सार का परिचय इस प्रकार है—

(३) सूचना की दृष्टि से—इस दृष्टि के निम्न भेद किये जा सकते हैं—

(अ) संकेतात्मक (Indicative)

(आ) सूचनात्मक (Informative)

(इ) संक्षिप्त सार (Telegraphic)

(अ) सांकेतिक—इस सार में सारांश पढ़ने के बाद इस बात का निर्णय पाठक नहीं कर पाता कि मूल लेख पढ़ा जाय अथवा नहीं क्योंकि यह मुख्य विचारों को प्रस्तुत नहीं करता, साथ ही सारांश लघु एवं संक्षिप्त होता है। इसमें केवल इस बात के संकेत भर प्राप्त होते हैं कि अमुक लेख किस व्यक्ति का है और सामयिकी में किस स्थान पर प्राप्त होगा।

(आ) सूचनात्मक—सूचनात्मक सार में अधिकतर मुख्य विचार ही एकत्रित किये जाते हैं और वह वास्तविक लेखों में उन सम्पूर्ण महत्वपूर्ण जानकारियों को प्रदान करता है जो विषय-वस्तु से सम्बन्धित होती हैं। इसके पढ़ने के बाद अनुसन्धानकर्त्ता को इस बात की आवश्यकता नहीं होती है कि वास्तव में लेख को पुनः पढ़े क्योंकि इस सार में मुख्य विचार पर्याप्त रूप से रहते हैं। दूसरी बात यह है कि अनुसन्धानकर्त्ता स्वयं भी अपनी विषयवस्तु से सम्बन्धित जानकारी रखता है। अतः उसे केवल उतनी ही जानकारी से पूर्ण ज्ञान हो जाता है कि लेख में क्या दिया हुआ है। यह विस्तृत परन्तु उपयोगी होती है।

(इ) संक्षिप्त सार—जिस तरह तार (टेलीग्राम) में संक्षिप्त संहितायें उपयोग में लाते हैं, ऐसी ही इसमें भी कम शब्दों में तथ्य की बात कह सकते हैं। इसमें तार की भाँति बहुत ही आवश्यक शब्दों को ही संक्षेप में स्थान देते हैं। दूसरे शब्दों में कम से कम शब्दों में अधिकतम महत्व की बात बतायी जाती है परन्तु यह अपूर्ण होता है क्योंकि इसके पढ़ने के उपरान्त भी उपयोगकर्त्ता लेख को पढ़ता है। वह इस प्रकार के सार से लेख के सम्बन्ध में निर्णय लेने में असमर्थ रहता है।

**सार के अंग (Parts of Abstracting)**

एक पूर्ण एवं उपयोगी संक्षेपण में निम्न सूचनायें दी जाती हैं :—

(१) विषय (वर्गीकरण संख्या)

(२) लेख के लेखक का नाम, पता सहित

(३) लेख की आख्या, उपआख्या (Title and title of host documents)

(४) सामयिकी का नाम, खण्ड, भाग तथा क्रमांक

(५) वर्ष

(६) पृष्ठ

(७) लेख का सारांश—उद्देश्य, समस्या तथा निराकरण आदि सहित

(८) मूल की भाषा, क्योंकि इसके अनुवाद आदि की आवश्यकता पड़ सकती है।

सामान्यतः सार आख्या से प्रारम्भ होता है जिसे मोटे टाइप (Bold Type) में दिया जाता है। इसके साथ ही लेखक का नाम तथा अन्य वाङ्मयात्मक सूचना तथा मूल प्रलेख का नाम, पृष्ठ संख्या आदि दिये जाते हैं।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि Astiworth ने आख्या के उपयोग के सम्बन्ध में चेतावनी दी है कि कई बार लेख अपूर्ण, अस्पष्ट आदि होने पर कुछ अतिरिक्त शब्द सार या संक्षेपणकार द्वारा सार करते समय जोड़ दिये जाते हैं। इसके अनुसार अपूर्ण आख्या को मूल रूप से यथातथ्य लिखना चाहिये तथा अति आवश्यक होने पर ही कुछ शब्दों को जोड़ा जाना चाहिये। साथ ही जुड़े हुये शब्दों को कोष्ठक में रखना चाहिये।

विदेशी लेख की भाषान्तर आख्या भी इसी प्रकार कोष्ठक में दी जानी चाहिये।

इस प्रकार कई बार आख्या को संक्षिप्त किया जाता है। आवश्यकता पड़ने पर World List of Scientific Periodicals या ऐसे ही मानक सार को उत्तम सार के लिए आधार स्वरूप मान लेना चाहिये, जिससे सूचना पुनःप्रतिस्थापन (I. R.) के समय कोई त्रुटि या परेशानी न हो।

सामान्यतया लेखक के उपनाम को पहले लिखना चाहिये। संयुक्त लेखक होने पर सभी लेखकों का पूरा विवरण देना चाहिये तथा लेखक अनुक्रमणिका में सभी लेखकों का उल्लेख करना चाहिये।

अन्तिम भाग विषयवस्तु (Contents) में प्रायः सूचनात्मक (Informative) सार ही दिया जाना चाहिये, जिससे मूल लेख का परिचय मिल सके। कई बार सार में सूचना कम होती है। इसके लिए मूल लेख को पढ़ने की आवश्यकता पड़ती है, जिससे समय, श्रम आदि का अपव्यय होता है। संक्षिप्तता हेतु विशिष्ट सार

किये जा सकते हैं किन्तु ये असामान्य नहीं होने चाहिये। तथापि इन सबके लिए कोई निश्चित सिद्धान्त या रूपरेखा नहीं बनायी जा सकती।

**कार्य प्रणाली (Working)** – इस सम्बन्ध में निम्न प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है :—

(१) प्रलेखों का चयन—Selection of documents।
(२) वर्गीकरण।
(३) सूचीकरण।
(४) सार।
(५) सार पर वर्गाङ्क देना।
(६) वर्गीकरण की सहायता से अनुक्रमणिका (Index) तैयार करना तथा सार के वर्गाङ्क (Class No.) को अनुक्रमणिका पर अंकित करना।
(७) प्रलेखन सूची (Documentation list) प्रकाशित करना।
(८) उपयोगकर्त्ता को प्रस्तुत करना।
(९) प्रलेख फाइल—भविष्य में उपयोगार्थ प्रलेखन सूची को इसी फाइल में तार्किक ढंग से व्यवस्थित करना।

**सार कौन करे ?**

निम्नलिखित लोग सार कार्य के सन्दर्भ में नामांकित किये जाते हैं :—

(१) लेखक (लेख का)
(२) पुस्तकालय विशेषज्ञ
(३) विषय विशेषज्ञ
(४) प्रलेखनाचार्य
(५) मशीन द्वारा

**(१) लेखक**—जहाँ तक लेखक का प्रश्न है निःसन्देह वह अपनी कृति को ठीक तरह से समझता है तथा उसका संक्षिप्तीकरण भी ठीक तरह से कर सकता है परन्तु निम्न बातें उसकी योग्यता पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं :—

(अ) वह विषय को केवल अपने दृष्टिकोण से (एकपक्षीय दृष्टि से) देखता है, इसलिए उसकी निष्पक्षता संदिग्ध रहती है।

(आ) सार एक ऐसा तकनीकी कार्य है, जिसमें विशिष्टता आवश्यक है। लेखक अपनी कृति के सम्बन्ध में उसका उपयोग करने में असमर्थ होता है।

**(२) पुस्तकालय विशेषज्ञ**—ये सार-कार्य में प्रशिक्षित एवं दक्ष होते हैं। ये इसकी तकनीक एवं ज्ञान से परिचित होते हैं, पर इतना होने के साथ ही रंगनाथन के अनुसार विशिष्ट विषय की सूक्ष्मतम जानकारी उन्हें नहीं होती है और यही कारण है कि सूक्ष्म एवं आधिकारिक एवं उपयोगी सार संदिग्ध है।

**(३) विषय विशेषज्ञ**—विषय विशेषज्ञ के साथ भी मूल लेखक वाली बात लागू होती है अर्थात् वे सार का तकनीकी तथा सूक्ष्म जानकारी आदि से अपरिचित

होते हैं। फलस्वरूप यह कार्य संदेहास्पद होना स्वाभाविक है। इस कार्य के लिए ऐसे व्यक्ति को रखना चाहिये, जो अधिकांश भाषायें जानता हो तथा जो लेख को पढ़ कर अपनी तकनीकी एवं तार्किक शक्ति से सार कर सके। हर विषय में विषय-विशेषज्ञ रखना सम्भव नहीं होता क्योंकि आर्थिक दृष्टि से यह बहुत व्ययकारक है।

(४) प्रलेखनाचार्य—इनमें विषय के सूक्ष्मतम ज्ञान का अभाव होता है।

(५) मशीन—कुछ मशीनें सार के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। जो कुछ ही संकेतों द्वारा बड़े से बड़े लेख को सरलता से सार कर देती हैं। यथा—कम्प्यूटर मशीन, टेलीप्रिंटर आदि। इससे निम्न लाभ और हानि है :—

(अ) लाभ

(i) कार्यों में गति

(ii) यांत्रिकता

(iii) मितव्ययता (समय, श्रम, अर्थ आदि की)

(iv) उत्पादन क्षमता अधिक

(आ) हानि

(i) गुणों की कमी

(ii) उच्च सेवा कठिन

(iii) बेरोजगारी

(iv) कृत्रिमता

(v) कार्यों में इच्छानुसार लचीलेपन का अभाव।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि विशिष्ट विषयों के सार के लिए पुस्तकालय कर्मचारियों को (यदि आवश्यक हो तो विशेषज्ञों की सहायता से) यह कार्य सौंपना चाहिये। जहाँ यह कार्य बड़े स्तर पर किया जाता है, वहाँ पर यह कार्य कम्प्यूटर या टेलीप्रिंटर की सहायता से भी किया जा सकता है।

□ □

## अध्याय ६

# अनुवाद सेवा

## ( TRANSLATION SERVICE )

**अनुवाद (Translation)**

एक भाषा की लिपि को दूसरे भाषा की लिपि में भाव को पूर्ण सुरक्षित रखते हुये परिवर्तित करना ही अनुवाद है।

**आवश्यकता**

(१) लेख का विभिन्न भाषाओं में प्रकाशित होना।

(२) वैज्ञानिकों एवं शोधकर्त्ताओं को इन विभिन्न भाषाओं का ज्ञान न होना।

(३) ऐसी भाषा से जिन्हें शोधकर्त्ता नहीं जानते, उन्हें ये लेख ऐसी भाषा में उपलब्ध कराना, जिस भाषा में वे सरलता से लिख पढ़ सकते हैं।

(४) आज अधिकांश लगभग २/३ प्रतिशत 'वैज्ञानिक सामयिक' अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित होते हैं, जबकि २/३ प्रतिशत लोग अंग्रेजी नहीं जानते।

(५) पुस्तकालय विज्ञान के प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ सूत्र की संतुष्टि हेतु अनुवाद सेवा अनिवार्य है।

(६) इंजीनियरिंग का २/३ (विश्व का) साहित्य अंग्रेजी में प्रकाशित होता है और विश्व के २/३ इंजीनियर को अंग्रेजी भाषा का ज्ञान रहता है और शेष इंजीनियर बिना अनुवाद सेवा के अंग्रेजी के साहित्य से लाभ नहीं उठा सकते।

(७) राष्ट्रीय प्रगति में सहायक।

**अनुवाद विभाग का संगठन (Organization of Translation Department)**

अनुवाद सेवा की आवश्यकता को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक पुस्तकालय को यह सेवा प्रदान करने हेतु अनुवाद विभाग का गठन करना चाहिये परन्तु व्यवहार में यह इतना खर्चीला कार्य है कि प्रत्येक पुस्तकालय अनुवाद विभाग की स्थापना का कार्य नहीं कर सकता है।

इसके लिए यह कार्य राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर योजना तैयार करके संगठित किया जाना चाहिये। यू० एस० ए० में इस प्रकार के संगठन हैं। वहाँ एक बैंक है, जहाँ से अनुवाद अनुक्रमणिका बड़े स्तर पर प्रयोगार्थ प्रकाशित होती है।

सोवियत रूस में 'विनीती' नाम की संस्था अनुवाद कार्य के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण सेवा प्रदान करती है। इस संस्था में हजारों अनुवादक अंशकालिक (पार्ट टाइम) कार्य करते हैं। यदि अनुवाद कार्य स्थानीय क्षेत्र पर किसी व्यक्ति विशेष हेतु किया

जाय तो इस लेख (सामयिक) की कीमत से दस गुनी कीमत अनूदित लेख की होगी। 'विक्रे' महोदय द्वारा सुझाव दिया गया है कि अगर National Translation Bureau की स्थापना की जाय तो ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि इससे वर्तमान अनूदित प्रति की कीमत में पचास प्रतिशत की कमी हो जायेगी। यूरोप में Furetom and Brussels द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अनुवाद सेवा बहुत सहायक सिद्ध हो रही है। इसके समानांतर यू० एस० ए० में एन० एल० एल० द्वारा मासिक अनुवाद बुलेटिन प्रकाशित होती है। एस० एल० ए० द्वारा ट्रान्सलेशन रजिस्टर सन् १९६७ ई० से प्रकाशित होता आ रहा है। भारतीय संस्था इन्सडॉक (INSDOC) में आई० एस० टी० ए० के नाम से एक विभाग में अनुवाद सेवा दी जाती है।

इसी तरह आज यह मान्यता है कि अनुवाद कार्य का संगठन पुस्तकालय में न होकर पृथक् केन्द्र की स्थापना करके होना चाहिये। यह दो रूप में विशेष रूप से संगठित हो सकती है :—

(अ) राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर।

(आ) स्थानीय स्तर।

स्थानीय स्तर पर विशेष रूप से निम्न समस्यायें आती हैं :—

(अ) साहित्य नहीं मिलता।

(आ) अनुवादक उपलब्ध नहीं होते।

(इ) अनुवाद की माँग कम होती है।

(ई) विशेषज्ञ नियुक्ति हेतु बजट की समस्या आती है।

**अनुवाद प्रक्रिया (Translation Procedure)**

इसके अन्तर्गत निम्न प्रक्रियायें करनी पड़ती हैं :—

**(अ) पंजीयन (Registration)**—अनुवाद सेवा प्राप्त करने के लिए प्रलेखन अनुभाग (Documentation Section) में रजिस्ट्रेशन कार्य किया जाता है। जब पाठक या उपयोगकर्त्ता द्वारा अनुवाद की माँग की जाती है उस समय अनुवाद अनुभाग में प्रायः लेख उपलब्ध नहीं रहता, तब उस विभाग को लेख की मूल प्रति या पुनर्प्रतिलिपि कृत प्रति उपलब्ध साधनों से प्राप्त करनी पड़ती है तथा वह प्रलेखन सेवा विभाग (Documentation Service Section) से लेख प्रोसेस स्लिप के साथ अनुवाद विभाग में भेज दिया जाता है। यह कार्य अन्त तक चलता रहता है। जब तक उसकी प्रक्रिया पूरी न हो जाय तथा अनुवाद का कार्य पूरा हो जाने पर लेख सेवा विभाग में वापस भेज दिया जाता है।

**(आ) फोटोकापी के कार्य के चरण (Stages of Photo Coping Work)**—प्रलेखन सेवा विभाग से सामग्री प्राप्त करने पर (जो माइक्रोफिल्म, सामयिक, पेपर, फोटो कापी आदि के रूप में हो सकती है) अगर माइक्रोफिल्म प्राप्त होती है तो उसकी पेपर फोटो कापी तैयार करनी चाहिए तथा पेपर फोटो कापी से रिप्रोग्राफी

सिस्टम के द्वारा माइक्रोफिल्म तैयार करके भविष्य में आने वाली माँग हेतु संग्रहीत करते हैं। इससे भविष्य में किसी एक पाठक की माँग पर दूसरे की सहायता से अनुवाद सेवा प्रदान की जा सकती है। सामयिक के सम्बन्ध में फोटोकापी तथा माइक्रोफिल्म दोनों तैयार की जाती है तथा माइक्रोफिल्म को रिकार्ड के रूप में रखा जाता है। फोटोकापी ट्रांसलेशन पेनल को अनुवाद करने हेतु भेज दी जाती है तथा वास्तविक सामयिक को वापस भेज दिया जाता है, अगर उधार लिया है तो, अन्यथा यथोचित कार्यवाही करते हैं।

(इ) कार्य का विभाजन (Distribution of Work)

यह विभाजन विभाग के अध्यक्ष द्वारा किया जाना चाहिए। अनुवाद कार्य पेनल के द्वारा कई चरणों में पूरा किया जाना चाहिए। अनुवाद के उपरान्त उसकी सम्पूर्ण प्रति ट्रांसलेशन बेण्ड के मुख्याधिकारी को भेज दी जाती है।

(ई) अनुवाद विभाग में अनुवाद का कार्य विषय तथा भाषा की रुचि के आधार पर किया जाता है। इसके अतिरिक्त ट्रांसलेशन पेनल के द्वारा अनुवाद सामग्री का सम्पादन किया जाता है।

सम्पादन होने के बाद यदि अनुवाद में किसी प्रकार की कमियाँ न पाई जायँ तो उसे टाईपिंग के लिए भेज देना चाहिए। टाइप होने के बाद टाइप प्रतियाँ पुनः अनुवाद पेनल के पास जाँच हेतु भेज दी जाती है।

टाइप में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है कि एक पृष्ठ पर तीन सौ शब्दों और छः पेरा से अधिक सामग्री न अंकित की जाय। इसका कारण यह है कि इसी दर से ट्रांसलेशन एवं सम्पादन के पारिश्रमिक का आकलन किया जाता है। तीन सौ शब्द अथवा छः पेरा वाले एक पृष्ठ का अनुवाद पारिश्रमिक निश्चित करने में सुविधा होती है।

(उ) माइक्रोफिल्मिंग—टाइप होने के बाद अनुवाद की माइक्रोफिल्म तैयार की जाती है तथा माइक्रोफिल्म को मूल लेख की माइक्रोफिल्म के साथ सुरक्षित रख लिया जाता है। सुरक्षित रखने की विधि क्रमिक संख्या में व्यवस्थित करके की जाती है, जिनका प्रयोग भविष्य में माँगों को संतुष्ट करने हेतु किया जाता है।

(ऊ) निस्तारण (Disposal)—जब अनुवाद पुस्तक के रूप में फ़ोटोग्राफी सेक्शन में भेजा जाता है एवं फोटोकापी इसके साथ संलग्न की जाती है, इसके बाद अनुवाद की प्रतियाँ पाठक को प्रदान कर दी जाती हैं। इसके साथ ही फोटोकापी की प्रति भी प्रदान की जाती है जिससे पाठक चित्र एवं आँकड़े आदि का लाभ ले सकें। इसके पश्चात् उसकी कार्यालय प्रति अनुवाद फोटोकापी के साथ प्रलेखन सेवा विभाग को भेज दी जाती है। जहाँ से उसे रजिस्टर में स्थायी लेख हेतु स्थान प्रदान किया जाता है।

(ए) मूल्यांकन (Assessment)—विभागाध्यक्ष अनुभव के आधार पर यह अनुमान लगा लेता है कि यदि ट्रांसलेशन पेनल ने अनुवाद किया है तब इसकी कितनी

कीमत हो सकती है अर्थात् पेनल को कितना पारिश्रमिक देय होगा। यदि यह सब कार्य अनुवाद विभाग के कर्मचारियों द्वारा किया गया है तो किसी प्रकार का प्रतिफल नहीं देना पड़ता क्योंकि अनुवाद विभाग के कर्मचारी संस्था के कर्मचारी होते हैं, उन्हें मासिक वेतन मिलता है।

यह सब होने के बाद अनुवाद विभाग में अनुवाद की गई विषय-वस्तु की एक कार्बन कापी रिकार्ड के लिए रख दी जाती है।

**(ऐ) अनुक्रमणिका (Index)**—कार्बनकापी अनुवाद विभाग को इसलिए रखनी पड़ती है कि इसके द्वारा अनुवाद की जाने वाली विषयवस्तु की अनुक्रमणिका उसे हर मास के अन्त में अथवा निश्चित अवधि में प्रकाशित करना पड़ता है।

अनुक्रमणिका तैयार होने के बाद उसकी माइक्रोफिल्म तैयार करना पड़ता है तथा उसे इण्डेक्स ट्रांसलेशन में सम्मिलित कर लिया जाता है।

भारत में जो अनुवाद कार्य होता है उसकी एक प्रति इन्सडॉक को भेज दी जाती है जो अपने इन्सडॉक लिस्ट में सम्मिलित कर लेते हैं तथा उसे सुव्यवस्थित ढंग से फाइल कर लेते हैं। यहाँ बारह भाषाओं में अनुवाद सेवा प्रदान की जाती है।

**अनुवाद की समस्याएँ**

**(अ) आपूर्ति (Supply)**—सबसे प्रथम समस्या अनुवाद की माँग तथा उसकी पूर्ति है, जो कि भारत में विशेष रूप से है क्योंकि भारत में वैज्ञानिक लोग प्रायः अंग्रेजी को छोड़ अन्य विदेशी भाषा का ज्ञान नहीं रखते हैं।

**(आ) अनुवादक की कमी**—माँग के अनुपात में अनुवादकों की कमी आज की सबसे बड़ी समस्या है। वास्तव में विषय की गहराई तथा शब्दों को समझने के लिए अनुवादक को विषय विशेषज्ञ भी होना चाहिए परन्तु आज प्रायः इसका अभाव-सा है।

**(इ) भाषा ज्ञान का अभाव**—अधिकतर अस्सी प्रतिशत पेनल अनुवादक विदेशी भाषाओं की पूर्ण जानकारी रखने वाले नहीं होते। इसी कारण भाषा ज्ञान की समस्या का सामना अनुवाद केन्द्र एवं अनुवादकों को करना पड़ता है। एक उच्च-कोटि के अनुवादक अथवा अनुवादक पेनल को विदेशी भाषा का अधिकतम ज्ञान होना चाहिए।

**(ई) पारिभाषिक पदावली और तकनीक का अभाव**—बहुत से अनुवादक वैज्ञानिक तथा तकनीकी और नवीन शब्दावली से परिचित नहीं होते। इन समस्याओं का सामना अनुवाद सेवा प्रदान करते समय मुख्य रूप से करना पड़ता है। अतएव अनुवादक या अनुवादक पेनल के सदस्यों को भाषा शब्दावली तथा तकनीकी ज्ञान होना आवश्यक है।

इन्सडॉक में एक वर्ष में पांच से छः सौ लेख के अनुवाद किये जाते हैं, जिसमें ६ पेज अनुवाद होने या ७५ दिन ट्रांसलेशन पेनल लगाते हैं, इसमें प्रमुख निम्न भाषाओं का अनुवाद होता हैं :—

(१) चायनीज, (२) डेनिश, (३) डच, (४) फ्रेन्च, (५) जर्मन, (६) इटेलियन, (७) स्पेनिश, (८) नार्वेजियन, (९) पोर्तुगीज, (१०) रशियन, (११) स्वीडिस।

**(उ) यांत्रिक अनुवाद**— मशीनों द्वारा अनुवाद का कार्य सर्वप्रथम १९४६ में Andrew Booth के द्वारा Birbak College, London में प्रारम्भ किया गया। यह प्रायोगिक था। इसके पश्चात् Mit & George Town University, USA में Academy of Science, USSR में पत्रिकाओं के लेखों का मशीनों से अनुवाद कार्य प्रारम्भ हुआ। यू० एस० एस० आर० में यह कार्य १९५४ में प्रारम्भ किया गया। १९५४ से मशीनों द्वारा अनुवाद-कार्य प्रकाशित किये जा रहे हैं। यू०एस०एस०आर० में 'विनीती' नामक संस्था Computer की सहायता से बड़ी तीव्रगति से अनुवाद सेवा प्रदान करती है। वास्तव में देखा जाय तो मशीनी अनुवाद इस क्षेत्र में दिन-प्रतिदिन अधिक विकसित हो रहा है। इससे श्रम और अनुसंधानकर्त्ता का समय बचता है परन्तु इससे अनुवाद होने पर बेरोजगारी एवं धन पर प्रभाव पड़ता है। अनुवाद कार्य समय बहुत लेता है। प्रायः एक लेख अनुवाद करने में एक माह से ६ माह तक लग जाता है।

(ऊ) अनुवाद कार्य में पेनल अनुवादक (P. T.) भी एक समस्या है क्योंकि ये हर समय उपलब्ध नहीं होते।

**अनुवाद कौन करे ?**

(अ) स्थायी अनुवादक (Full Time Translator)

(आ) पेनल अनुवादक (Part Time Translator)

(इ) विषय विशेषज्ञ (Subject Specialist)

इनमें से विषय विशेषज्ञ यदि अनुवाद करें तो सबसे अच्छा हो।

**अनुवाद सम्बन्धी साहित्य**

(1) Technical Translation—Monthly.

(2) Translation Register Index.
Published by Special Library Association from 1967.

(3) Translation Bulletin by National Lending Library as monthly Index.

(4) Index Translation.
Published—UNESCO.

(5) INSDOC.

(6) IASLIC.

□ □

अध्याय १०

# पुनर्प्रतिलिपिकरण

## ( REPROGRAPHY )

Reprography शब्द दो शब्दों को संक्षिप्त कर के बनाया गया है— Reproduction और Photography । गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर यह कहा जा सकता है कि रिप्रोग्रेफी डाकुमेन्टेशन की प्रविधियों में से कोई प्रविधि (टेकनिक) नहीं है क्योंकि यह तो मूल मैटर को डुप्लीकेट करने की एक विधि है । यह शब्द यांत्रिक विधियों के एक समूह का सूचक है जिसमें किसी मैटर की एक या एक से अधिक प्रतियाँ किसी कापी करनेवाली या डुप्लीकेट करने वाली मशीन से तैयार की जा सकती है । अध्ययन और शोध कार्य में लगे व्यक्तियों द्वारा माँग करने पर किसी प्रलेख की प्रतिलिपि यांत्रिक विधि से कर के देने को प्रलेख प्रतिलिपिकरण सेवा (डाकुमेन्ट रिप्रोडक्शन सर्विस) कहते हैं ।

**पुनः प्रतिलिपिकरण की आवश्यकता**

(अ) सब सामयिक उपयोगी नहीं होते तथा सब क्रय भी नहीं किये जा सकते ।

(आ) आदान-प्रदान में मूल लेख बहुत कष्टप्रद एवं व्ययसाध्य पड़ता है ।

(इ) दुर्लभ ग्रंथों की सुरक्षा हेतु भी यह आवश्यक एवं उपयोगी है ।

(ई) एक सामयिक का विभिन्न स्थानों पर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा उपयोग किया जा सकता है ।

**उद्देश्य**—न्यूनतम धन एवं न्यूनतम समय में उपयोगकर्त्ताओं को अभीष्ट लेख प्राप्त कराना ।

**प्रकार**—ये मुख्यतया दो प्रकार के होते हैं :—

(अ) ऑप्टिकल (Optical)

(आ) नॉन-ऑप्टिकल (Non-Optical)

(अ) **ऑप्टिकल**—इस विधि से सूचना पुनरुत्पादन करने में कैमरा आवश्यक है । फोटोस्टेट, Xerographic Process Microfilming, माइक्रोप्रिन्ट आदि विधियाँ इसके अन्तर्गत आती हैं । इसे पुनः दो भागों में बाँटा जा सकता है—

(अ) Contact Method

(आ) Optical Method

(अ) Contact Method में निम्न विधियाँ उल्लेखनीय हैं :—

(१) Reflex Printing

(२) Diazo Printing

(३) Thermographic Process

(४) Recoh Method

(१) Reflex Printing—यह सन् १८३९ से प्रचलित सबसे पुरानी फोटोग्राफिक पद्धति है। इसमें मूल पारदर्शक नहीं होता। अतः उसमें दोनों ओर लिखावट रहती है। फोटोग्राफिक मैटिरियल के माध्यम से मूल प्रति पर प्रकाश डाल कर इसकी प्रतियाँ तैयार की जाती हैं। फिर इन प्रतियों की बड़ी प्रतियाँ बना ली जाती हैं।

(२) Diazo Printing—यह भी सम्पर्क विधि है। इसमें मूलप्रति पारदर्शक और एक ओर मुद्रित या लिखित होती है जो कि लिपोग्राफिक मैटिरियल्स (Lipographic Materials) जैसे पेपर, heat developed paper आदि पर उतर आती है। यह विधि बहुत से पुस्तकालय एवं प्रलेखन केन्द्रों में अपनायी जा रही है क्योंकि इस विधि में उपयोग होने वाली मुद्रण सामग्री सस्ती एवं उपयोग में सरल होती है।

(३) Thermographic Process—इसमें एक विशेष प्रकार का पतला कागज उपयोग में लाया जाता है, जिस पर ताप एवं प्रकाश का प्रभाव शीघ्र पड़ जाता है, जिसे Thermolax कहते हैं। इसे यन्त्र में रख कर मूल प्रति को सम्पर्क में लाकर प्रतियाँ बना ली जाती हैं। इस पद्धति में मूल प्रति के हर रंगों का पुनरुत्पादन नहीं होता है। यह सम्पर्क विधियों में सबसे सरल एवं द्रुतगामी विधि है। इसमें प्रतियाँ बनाने की प्रक्रियाएँ सूखी हैं। इसमें प्रति (Copy) बनाने में दो-तीन सेकेण्ड का समय लगता है।

(आ) Optical Method—Contact Method में प्रतियाँ मूल प्रति के बराबर बनायी जाती हैं, जबकि Optical Method में ऑप्टिकल लेन्स (Optical lens) की सहायता से प्रतिबिम्ब प्रदर्शित कर प्रतियाँ मूल प्रति से छोटी-बड़ी अनेक आकार की बनाई जा सकती हैं। इसकी निम्न मुख्य विधियाँ हैं :—

(१) फोटो स्टेट (Photostat)

(२) माइक्रोफिल्म विधि (Microfilm Method)

(३) Xerographic Process

(४) रीको विधि (Recoh Method)

(१) फोटो स्टेट—इस विधि में एक बड़ा कैमरा जो इसी नाम से होता है, उपयोग किया जाता है। इसमें एक समकोण प्रिज्म इसके लेन्स के सामने लगा होता है। इस विधि में प्रतिबिम्ब फिल्म या प्लेट पर न पड़ कर Sensitized paper (प्रकाश के प्रभाव से प्रभावित होने वाले कागज) पर पड़ता है।

(२) माइक्रोफिल्म विधि—यह शताब्दियों पुरानी पद्धति है, परन्तु आजकल इसका अधिक उपयोग हो रहा है। यह पद्धति सर्वप्रथम १८७१ ई० में पेरिस से समाचार भेजने में प्रयोग की गई थी।

इसमें एक विशेष प्रकार की बड़े साइज की मशीन आवश्यक होती है। इसमें १६ एम० एम० से ७० एम० एम० के Perforated या Underforated रील फिल्म उपयोग किये जाते हैं। इनकी साइज मूल प्रति (जिसकी प्रति करनी है) के अनुसार की जाती है।

(३) Xerographic Process—यह विद्युत से प्रतिलिपि बनाने की यू०एस० ए० में विकसित श्रेष्ठ पद्धति है। इस पद्धति में एक जस्ते की प्लेट पर जस्ते की परत चढ़ाकर प्रकाश प्रवाहित किया जाता है, फिर इस पर विशिष्ट कैमरे द्वारा मूल प्रति का प्रतिबिम्ब फेंका जाता है। फिर प्लेट पर विशिष्ट राल मिला पाउडर छिड़का जाता है। यह पाउडर प्लेट पर उन स्थानों पर चिपक जाता है, जिसको प्रकाश पार न कर सके। इस प्रकार बने प्रतिबिम्ब को एक कागज की सीट (Sheet) पर ताप की क्रिया से स्थानान्तरित कर दिया जाता है।

इससे निम्न लाभ-हानि हैं—

लाभ—

(१) इससे सीधे कागज पर प्रतिलिपि की जा सकती है।

(२) यह एक सूखी विधि है। अतः इसकी समस्त विशेषतायें इसमें समाहित हैं।

(३) इसमें निगेटिव की आवश्यकता नहीं पड़ती है।

(४) यह शीघ्र विधि है।

(५) यह कम स्थान लेती है, साथ ही विशिष्ट कमरा (Special room) की जरूरत नहीं होती।

हानि—

(१) मशीनरी विधि होने के कारण महँगी है।

(२) व्यवस्थापन महँगा है।

(३) टेलीप्रिंटर मेन्टेन करना पड़ता है। इसीलिए इस विधि को छोटे पुस्तकालय, प्रलेखन या सूचना केन्द्र नहीं अपना पाते हैं।

Documentary Reproduction—जैसे ही किसी भी सूचना का उत्पादन होता है, उसके बाद उसके प्रसार के लिए पुनरुत्पादन का प्रश्न उठता है। इसका प्रथम प्रयास Nineveh में १००० बी० सी० में हुआ था, जब एक साधारण हाथ से चलनेवाला डुप्लीकेटर बना था। धीरे-धीरे प्रतिलिपिकरण की विधि में सुधार होता गया और प्रिंटिंग प्रेस का आविष्कार हुआ, जो बड़ी मात्रा में ग्रन्थ एवं सामयिकों का उत्पाद कर रहे हैं।

(४) रीको विधि (Recoh Method)

जीरोक्स प्रिंटिंग के आधार पर जपान की रीको कम्पनी ने एक पुनर्प्रतिलिपिकरण की एक सरल, समय की बचत करने वाली तथा सस्ती विधि निकाली है। इसका नाम रीको कम्पनी के नाम पर रीको मशीन विधि या रीको विधि कहते

हैं। इस मशीन के द्वारा साधारण कागज पर भी किसी प्रलेख की जितनी प्रतियाँ चाहें उतनी अल्पसमय में प्राप्त हो जाती हैं। सब प्रतियाँ एक समान साफ होती हैं। इसमें प्रिंट के आकार को घटाने और बढ़ाने की भी व्यवस्था है। किन्तु महँगी होने के कारण यह सभी संस्थानों के लिए सुलभ नहीं हो सकती।

अनुसंधान के क्षेत्र में विशेषज्ञों को कई नई जानकारियों की शीघ्र आवश्यकता होती है, साथ ही कई दुर्लभ ग्रन्थों (Rare books) के प्रतिलिपियों की भी आवश्यकता पड़ती है जो कि दूर देशों में पाये जाते हैं। इनकी प्रतियों को उपयोगकर्त्ताओं तक शीघ्र उपलब्ध कराने के लिए ही सूचना पुनर्प्रतिलिपिकरण (Reprography) की विभिन्न विधियों का उपयोग किया जाता है। किस प्रकार के प्रतिलिपिकरण के लिए कौन-सी विधि उपयोगी होगी, यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रत्येक विधि के अपने गुण-दोष हैं।

आज के युग में सबसे उपयोगी विधि माइक्रोफिल्म है, इसमें स्थान भी कम लगता है, विधि भी सरल है। यह इण्टर लाइब्रेरी लोन, प्राचीन लेख के लिए उपयोगी है। प्रत्येक देश में ऐतिहासिक और सांस्कृतिक महत्त्व के पुराने साहित्य को माइक्रोफिल्म प्रतियों में संग्रहीत किया जा रहा है। ग्रेट ब्रिटेन में यह कार्य पब्लिक रिकार्ड ऑफिस में किया जा रहा है।

आज माइक्रोफिल्म रोल माइक्रोफिल्म, स्ट्रिप, शीट, माइक्रोकार्ड आदि प्रकारों में पाया जाता है। कुछ लोग माइक्रोफिल्म को रोल के कारण पसन्द नहीं करते। परन्तु जब इंडेक्स कार्ड का उपयोग करते हुये माइक्रोफिल्म अच्छी तरह तैयार किये जाते हैं तो पहिचानने एवं व्यवस्थापन में कोई असुविधा नहीं होती।

हस्त प्रतिलिपि विधियाँ अवैज्ञानिक होने के कारण और विद्युत प्रयोग विधियाँ महँगी होने के कारण ज्यादा प्रचलन में नहीं हैं। फिर भी यदि माइक्रोफिल्म विधि को Electronic devices से जोड़ दिया जाय तो यह ज्यादा सरल, सस्ती, सुविधाजनक और कम समय लेने वाली उत्तम विधि हो सकती है।

**माइक्रो कार्ड**—ये किसी मुद्रित सामग्री के माइक्रोकापी फोटोग्राफिक रूप में प्रतियाँ तैयार करने में उपयोगी होते हैं। ये पुस्तकालय सूचीकरण पत्रक (Cotalogue Cards) के ही साइज के मानक कार्ड होते हैं। एक कार्ड में सामान्यत: छपे हुये आठ पृष्ठों की सामग्री उतर आती है। इनका उपयोग पूर्ण पुस्तकों को प्रतियाँ करने में भी किया जाता है। इन्हें अलग फाइल करके रखा जाता है अथवा कैटलॉग कार्ड की तरह व्यवस्थित भी किया जा सकता है।

**माइक्रोप्रिन्ट**—यह पुनरुत्पादन भी माइक्रो फोटोग्राफ ही है, जो मुद्रित रूप में होता है। माइक्रोप्रिन्ट और माइक्रोकार्ड विशेष चित्र प्रस्तुत करते हैं जबकि माइक्रोफिल्म में चित्र के निगेटिव उपलब्ध होते हैं। इनको बिना Reading Machine के नहीं पढ़ा जा सकता है। इसको भी सूचीकरण करके सुव्यवस्थित रखते हैं।

माइक्रोफ्चि (Microfiche)—Fiche एक फ्रेंच शब्द है, जिसका अर्थ कार्ड होता है। यह एक ४×६ इन्च की फिल्म की शीट होती है। एक शीट पर सामान्यतः नब्बे से अट्ठानबे बिम्ब आ जाते हैं। परन्तु ऐसा भी आकार फार्मेट (Format) चलन में हैं जिनमें एक फिल्म कार्ड पर तीन सौ बिम्ब आ जाते हैं। प्रत्येक बिम्ब एक छपे पृष्ठ को प्रस्तुत करता है। यह निम्न दृष्टिकोण से लाभप्रद है :—

(१) कीमती मोनोग्राफ्स (Monographs) का प्रकाशन माइक्रोफ्चि से ही किया जाना अच्छा होता है।

(२) जब कीमती गतावधि पुस्तक की प्रतियाँ बनाना होता है तो यह कार्य बहुत खर्चीला होता है। इसीलिए कम श्रम व व्यय पर उनकी माइक्रोफ्चि प्रति (Copy) तैयार की जाती है और मूल कीमत से कम पर ग्रन्थालयों और अन्य उपयोगकर्त्ताओं को सुलभ कराये जा सकते हैं।

(३) जब किसी साहित्य के लेख में रंगीन चित्रकारी आदि होती है और इनका अन्य स्तर के उत्पादन मूल लागत से तीन-चार गुना अधिक होता है तो माइक्रोफ्चि से उनका वैसा का वैसा अच्छा उत्पादन हो जाता है और समय और धन भी कम व्यय होता है।

(४) पुस्तकों के प्रकाशन में छः माह से अधिक समय लगता है जबकि इसमें उसके ठीक $\frac{1}{3}$ समय में हो जाता है। उपरोक्त कारणों से यद्यपि यह आधुनिक युग की नई विधि मानी जाती है फिर भी माइक्रोफ्चि ने सूचनाओं को रिकार्ड करने और संग्रह करने के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया है।

□ □

अध्याय ११

# प्रलेखन स्टाफ

## ( PERSONNEL FOR DOCUMENTATION WORK )

आज के पुस्तकालयाध्यक्ष से यह अपेक्षा नहीं की जाती कि वह मात्र पुस्तकों से प्रेम करता रहे वरन् उसे अपने में ऐसे गुण विकसित करना चाहिये कि वह ज्ञान प्राप्त करने में सहायक, विषय वाङ्मयसूची में दक्ष एवं पुस्तकों के उपयोग में विशेषज्ञ हो। आज के युग में विशिष्ट पुस्तकालय सेवा (Special librarianship) और प्रलेखन के विकास से केवल तकनीकी ज्ञान ही विकसित नहीं हुआ है। अब विषयगत ज्ञान भी पुस्तकालय सेवा का अंग बन गया है। आज 'तकनीकी सूचनाधिकारी', विशेषज्ञ या सूचना वैज्ञानिक भी एक पुस्तकालयाध्यक्ष है, यद्यपि ये अपने विषय में उच्च शिक्षा प्राप्त विशेषज्ञ एवं पुस्तकालय विज्ञान के स्नातक होते हैं।

प्रलेखन और सूचना प्रदान करने का कार्य अच्छा ज्ञान, क्षमता एवं बुद्धि-कौशल चाहता है। अतः इसके लिए उच्च शिक्षा, उत्तम प्रशिक्षण एवं अनुभव आवश्यक होता है।

प्रलेखन और सूचना केन्द्रों के कार्य तीन भागों में होते हैं :—

(१) वैज्ञानिक और तकनीकी साहित्य की विषयवस्तु का मूल्यांकन।

(२) उनका वर्गीकरण और संग्रह करना।

(३) उनको उपयोग योग्य बनाने हेतु क्रियायें करना।

इन तीनों कार्यों के लिए तीन प्रकार के कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ती है—

(१) वैज्ञानिक स्टाफ (Scientific Staff)

(२) वाङ्मयसूची का स्टाफ (Bibliographical Staff)

(३) प्रलेखन सहायक (Documentation Assistant)

(१) **वैज्ञानिक स्टाफ**—विभिन्न देशों में प्रलेखनाचार्य (Documentalist), प्रलेखन अधिकारी (Documentation Offieer), सूचना अधिकारी (Information Officer), सूचना वैज्ञानिक (Information Scientist) आदि नामों से जाने जाते हैं।

इनका मुख्य कार्य ज्ञान जगत् में उत्पादित वैज्ञानिक, तकनीकी ज्ञान को ऐसा बनाना है कि लोग उसे जान सकें। ये सम्बन्धित विषय के सामयिक प्रकाशनों का नियमित अध्ययन करते रहते हैं और उनका तर्कपूर्ण मूल्यांकन करते रहते हैं। अतः वैज्ञानिक कर्मचारियों में उच्च ज्ञान, विशेषज्ञता, और प्रलेखन में दक्षता होनी

चाहिये । इन्हें प्रशिक्षण देने का कार्य विश्वविद्यालय या उच्च तकनीकी संस्थानों द्वारा दिया जाना चाहिये, जिसमें विभिन्न भाषाओं और तकनीकी शब्दावली का ज्ञान प्रदान करना भी सम्मिलित हो ।

(२) **वाङ्मयसूची का स्टाफ**—वाङ्मयसूचीकार के स्टाफ में कर्मचारियों का कार्य कठिन एवं जटिल ग्रन्थ वर्णनात्मक होता है । इसमें सब साहित्यों का संग्रह कर के तकनीकी सूचना प्रदान करना होता है । ये अपने कार्य द्वारा वैज्ञानिक कर्मचारियों को सहायता पहुँचाते हैं । इसमें इन्हे विषयों के विशेष ज्ञान की आवश्यकता नहीं होती है । ये अपने कार्य द्वारा प्रलेखन और सूचना केन्द्रों और अन्य सम्बन्धित इकाइयों के बीच समन्वय एवं सहयोग बनाये रखते हैं । वाङ्मयसूचीकारों को स्नातक, पुस्तकालय विज्ञान में स्नातक, प्रलेखन एवं सूचना कार्य में प्रशिक्षित होना चाहिये । वैज्ञानिक एवं वाङ्मयात्मक कर्मचारियों के कार्यों को प्रकृति के अनुसार इनके प्रशिक्षण की व्यवस्था भी अलग-अलग प्रकृति की होनी चाहिये ।

(३) **प्रलेखन सहायक**—इन कर्मचारियों में प्रलेखन कार्य में मदद करने वाले कर्मचारियों का भी समावेश होता है । जैसे—प्रतिलिपिकार, टाइपिस्ट एवं अन्य अतकनीकी कर्मचारी, जिनका कार्य टाइप करना, डुप्लीकेटिंग करना, कार्ड इण्डेक्स बनाना, लेखक, विषय आदि की सांख्यकी तैयार करना, सामान्य वाङ्मयात्मक कार्य करना आदि आते हैं ।

इनकी शैक्षणिक योग्यता माध्यमिक स्तर तक, पुस्तकालय विज्ञान में प्रमाण-पत्र परीक्षा पास, प्रलेखन कार्य का प्रयोगिक ज्ञान एवं टाइपिंग एवं डुप्लीकेटिंग मशीनों के प्रयोग का ज्ञान पर्याप्त होता है ।

इन तीन तरह के कर्मचारियों के अतिरिक्त प्रलेखन और सूचना केन्द्रों में कुछ अन्य कर्मचारियों की सेवाओं की भी आवश्यकता होती है, जैसे सम्पादक, अनुवादक आदि । इसके अतिरिक्त कुछ तकनीकी कर्मचारियों की आवश्यकता होती है जो चित्रप्रति (Photo reproduction) और मुद्रण कार्य करते हैं ।

□ □

अध्याय १२

# प्रलेखन कार्य का विकास

## इण्टरनेशनल फेडरेशन फार डाक्यूमेंटेशन (FID)

१८९५ ई० में हेनरी लॉ फाउन्टेन (Henry La Fountaine) और पाल ओटलेट (Paul Otlet) ने पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों तथा सूक्ष्म प्रलेखों के सूक्ष्म वर्गीकरण की आवश्यकता का अनुभव किया जिससे वे विशेषज्ञों को सुलभ हो सकें। बारह करोड़ प्रलेख (जिसमें पुस्तकें और पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख) उस समय अनुमानतः थे, जिनकी संख्या में प्रति वर्ष सैकड़ों हजार पुस्तकों एवं लेखों की वृद्धि होती थी, उसको नियन्त्रण करना, किसी व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों से परे की बात थी। इस पर विचार करने के लिए ब्रूसेल्स में १८९५ ई० में एक इण्टरनेशनल बिब्लियोग्रैफिकल कांफ्रेंस बुलायी गई, जिसके फलस्वरूप बेलजियम सरकार की सहायता से 'इण्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ बिब्लियोग्रैफी' की स्थापना हुई। १९३१ ई० में इस संस्था का पुनः नामकरण किया गया—'इण्टरनेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ डाक्यूमेंटेशन'। यह प्रथम अवसर था, जब कि बिब्लियोग्रैफी के स्थान पर डाक्यूमेंटेशन शब्द का प्रयोग किया गया। १९३८ ई० में इसका नाम पुनः बदलकर 'इण्टरनेशनल फेडरेशन फॉर डाक्यूमेंटेशन' (FID) रखा गया। ब्रूसेल्स से इसका मुख्यालय हेग (Hague) में कर दिया गया। श्री डोंकर डियूविस (Donker duyvis) इस संस्था के जनरल सेक्रेटरी १९२४ ई० में बनाये गये थे, जो कि १९६१ ई० तक रहे।

**संगठन**—इसका संगठन चार रूपों में किया गया है—

(अ) जनरल एसेम्बली

(आ) काउन्सिल

(इ) ब्यूरो

(ई) सेक्रेट्रिएट।

इस संस्था में विभिन्न विषयों के विशेषतया औद्योगिक अनुसन्धानकर्त्ताओं का प्रतिनिधित्व रहता है। इसके द्वारा अनेक विषयों पर प्रलेखन सूची प्रकाशित की गई। इस संगठन के लोगों ने प्रलेखों के वर्गीकरण के लिए यू० डी० सी० को अपनाने पर जोर दिया और उसमें संशोधन, परिवर्तन करते रहे। यद्यपि इस बात का अनुभव किया गया कि यू० डी० सी० इस कार्य हेतु पूर्ण सक्षम नहीं है किन्तु सम्मान का प्रश्न मान कर इसी को प्रलेखन हेतु अपनाया गया, साथ ही डॉ० रंगानाथन के Octave device, Packeted Notation भी अपनाये गये।

**सदस्यता**—इसमें दो तरह के सदस्य हैं—

(अ) फुल

(आ) एसोसिएटेड

इस समय ४१ राष्ट्रीय सदस्य एवं दो सौ एसोसिएटेड सदस्य हैं।

**प्रकाशन**—इस संस्था द्वारा निम्नलिखित प्रकाशन कार्य किया जाता है :—

(अ) एफ आई डी मासिक बुलेटिन

(आ) एफ आई डी इयर बुक

(इ) अनेक विषयों की डाकुमेंटेशन लिस्ट्स ।

**कार्य**—इसके निम्नलिखित प्रमुख कार्य हैं—

(अ) प्रलेखन क्षेत्र में सहयोग एवं संगठन बनाये रखना ।

(आ) प्रलेखन कार्य की उन्नति हेतु प्रशिक्षण को बढ़ावा देना ।

(इ) प्रलेखन सम्बन्धी समस्या का समाधान करना ।

(ई) यू० डी० सी० को वर्गीकरण के योग्य बनाना, इस हेतु वर्गीकरण पद (टर्म्स) की खोज करना ।

(उ) विश्व स्तर पर यूनियन कैटलॉग की स्थापना करना ।

(ऊ) समय-समय पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बैठक बुलाना ।

**यूनेस्को**—यह (यू० एन० ओ० की एक विशिष्ट एजेन्सी) भी एक अन्तर्राष्ट्रीय संगठन है । यह अन्तर्राष्ट्रीय प्रलेखन सूचियों के उत्पादन में विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय संगठनों को वित्तीय सहायता दे रही है । यह प्रलेखन कार्य की विशिष्ट योजनाओं के लिए एफ०आर०डी० और इण्टरनेशनल स्टैण्डर्ड आर्गनाइजेशन को भी सहायता दे रही है ।

इसके अतिरिक्त विनोती (Viniti) मास्को में, एफ० ए० ओ० (F. A. O.), आई० एल० ओ० (I. L. O.), अमेरिका केमिकल सोसाइटी, इंस्टीट्यूट फार साइंटिफिक इन्फार्मेशन, मांडलाइस (यू० एस० ए०) आदि संस्थायें भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रशंसनीय कार्य कर रही हैं ।

इसके बाद १९३७ ई० में अमेरिकन डाकुमेंटेशन इंस्टीट्यूट की स्थापना हुई । इसने अमेरिकन लाइब्रेरी एसोसिएशन और ASLIB के साथ इस कार्य में विशेष रुचि ली ।

**प्रलेखन के राष्ट्रीय संगठन**—अमेरिका में १९०८ ई० में 'स्पेशल लाइब्रेरीज एसोसिएशन' की स्थापना हुई । उसने प्रलेखन कार्य के दायित्व को सम्भाला । यू० के० में १९२४ ई० में एसोसिएशन आफ स्पेशल लाइब्रेरीज एण्ड इन्फार्मेशन ब्यूरो (ASLIB) की स्थापना हुई । इसमें अधिकांश प्रभावशाली सदस्य औद्योगिक क्षेत्र के रहे हैं । १९५२ ई० में रूस में विनीती (VINITI) नामक प्रलेखन केन्द्र की स्थापना के बाद से निरन्तर इस क्षेत्र में प्रगतिपूर्ण कार्य हो रहा है । इसके अतिरिक्त वहाँ पर विशिष्ट प्रकार के शोध कार्य के लिए अनेक सूचना केन्द्र हैं । जैसे—

(१) आल यूनियन इंस्टीट्यूट फार मेडिकल ऐण्ड मेडिकोटेकनिकल इन्फार्मेशन ।

(२) आल यूनियन इस्टीट्यूट फार साइंटिफिक ऐण्ड टेकनिकल इन्फार्मेशन ऐग्रिकल्चर ।

विश्व के अन्य देशों में भी राष्ट्रीय प्रलेखन केन्द्र स्थापित हुए हैं । नार्वे १९४७, पुर्तगाल, रूमानिया और यूगोस्लाविया १९४७, मेक्सिको और पोलैण्ड १९५०, भारत १९५२, टर्की १९५२, यूरोप में १९५३, ब्राजील १९२४, पाकिस्तान १९५६, चीन, जापान, हंगरी और फिलिपाइन्स १९५७, अर्जेन्टाइना १९६० ई० में । □□

अध्याय १३

# भारत में प्रलेखन कार्य

**भारत में प्रलेखन का प्रारम्भ** -- भारत में मद्रास विश्वविद्यालय पुस्तकालय में प्रलेखन सेवा का प्रारम्भ १९२८ ई० से प्रारम्भ हुआ। सी० वी० रमन का एक भाषण मार्च १९२८ ई० में मद्रास विश्वविद्यालय में आयोजित किया गया। रमन इफैक्ट (Raman Effect) शीर्षक के अन्तर्गत विभिन्न पत्रिकाओं में से खोज कर डॉ० रंगनाथन और सी० सुन्दरम् ने साठ लेखों की रोमियो प्रतिलिपियाँ तैयार की और प्रत्येक में यथास्थान कागज कि टुकड़े रख कर उन्हें क्रमबद्ध करके रैक पर रखवाया और ऊपर रमन इफैक्ट का शीर्षक लगा दिया। रोमियो प्रतिलिपियाँ श्रोता सदस्यों में वितरित कर दी गई और उनकी एक प्रति रमन महोदय को भी दी गई। वे बहुत प्रसन्न हुए। अनेक श्रोता सदस्यों ने भाषण के बाद आकर उन पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों को उस दिन तथा उसके बाद भी कई दिनों देखा। भारत में प्रलेखन सेवा का प्रारम्भ सम्भवतः यहीं से हुआ। इसके बाद वहाँ सामान्य पाठकों, अनुसन्धानकर्त्ताओं तथा विशेषज्ञों के लिए शनैः-शनैः प्रलेखन सेवा की व्यवस्था अनेक विषयों और प्राकृतिक विज्ञान के विषयों पर की गई।

प्रलेखन केन्द्रों की स्थापना में रंगनाथन का विशिष्ट योगदान रहा है। यहाँ प्रलेखन (डाकुमेंटेशन) को कोई उस समय समझता तक नहीं था। अतः इस सम्बन्ध में रंगनाथन जी को भगीरथ प्रयास करना पड़ा। उनके मन में १९४८ ई० में राष्ट्रीय प्रलेखन केन्द्र स्थापित कराने का विचार आया। उन्होंने प्रथम प्रयास करके जो प्रस्ताव भारत सरकार को भेजा वह वित्त मन्त्रालय द्वारा फाइल पर दिया गया। द्वितीय बार १९५० ई० में सर शांति स्वरूप भटनागर के सहयोग से इसमें कुछ सफलता मिली और फाइल आगे बढ़ी। डॉ० रंगनाथन ने इसके लिए योजना समिति आदि बनाई। बाद में यूनेस्को से भी सहायता मिली। सितम्बर १९५१ ई० में भारत सरकार ने राष्ट्रीय प्रलेखन केन्द्र के लिए योजना स्वीकार की। जिसका नाम इंडियन नेशनल साइंटिफिक डाकुमेंटेशन सेन्टर (INSDOC) रखा गया। इंसडॉक लिस्ट का प्रथम अंक एक जून, १९५४ को प्रकाशित हुआ। यह पाक्षिक था। इसमें लगभग ६५० पत्रिकाओं के लगभग २००० लेखों की वर्गीकृत सूची प्रत्येक अंक में दी जाने लगी। इस प्रकार सामान्य रूप से कार्य प्रारम्भ किया गया। यह केन्द्र अब बहुमुखी प्रशंसनीय सेवायें प्रदान कर रहा है।

इसी प्रकार डॉ० रंगनाथन ने इण्डियन नेशनल सोशल साइन्स डाकुमेन्टेशन सेन्टर (INSSDOC) की स्थापना के लिए १९५० ई० में प्रथम प्रयास किया।

इसके बाद भी समय-समय पर निरन्तर प्रयास करते रहे जिसके फलस्वरूप १ अक्टूबर, १९६९ ई० को भारत सरकार के शिक्षा मन्त्रालय ने इण्डियन काउन्सिल ऑफ सोशल साइन्स रिसर्च (ICSSR) की स्थापना की। रंगनाथन के अतिरिक्त गिरजाकुमार, डॉ० सी० टी० काले, के० जे० साहा, ए० के० मुकर्जी, जी० बी० घोष आदि ने भी अपना-अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया जिसके फलस्वरूप इण्डियन एसोसिएशन ऑफ स्पेशल लाइब्रेरीज एण्ड इन्फारमेशन सेन्टर्स (IASLIC) आदि का जन्म हुआ जो प्रलेखन क्षेत्र में भी सेवारत है।

भारत में निम्नलिखित केन्द्रों में प्रलेखन सेवा का प्रारम्भ हुआ है—

(१) फारेस्ट रिसर्च इंस्टीट्यूट, देहरादून।

(२) नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इस संस्था के द्वारा भारत में प्रथम बार 'इण्डियन साइंस आब्सट्रेक्ट्स' नामक सारांशीकरण कार्य का प्रारम्भ १९३५ ई० में प्रारम्भ किया गया। परन्तु अर्थाभाव के कारण वह कार्य १९४० ई० में बन्द कर देना पड़ा।

(३) सेन्ट्रल बोर्ड ऑफ इरिग्रेशन।

(४) डाकुमेन्टेशन रिसर्च ऐण्ड ट्रेनिंग सेन्टर (DRTC), बंगलौर।

इस केन्द्र में प्रलेखन की प्रविधियों में अनुसन्धान कार्य, प्रलेखन कार्य और प्रलेखन सेवा के लिए प्रशिक्षण, प्रलेखविदों के लिए रिफ्रेसर कोर्स आदि की व्यवस्था है, जो अपने आप में एक उपलब्धि है।

(५) इंडियन स्टैण्डर्ड इंस्टीट्यूट (ISI)

इस संस्थान के प्रलेखन अनुभागीय समिति तथा पुस्तकालय भवन और फर्नीचर समिति द्वारा वर्गीकरण और सूचीकरण की प्रविधियों में मानक तथा वाङ्मय-सूची एवं सारांशीकरण का मानक स्थापित करने का कार्य और प्रलेखन कार्य के लिए आवश्यक उपकरण और साज-सामान के मानकीकरण का कार्य किया जाता है। इसने १९४७ से १९७१ ई० के बीच तेइस मानक प्रकाशित किये हैं।

(६) इण्डियन नेशनल साइंटिफिक डाकुमेंटेशन सेन्टर (INSDOC) दिल्ली।

(७) इण्डियन नेशनल सोशल साइंस डाकुमेंटेशन सेन्टर (INSSDOC) दिल्ली।

(८) इण्डियन एसोसिएशन ऑफ स्पेशल लाइब्रेरीज ऐण्ड इन्फार्मेशन सेन्टर (iASLIC)।

भारत में स्थानीय स्तर पर भी यह कार्य कुछ विश्वविद्यालयों द्वारा किया जा रहा है। जैसे :—

(i) राजस्थान विश्वविद्यालय—इंडेक्स इण्डिया

(ii) पंजाब विश्वविद्यालय—इंपेक्स

(iii) जयपुर विश्वविद्यालय—इण्डियन न्यूज इंडेक्स

(iv) दिल्ली पुस्तकालय संघ—इण्डियन गाइड टू पीरियाडिकल लिट्रेचर आदि।

## डी० आर० टी० सी० (D. R. T. C.)

इसका पूरा नाम डाकुमेंटेशन रिसर्च ट्रेनिंग सेन्टर है।

'इण्डियन इंस्टेटिकल इन्स्टीट्यूट' के निदेशक प्रो० पी० सी० महालोनोबिस (P. C. Mahalonobis) के सहयोग से इसकी स्थापना हुई। उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि भारत में भी अन्य देशों की भाँति लेखों के क्षेत्र में भी रिचर्स एवं प्रशिक्षण की आवश्यकता है। औद्योगिकीकरण की सन्तोषजनक प्रगति तब तक नहीं हो सकती, जब तक कि औद्योगिक अनुसंधान और शुद्ध अनुसंधान द्वारा उसको भरपूर सहायता न दी जाय। डॉ० रंगनाथन उस समय ज्यूरिक (यूरोप) में थे। अपने यूरोप यात्रा में प्रो० महालोनोबिस ने १९५६ में उनसे भेंट की। १९५७ ई० में भारत लौटने पर उन्होंने डॉ० रंगनाथन को कलकत्ता बुलाया और इस सम्बन्ध में बातचीत की। १९६१ ई० में श्री जे० शाहा एवं प्रो० महालोनोबिस से दिल्ली में डॉ० रंगनाथन की भेंट हुई। इस प्रकार काफी समय तक विचार-विमर्श के बाद बंगलोर में डी० आर० टी० सी० की स्थापना हुई। एक जून १९६२ से इसका कार्यारम्भ हुआ।

इस केन्द्र में डॉ० रंगनाथन के साथ प्रो० नीलमेघन प्रमुख सहयोगी थे। कोर्स के प्रारम्भ में प्रत्येक विषय की जानकारी देने के लिए एक या दो व्याख्यान दिये जाते हैं। इस प्रकार अन्त में एक या दो व्याख्यान उस विषय पर दिये जाते हैं, जिस पर अनुसन्धान किया गया हो और उससे सम्बन्धित सभी प्वाइन्ट पर संक्षेप में प्रकाश डाला जाता है जिससे उस विषय पर आगे अध्ययन एवं अनुसन्धान के विकास के लिए मार्गप्रशस्त हो सके।

विद्यार्थियों के साथ वाद-विवाद, टिटोरियल क्लास, प्रोजेक्ट वर्क, साप्ताहिक समीक्षा और दो वार्षिक सेमिनार ये प्रशिक्षण की प्रमुख विधियाँ हैं। १९६२ ई० से १९७१ ई० तक ५९ व्यक्तियों को डी० आर० टी० सी० ने प्रशिक्षित किया और वे उच्चपदासीन हैं। डी० आर० टी० सी० रिसर्च स्कालर और ग्रन्थालय कर्मचारियों को वहाँ कुछ दिन ठहरने एवं प्रलेखन कार्य को सीखने-समझने को भी सुविधा देता है। इसके सेमिनार की कार्यवाही (प्रोसिडिंग्स) प्रकाशित भी होती है। यहाँ के आठ अध्यापकों द्वारा १९७१ ई० तक ६२४ महत्त्वपूर्ण रिसर्च पेपर, टेकनिकल रिपोर्ट एवं सूक्ष्म सारणी तैयार की गई हैं।

**कार्य एवं उद्देश्य**—इसके निम्नलिखित कार्य एवं उद्देश्य हैं :—

(अ) प्रलेखन सम्बन्धी तकनीकी विधियों में अनुसन्धान करना और उसमें सुधार करना।

(आ) प्रलेखन कार्य एवं सेवा हेतु विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करना।

(इ) प्रलेखन कार्य में लगे हुए कर्मचारियों को उनके विषयों पर पुनरभ्यास पाठ्यक्रम (रिफ्रेशर कोर्स) चलाना।

(ई) कोलन वर्गीकरण के सूक्ष्मतम अध्ययन में विद्यार्थियों एवं अन्य प्रलेखन-कर्त्ताओं को तैयार करना।

(उ) प्रलेखन कार्य एवं सेवा को तकनीकी विधियों में, अनुसन्धान करनेवाले छात्रों एवं प्रलेखनकर्त्ताओं को प्रशिक्षित करना।

(ऊ) परामर्शात्मक सेवा (Consulting Service) प्रदान करना।

(ए) योग्य छात्र-छात्राओं का निर्वाचन तथा उनको हॉस्टल-सुविधा देना, प्रशिक्षित एवं पुरस्कृत करना।

**प्रकाशन**—इस संस्था द्वारा सेमिनार की कार्यवाही, वार्षिक प्रतिवेदन और रिसर्च पेपर्स आदि का प्रकाशन समय-समय पर किया जाता है।

## इन्सडॉक (INSDOC)

इसका पूरा नाम इण्डियन नेशनल साइन्टिफिक डाकुमेंटेशन सेन्टर (Indian National Scientific Documentation Centre) है। यह भारत का राष्ट्रीय प्रलेखन केन्द्र है।

**इतिहास एवं स्थापना**—१९५० ई० में श्री शांति स्वरूप भटनागर (नेचुरल रिसोर्सेज एवं साइन्टिफिक रिसर्च मन्त्रालय के सचिव) ने डॉ० रंगनाथन के प्रस्ताव (डाकुमेंटेशन सेन्टर सम्बन्धी) की फाइल को आगे बढ़ाया और डॉ० रंगनाथन से परामर्श किया। २५ हजार रुपया प्रतिवर्ष के बजट के अन्तर्गत एक छोटा-सा कार्यालय एवं स्टाफ नेशनल डाकुमेंटेशन सेन्टर को खोल कर एक पीरियाडिकल लिस्ट प्रकाशित करने का निश्चय किया गया। डॉ० भटनागर की राय पर इस योजना को संशोधित करके एक लाख रुपये प्रतिवर्ष किया गया।

डॉ० रंगनाथन को सदस्य सचिव (मेम्बर सेक्रेट्री) के रूप में स्थान देकर एक कमेटी बनायी गई जिसमें निश्चय किया गया कि—

(अ) भारत को 'इण्टरनेशनल फेडरेशन फार डाकुमेंटेशन' (FID) का राष्ट्रीय सदस्य बनाया जाय।

(आ) भारत के लिए एक राष्ट्रीय प्रलेखन केन्द्र की स्थापना की जाय।

(इ) डॉ० रंगनाथन इस राष्ट्रीय प्रलेखन केन्द्र के कार्य एवं प्रारम्भिक व्यय के सम्बन्ध में अपनी टिप्पणी प्रस्तुत करें।

उनके द्वारा टिप्पणी प्रस्तुत की गई एवं स्वीकार की गई।

भटनागर साहब के सुझाव पर यूनेस्को से भी सहायता माँगी गई जो स्वीकार की गई। यूनेस्को के प्रतिनिधि डॉ० मालकोम (Malcolm) के साथ एक मीटिंग में यह निश्चय किया गया कि यूनेस्को विदेश में अध्ययनार्थ 'अध्ययन अनुदान', तकनीकी एवं अन्य साज-सामान देगा, साथ ही वैज्ञानिक पत्रिकाओं की पूर्ति करेगा और तीन विदेशी विशेषज्ञों को तीन वर्षों हेतु सहायतार्थ देगा। इसके लिए व्यय की सीमा भी निर्धारित की गई। सितम्बर १९५० ई० में भारत सरकार ने इस योजना को स्वीकार किया। उसने ९४,५०० रुपये प्रतिवर्ष खर्च स्वीकार किया और नेशनल फिजिकल लेबोरेटरी, दिल्ली में इसके लिए स्थान भी स्वीकार किया गया। १९५१ ई० में भारत सरकार ने इसके लिए एक सलाहकार समिति का गठन किया। इस समिति ने राष्ट्रीय प्रलेखन केन्द्र का कार्यक्षेत्र नेचुरल साइंस तक सीमित कर दिया। अतः इस सेन्टर का नाम इण्डियन नेशनल साइंटिफिक डाकुमेंटेशन सेन्टर' रखा गया, जिसको संक्षेप में इन्सडॉक (INSDOC) कहा गया। इस बैठक ने इसके उद्देश्यों को विस्तृत रूप में निश्चित किया।

**उद्देश्य एवं कार्य**—निम्न मुख्य उद्देश्य निर्धारित किये गये :—

(अ) देश के लिए उपयोगी सभी वैज्ञानिक सामयिकों को प्राप्त करना।

(आ) वैज्ञानिकों एवं अभियन्ताओं की रुचि के अनुकूल 'अब्सट्रैक्ट्स ऑफ पेपर्स' एक मासिक सामयिक निकालना, जिसका नाम बाद में 'इंस्डॉक लिस्ट' (INSDOC LIST) रखा गया है।

(इ) प्रलेखन सम्बन्धी वैज्ञानिक प्रश्नों का उत्तर देना।

(ई) पुस्तकालयों एवं विशेषज्ञों को निर्धारित एवं स्वीकृत दर पर लेखों के रिप्रोग्रैफ्स एवं अनुवाद की पूर्ति उनकी माँग पर करना।

(उ) यह केन्द्र राष्ट्र की वैज्ञानिक कृतियों (मुद्रित या अमुद्रित) का राष्ट्रीय भाण्डागार (नेशनल स्टाक) बने।

कार्य (Function)—इसके कार्यों को निम्नलिखित रूपों में स्पष्ट किया जा सकता है :—

(१) अद्यतन सामयिक जो बहुत महँगे हों, उनके विषयसूची के पृष्ठों की माइक्रोफिल्म कापी हवाई डाक से प्राप्त करना।

(२) हवाई डाक से माइक्रोफिल्म कापी के बजाय विषयसूची के पृष्ठों की प्रूफ कापी प्राप्त करना।

(३) लेखों की अनुवर्ग सूची बनाना, जिससे कि प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से देश में अनुसन्धान कार्य में सहायता मिल सके।

(४) पाक्षिक या मासिक उस अनुवर्ग सूची को छापना और उसको भाग लेने वाले विशेषज्ञों एवं अन्य पुस्तकालयों में भेजना।

(५) अनुवर्ग सूची में भाग लेने वाले पुस्तकालयों को पूर्ण अंकों के मिलने से पूर्व भेज देना।

(६) भारतीय विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत प्राकृतिक विज्ञानों के शोध ग्रन्थों की प्रलेखन सूची तैयार करना एवं उसे अद्यतन रखना।

(७) किसी भी सेवात्मक पुस्तकालय (Service Library) की माँग पर प्रलेखन सूची (उसके अभीष्ट विषय की) भेजना।

(८) किसी पुस्तकालय को उसकी माँग पर किसी विशेष लेख का रिप्रोग्राफ भेजना, जो कि उस पुस्तकालय में न हो और उसके उपयोगकर्त्ता के लिए आवश्यक हो।

(९) यदि देश में किसी लेख का रिप्रोग्राफ न मिल सके तो विदेशों के पुस्तकालय से भी उसके मँगाने की व्यवस्था करना।

(१०) अपने किसी भी सदस्य पुस्तकालय को उसकी माँग पर उसके किसी उपयोगकर्त्ता की सुविधा हेतु किसी लेख के अनुवाद को भी भेजने की व्यवस्था करना।

(११) सूची पत्रकों पर प्राकृतिक विज्ञानों से सम्बन्धित जितने भी सामयिक देश भर के पुस्तकालयों आदि में हों, उनका अद्यतन यूनियन कैटलॉग तैयार रखना, जिससे कि अनुवाद कार्य में सुविधा हो सके और किसी पुस्तकालय द्वारा किसी लेख के अनुवाद की माँग करने पर अथवा सुझाव माँगने पर सलाह दी जा सके कि मूल लेख उसके निकटतम किस पुस्तकालय में है।

(१२) प्राकृतिक विज्ञान सम्बन्धी प्रचलित भारतीय सामयिकों की सूची प्रकाशित करना।

(१३) उचित समय के अन्तर पर प्राकृतिक विज्ञान में प्रकाशित सामयिकों के नेशनल यूनियन कैटलॉग प्रकाशित करना, जिससे कि किसी भी पुस्तकालय को यह पता लग सके कि उसके सबसे निकट कौन सी पत्रिका किस पुस्तकालय में मिल सकती है।

(१४) पत्रकों (Cards) पर उन विषयों के सम्बन्ध में सूचना तैयार रखना, जिन विषयों पर अपने सदस्य-पुस्तकालयों में अनुसन्धान कार्य हो रहा हो।

**प्रकाशन**

(अ) इन्सडॉक लिस्ट का प्रथम अंक १ जून, १९५४ ई० को प्रकाशित हुआ। यह पाक्षिक था, जो प्रत्येक मास के १ तथा १६वीं तिथि को निकलता था। इसमें लगभग ६५० सामयिकों की लगभग २००० लेखों को वर्गीकृत करके दिया जाता था। यह १९६४ ई० से बन्द हो गया।

(आ) 'बिब्लियोग्रैफी ऑफ साइंटिफिक पब्लिकेशन्स ऑफ साउथ एण्ड साउथ ईस्ट एशिया' का प्रकाशन अप्रैल, १९५५ ई० से प्रारम्भ हुआ। इसका प्रथम अङ्क अप्रैल १९५५ ई० में प्रकाशित हुआ। यह पहले त्रैमासिक था, जिसे बाद में मासिक किया गया।

(इ) इण्डियन साइन्स अब्स्ट्रैक्ट, १९६५ ई०।

(ई) इण्डियन एजूकेशन अब्स्ट्रैक्ट, १९६९ ई०।

(उ) डाइरेक्टरी ऑफ साइन्स रिसर्च इन्फार्मेशन इन इण्डिया, १९६९ ।

(ऊ) एनल्स ऑफ लाइब्रेरी साइन्स ।

२७ फरवरी, १९७० ई० को एक रसियन समझौता के अनुसार इन्सडॉक ने 'रसियन साइन्टिफिक एण्ड टेकनिकल पब्लिकेशन्स' और 'कन्डेन्स्ड लिस्ट ऑफ सोसाइटी साइन्टिफिक पीरियाडिकल्स' नाम की दो सूचियाँ प्रकाशित करके लगभग ९०० वैज्ञानिक संस्थाओं को वितरित की थी ।

**आइस्लिक (IASLIC)**

**पूर्व इतिहास**—२१ जनवरी, १९४९ ई० को 'आल इण्डिया लाइब्रेरी कांफ्रेंस' नागपुर में सम्पन्न हुई । वहाँ 'इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स' बंगलोर के पुस्तकालयाध्यक्ष डॉ० जी० डी० काले ने यह प्रस्ताव किया कि एक 'स्पेशल लाइब्रेरी एसोसिएशन' बनाना चाहिये । डॉ० काले को यह विचार उनको मिस डिटमस (Miss Ditmos) से मिला, जो कि यू० के० की 'एसोसिएशन ऑफ स्पेशल लाइब्रेरीज एण्ड इन्फार्मेशन ब्यूरो' (ASLIB) की प्रेसीडेन्ट थीं । प्रस्तावक ने इसके संविधान की एक रूपरेखा तैयार करने की बात मान ली लेकिन कोई भी ड्राफ्ट उन्होंने प्रस्तुत नहीं किया । इसके बाद, १९५५ ई० में कलकत्ता के जे० शाहा, जी० बी० घोष और ए० के० मुकर्जी ने इस ओर प्रयास किया, जिससे राष्ट्रीय संग्रहालय (इण्डियन म्यूजियम) कलकत्ता के व्याख्यान कक्ष में ३ सितम्बर, १९५४ ई० को 'आइस्लिक' (IASLIC) की स्थापना हुई, जिसका पूरा नाम 'इण्डियन एसोसिएशन ऑफ स्पेशल लाइब्रेरीज एण्ड इन्फार्मेशन सेन्टर' (Indian Association of Special Libraries and Information Centre) है ।

**उद्देश्य एवं कार्य**—इसके निम्नलिखित उद्देश्य एवं कार्य हैं—

(अ) देश के विशिष्ट पुस्तकालयों एवं अन्य पुस्तकालयों में शोधकर्त्ताओं से सम्पर्क स्थापित करना और उनके भीतर प्रलेखन सम्बन्धी जागृति पैदा करना ।

(आ) औद्योगिक तथा अन्य व्यावसायिक गृहों, शोध संस्थाओं, सरकारी विभागों से सम्पर्क स्थापित करना और उनको अपने-अपने निजी पुस्तकालय स्थापित करने हेतु प्रेरणा देना, जहाँ से प्रलेखन कार्य एवं सेवा हो सके ।

(इ) विशिष्ट पुस्तकालयों की पत्रकों पर एक डाइरेक्टरी बना कर रखना, जिसमें यह भी दिखाया गया हो कि किस पुस्तकालय में प्रलेखन कार्य होता है और कहाँ नहीं होता है ।

(ई) किसी संस्था से जो शोधकर्त्ता सम्बद्ध न हों उनको भी यह सूचना देना कि देश में कहाँ-कहाँ उसके विषय की अध्ययन-सामग्री की सुविधायें उपलब्ध हैं और वह वहाँ के प्रलेखन सेवा से लाभ उठा सकता है । इसका प्रचार करना कि आइस्लिक ऐसे कार्यों में शोधकर्त्ताओं की सहायता प्रसन्नतापूर्वक करता है ।

(उ) देश में विभिन्न प्रलेखन संगठनों के उद्देश्यों एवं कार्यों में समन्वय स्थापित करना ।

**संगठन**—'आइस्लिक' ने अपने उद्देश्यों की पूर्ति हेतु निम्नलिखित विभाग बनाये हैं—

(अ) प्रलेखन
(आ) शिक्षा
(इ) प्रकाशन एवं प्रचार
(ई) पुस्तकालय एवं सूचना सेवा
(उ) सूचना पुनरुत्पादन एवं अनुवाद कार्य
(ऊ) पुस्तकालय-समन्वय एवं सहयोग

'आइस्लिक' ने १९६६-६७ ई० में छः माह का पार्टटाइम डिप्लोमा कोर्स प्रारम्भ किया, जिसका नाम 'ट्रेनिंग इन स्पेशल लाइब्रेरियनशिप एण्ड डाकुमेंटेशन' रखा। १९६७ ई० से ७० ई० तक पाठ्यक्रम एक वर्ष का कर दिया गया परन्तु सरकारी मान्यता न मिलने के कारण १९७० ई० में बन्द कर दिया गया।

आइस्लिक की ओर से रशियन और जर्मन भाषा सिखाने हेतु पार्ट टाइम कोर्स चलाये गये। कालान्तर में यह भी बन्द हो गया।

इस संस्था की ओर से माइक्रोफिल्म कापी एवं फोटोकापी की पूर्ति १९५८ ई० से १९७० ई० तक बराबर होती रही।

**प्रकाशन**—इस संस्था के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रकाशन निम्नलिखित हैं :—

(अ) 'इण्डियन लाइब्रेरी सर्विस अब्स्ट्रैक्ट (Abstract) का प्रकाशन, जो १९६७ ई० से प्रारम्भ किया गया।

(आ) आइस्लिक बुलेटिन का भी प्रकाशन १९५० ई० से होता आ रहा है।

(इ) इसकी रिपोर्ट, सेमिनार, कांफ्रेंस आदि भी समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं।

**इन्ससडॉक (INSSDOC)**

४ जनवरी, १९५९ ई० को 'सामाजिक विज्ञान में शोध' विषय पर डॉ० रंगनाथन की अध्यक्षता में एक पुस्तकालय सेमिनार हुआ जिसका आयोजन 'इण्डियन स्कूल ऑफ इण्टरनेशनल स्टडीज' और 'इण्डियन काउन्सिल ऑफ वर्ल्ड अफेयर्स' के संयुक्त सहयोग से किया गया। इसमें निम्नलिखित संस्तुतियाँ की गयीं :—

(१) एक राष्ट्रीय सामाजिक विज्ञान प्रलेखन केन्द्र की स्थापना की जानी चाहिये।

(२) इसका कार्य इन्सडॉक (INSDOC) की भाँति होना चाहिये।

१९६० ई० बंगलोर में डॉ० अप्पादुराई की अध्यक्षता में 'इण्टरनेशनल रिलेशन्स एण्ड रीजनल स्टडीज' विषय पर 'स्कूल ऑफ इण्टरनेशनल स्टडीज' की ओर से एक सेमिनार का आयोजन किया गया। इसमें भी संस्तुति की गई थी कि इण्टर-नेशनल रिलेशन पर एक केन्द्रीय पुस्तकालय स्थापित किया जाना चाहिये और १९५९ ई० में दिल्ली में 'लाइब्रेरी सेमिनार ऑन रिसर्च इन द सोशल साइन्सेज' के विषय

में जो संस्तुति की गई थी, उसकी पूर्ति हेतु इस केन्द्रीय पुस्तकालय का विकास किया जाय। इसके बाद कलकत्ता में १० फरवरी, १९६२ ई० को श्री बी० एस० केशवन की अध्यक्षता में 'इण्डियन लाइब्रेरी एसोसिएशन, की ओर से बिब्लियोग्रेफिकल कन्ट्रोल विषय पर एक सेमिनार का आयोजन भारत सरकार की प्रेरणा से किया गया। इसमें भी यह संस्तुति की गई थी कि सोशल साइन्स के विभिन्न विषयों पर विभिन्न एजेन्सियों द्वारा प्रलेखन कार्य एवं सेवा की व्यवस्था होनी चाहिये।

प्राकृतिक विज्ञान, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान इन तीनों के लिए प्रलेखन सम्बन्धी क्रिया-कलापों की देख-रेख हेतु एक समन्वय समिति होनी चाहिये। एक स्थायी सलाहकार समिति इसके लिए बनायी जानी चाहिये। इसके बाद श्री गिरिजा-कुमार की अध्यक्षता में लखनऊ में 'इण्डियन सोशल साइन्स डाकुमेंटेशन' विषय पर एक सेमिनार का आयोजन आइस्लिक (IASLIC) की ओर से किया गया जिसमें संस्तुति की गई थी :—

(अ) इन्ससडॉक (INSSDOC) का कार्य इन्सडॉक के समान ही होना चाहिये।

(आ) आइस्लिक को केन्द्रीय सरकार से INSSDOC सेन्टर स्थापित करने हेतु धन की माँग करनी चाहिये और भारत में सामाजिक विज्ञान के क्षेत्र में लागू प्रलेखन सेवाओं का सर्वेक्षण भी किया जाना चाहिये।

(इ) विश्वविद्यालय आयोग से अनुदान की माँग की जानी चाहिये जिसके द्वारा सामाजिक विज्ञान में प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं का यूनियन कैटलॉग बनाया जा सके।

इसी प्रकार १९६५ ई० में त्रिवेन्द्रम में और १९६७ ई० में दिल्ली में इसके सम्बन्ध में संस्तुतियाँ की गईं। इस कार्य की सफलता में निरन्तर विलम्ब होता रहा कि केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय ने १२ दिसम्बर, १९६८ ई० को एक प्रस्ताव द्वारा दिल्ली में 'इण्डियन काउन्सिल ऑफ सोशल साइन्स रिसर्च' (ICSSR) की स्थापना की। पहली अक्टूबर, १९६९ ई० को इस संस्था ने अपने अन्तर्गत एक 'प्रलेखन शाखा' की स्थापना की। श्री एन० एम० केतकर (सेन्ट्रल सेक्रेट्रिएट लाइब्रेरी) ने पार्ट टाइम कार्य करने हेतु इस शाखा का चार्ज लिया। १९६९ ई० के अन्त तक दो डाकुमेंटेशन ऑफीसर, चार सीनियर डाकुमेंटेशन असिस्टेन्ट का एक स्टाफ इस शाखा में हो गया। सर्वप्रथम गिरिजाकुमार से अनुरोध किया गया कि सोशल साइन्स के क्षेत्र में वर्तमान बिब्लियोग्रेफिकल सेवाओं का सर्वेक्षण करके सितम्बर, १९७० ई० तक अपनी रिपोर्ट दें।

सामाजिक विज्ञान में प्रलेखन कार्य हेतु मानक पारिभाषिक शब्दावली नहीं थी। कुछ विषयों जैसे 'कानून' में प्रलेखन का कार्य शब्दावली के बिना कठिन था। इसी तरह अनेक कठिनाइयाँ थीं। कुछ शब्दों के लिए उनके एक से अधिक शब्द भी प्रचलित थे। उनमें से कौन-सा पद लिया जाय और कौन-सा छोड़ दिया जाय, कौन-

कौन-सी लर्नेड पीरियाडिकल्स चुनी जायें, समाचार पत्रों से किस प्रकार के लेख लिए जायँ, अनुवाद करके देना और रिप्रोग्रैफी सर्विस ये सब कठिन कार्य थे। इनको करने हेतु धीरे-धीरे कदम उठाये गये। इनके लिए तकनीकी कर्मचारियों की आवश्यकता पड़ी। इसके साथ उनका चयन एवं प्रशिक्षण की समस्या भी थी।

प्रलेखन एवं सूचना सेवाओं के क्षेत्र की ओर भारत ने भी ध्यान दिया है। तदनुसार १९४२ ई० में काउन्सिल ऑफ साइंटिफिक ऐण्ड इन्डस्ट्रियल रिसर्च की, १९४८ ई० में परमाणु ऊर्जा आयोग की, १९५८ ई० में प्रतिरक्षा शोध एवं विकास संगठन तथा १९७१ ई० में एलेक्ट्रानिक्स आयोग का गठन किया गया। सरकार ने अनेक क्षेत्रों में विशेष अध्ययन और अनुसन्धान को बढ़ावा देने के लिए संस्थायें स्थापित की जिनमें से कुछ के नाम ऊपर दिये गये हैं। अनुसन्धान परिषदों के अतिरिक्त अनेक विभागों के शोधकार्य को बढ़ाने के लिए अनुदान भी दिये जा रहे हैं। कुछ निजी संस्थान जैसे इण्डियन डॉकुमेंटेशन सर्विस तथा इण्डियन एसोसिएशन आफ स्पेशल लाइब्रेरी एण्ड इन्फार्मेशन सेन्टर्स आदि संघ इसमें सहयोग दे रहे हैं। इस क्षेत्र में कार्यरत विदेशी, राष्ट्रीय, और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का सहयोग भी प्राप्त हो रहा है।

प्रलेखन और सूचना विज्ञान विषय का प्रशिक्षण भी अब भारतीय विश्व-विद्यालयों के पुस्तकालय विज्ञान विभाग में दिया जाने लगा है।

अतः प्रलेखन और सूचना विज्ञान के क्षेत्र में भारत की प्रगति मंद होते हुये भी संतोषजनक है।

इस प्रकार इस पुस्तक के द्वितीय भाग में प्रलेखन का सामान्य परिचय, उसकी परिभाषा, उद्देश्य, क्षेत्र और सूचना के प्रतिस्थापन और उसके विभिन्न माध्यमों का परिचय दिया गया हैं। इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए कैसा स्टाफ होना चाहिये, यह भी बताया गया है। विदेशों में तथा भारत में प्रलेखन कार्य का विकास कैसे हुआ और प्रमुख प्रलेखन केन्द्रों द्वारा किस प्रकार महत्त्वपूर्ण कार्य इस दिशा में हो रहे हैं, इसका भी दिग्दर्शन कराया गया है। इससे इस प्रलेखन कार्य की आवश्यकता और महत्ता स्वतः सिद्ध होती है। इस कार्य को आगे बढ़ाना और परस्पर सहयोग देना प्रत्येक राष्ट्रीय सरकार का पुनीत कर्त्तव्य है।

## प्रलेखन संस्थायें

विदेशों में तथा भारत में निम्नलिखित संस्थायें हैं जो प्रलेखन सेवा और सूचना सेवा के क्षेत्र में कार्य कर रही हैं :—

(१) इन्टरनेशनल इन्फार्मेशन सिस्टम फॉर एग्रीकल्चरल साइंस ऐण्ड टेक्नोलाजी।

(२) एसोसिएशन आफ स्पेशल लाइब्रेरीज ऐण्ड इन्फार्मेशन ब्यूरो (ASLIB) (UK)।

(३) प्रतिरक्षा विज्ञान सूचना एवं प्रलेखन केन्द्र (DESIDOG) भारत।

(४) प्रलेखन शोध और प्रशिक्षण केन्द्र (DRTC) भारत-बंगलोर।

(५) इण्डियन एसोसिएशन आफ स्पेशल लाइब्रेरीज ऐण्ड इन्फार्मेशन सेन्टर्स (IASLIC) भारत-कलकत्ता।

(६) इण्डियन काउन्सिल ऑफ सोसल साइन्स रिसर्च (ICSSR) भारत-दिल्ली।

(७) इण्डियन नेशनल साइन्टिफिक डॉकुमेन्टेशन सेन्टर (INSDOC) भारत-दिल्ली।

(८) भारतीय मानक संस्थान (ISI) भारत-दिल्ली।

(९) इण्टरनेशनल काउन्सिल आफ साइन्टिफिक यूनियन्स (ICSU) पेरिस।

(१०) इन्टरनेशनल फेडरेशन फॉर डॉकुमेन्टेशन (FID) हेग।

(११) इन्टरनेशनल फेडरेशन ऑफ लाइब्रेरी एसोसिएशन (IFLA)।

(१२) इन्टरनेशनल न्यूकलियर इन्फार्मेशन सर्विस (INIS) वियना।

(१३) नेशनल इन्फार्मेशन सिस्टम इन साइन्स ऐण्ड टेक्नोलॉजी (NISSAT) भारत-दिल्ली।

(१४) स्माल इन्टरप्राइजेज नेशनल डॉकुमेन्टेशन सेन्टर (SENDOC) भारत-हैदराबाद।

(१५) स्पेशल लाइब्रेरीज एसोसिएशन (SLA) अमेरिका।

(१६) यूनेस्को (UNESCO) पेरिस।

(१७) विनीती (VINITI) मास्को (USSR)।

(ऑल यूनियन इन्स्टीयूट ऑफ साइन्टिफिक ऐण्ड टेकनिकल इन्फार्मेशन) विनीती का नया नाम है।

Vsesouznii Institut Nauchnoii; Technicheskoi Informtsit (रूसी नाम)।

(१८) यूनाइटेड नेशन्स एजुकेशनल, साइन्टिफिक एण्ड कलचरल आर्गनाईजेशन (UNESCO)।

(१९) इरानियन डाकुमेन्टेशन सेन्टर, तेहरान (IRANDOC)।

(२०) पाकिस्तान नेशनल साइन्टिफिक ऐण्ड टेकनिकल डाकुमेन्टेशन सेन्टर। अब पाकिस्तान साइ० ऐण्ड टेक० इन्फा० सेन्टर (PANSDOC)।

(२१) थाई डाकुमेन्टेशन सेन्टर, बैंकाक (THAIDOC)।

(२२) इण्डियन नेशनल साइन्टिफिक डाकुमेन्टेशन सेंटर (INSDOC) नई दिल्ली।

□ □

# तृतीय भाग

# सूचना विज्ञान

## [ Information Science ]

**सूचना विज्ञान (Information Science)**

अध्याय १

# सूचना विज्ञान

## ( INFORMATION SCIENCE )

सूचना-विज्ञान अंग्रेजी के 'इन्फार्मेशन साइन्स' शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। सूचना शब्द का अर्थ साधारण रूप में प्रसिद्ध अर्थ से भिन्न है। पुस्तकालय के क्षेत्र में सूचना शब्द को विशेष अर्थ में ग्रहण किया जाता है। विज्ञान शब्द का अर्थ तर्कसंगत ज्ञान से है। यह एक नया विषय है। कुछ लोग इसको पुस्तकालय विज्ञान का विस्तार मानते हैं; इसके विपरीत कुछ विद्वान इसको ऐसा स्वतन्त्र अन्तर्विषयी क्षेत्र मानते हैं जिसका पुस्तकालय विज्ञान विषय से पृथक् अस्तित्व है। वस्तुतः पुस्तकालय विज्ञान और सूचना-विज्ञान के परस्पर सम्बन्ध परिवर्तनशील हैं। श्री **Eliahu Hoffman** ने सूचना की परिभाषा निम्नलिखित रूप में दी है—[1]

'सूचना, विवरणों या तथ्यों या आंकड़ों का वह समूह (संकलन अथवा संचय) है जो कि विवेक, तर्क, विचार, कल्पना या अन्य किसी मानसिक प्रक्रिया के रूप में आपस में वैचारिक आधार पर जुड़ी होती है।'

कुछ विद्वानों ने सूचना-विज्ञान की परिभाषायें अपने-अपने दृष्टिकोण से निम्नलिखित रूप में की हैं :—

'सूचना-विज्ञान एक नई वैज्ञानिक विधा है जो कि सूचना के स्वरूपों और सामान्यगुणधर्मों के साथ इसके क्रिया-कलापों तथा सभी संचार प्रक्रियाओं के संचालक नियमों से सम्बन्ध रखती है।'[2]

—ए० आई० मिखाइलोव

---

1. Information is an aggrigate (collection or accumulation) of statements or facts or figures which are conceptually (by way of reasoning, logic, ideas or any other mental mode of operations interrelated) connected.

—Eliahu Hoffman

2. Information Science is a new scientific discipline 'concerned with the patterns and general properties of science information as well as the laws governing all communication processes including those of science information activities.'

—A. I. Mikhailov

श्री हेराल्डबोर्को (Harold Borko) के अनुसार 'सूचना-विज्ञान एक विश्वस्त विधा है जो सूचना के गुणधर्मों और व्यवहार को अनुकूलतम रूप से लोगों तक पहुँचाने एवं उसकी उपयोगिता के लिए सूचना की प्रक्रियाओं के साधनों की खोज करती है। यह ज्ञान के उस अंग से संलग्न है जो कि सूचना के उदगम, संकलन, संगठन, संग्रहण और पुनर्प्राप्ति, व्याख्या, संप्रेषण, रूपान्तरीकरण और उपयोग से सम्बन्धित है। यह विज्ञान स्वाभाविक और कृतिम दोनों प्रणालियों से सूचना के प्रतिनिधित्व, प्रभावकारी-संदेश संप्रेषण के हेतु सांकेतिक भाषा (कूटभाषा) का उपयोग और सूचना प्रक्रियाओं की युक्तियों और तकनीकी विधियों जैसे कम्प्यूटरों और उनकी कार्यक्रमीय योजनाओं आदि की खोज को भी अपने में सम्मिलित करती है।'[1]

A. Rees and T. Saravic के अनुसार—'सूचना विज्ञान की तुलना प्रलेखन, सूचना पुनर्प्राप्ति, पुस्तकालयाध्यक्षता या अन्य किसी से नहीं हो सकती। जैसे भौतिक विज्ञान को अतिपरिपूर्ण अभियान्त्रिकी नहीं कहा जा सकता, इसी प्रकार सूचना पुनर्प्राप्ति या पुस्तकालयाध्यक्षता को सूचना-विज्ञान नहीं कहा जा सकता।'[2]

जे० एस० शेरा के अनुसार—'सूचना-विज्ञान शोध का क्षेत्र है जो कि सूचना के गुण-धर्मों, व्यवहार और प्रवाह को समझने के लिए अपना सार, विधियाँ

---

1. 'Information Science is a true discipline that investigates the properties and behaviour of information, and the means for processing information for optimum accessibility and usability. It is concerned with that body of knowledge relating to the origination, collection, organization, storage and retrieval, interpretation, transmission, transformation and utilization of information. This includes the investigation of information representations in both natural and artificial systems, the use of codes for efficient message transmission and the study of information processing devices and techniques such as computers and their programming systems.'

— Harold Borko

2. Information science 'cannat be equated with documentation, information retrieval, librarianship or anything else. Information science is not souped-up information retrieval or librarianship any more than physics is super-charged engineering.'

—A. Rees and T. Saravic

और टेक्निकल प्रविधियों को ज्ञान क्षेत्र की विभिन्न विधाओं से आहरित करता है। सूचना-विज्ञान पुस्तकालयाध्यक्ष के कार्य संचालन हेतु सैद्धांतिक और बौद्धिक आधार प्रदान करता है।'[1]

श्री सी० जी० विश्वनाथन के अनुसार—'सूचना-विज्ञान उन सिद्धान्तों और तकनीकों से सम्बद्ध है जिनके द्वारा संचालित होकर सुसंगठित विचार (ज्ञान) एक मानव से दूसरे मानव मस्तिष्क तक तथा अंततः समाज तक अन्तरित या संचरित होता है।'[2]

राबर्ट ए० फेयरथार्न के अनुसार—'सूचना विज्ञान परस्पर अन्तर्क्षेपित तकनीकों एवं प्रोद्योगिकियों से होकर विकसित हुआ है। यह सामान्य सिद्धान्तों के अनुप्रयोगों से होकर नहीं उभरा है। यह ऐसे ज्ञान और सेवाओं पर केन्द्रित है जिसकी आवश्यकता अन्य व्यक्तियों को प्रस्तुत प्रभावो लेख के रूप में पड़ती है और यह सामान्य सिद्धान्तों से विकसित विशिष्ट क्रिया-कलापों के संघात की अपेक्षा कहीं अधिक प्रोद्योगिकियों का एक संघ है।'[3]

---

1. Information science is an area of research which draws its substance, methods and techniques from a variety of disciplines to achieve an understanding of the properties, behaviour and flow of information....Information science contributes to the theoretical and intellectual base of the librarian's operations.

—J. H. Shera

2. Information science is concerned with the principles and techniques governing the transfer or communication of organised thought (knowledge) from one human to another, and ultimately to society.

— C G. Vishwanathan

3. "Information Science has come through overlapping techniques and technologies. It has not come from the application of common principles. It centres on the knowledge and services needed for effective discourse by other people, and is more a federation of technologies than a set of special activities developed from common principles."

—Robert A. Fairthorne

प्रोफेसर पी० वी० मंगला के अनुसार—'सूचना विज्ञान एक विद्या है जो सूचना के गुण-धर्मों और व्यवहार तथा उनके साथ-साथ सूचना के प्रभाव को प्रभावित करने वाले कार्यों का अध्ययन है।'[1]

Pauline Atherton के अनुसार—'सूचना विज्ञान एक मान्यताप्राप्त जटिल, बहुमुखी विद्यायुक्त विषय है। इसका क्षेत्र कम्प्यूटर, दूरसंचार साइबरनेटिक्स से—मनोविज्ञान, तर्क, वर्गीकरण की प्रविधियों और अनुक्रमणीयन तक फैला हुआ है। अतः सूचना कार्य और सूचना सेवा को संक्षेप रूप में परिभाषित किया जा सकता है कि यह व्यावसायिक विद्या अभिलिखित ज्ञान के संकलन, संग्रहण और स्थानान्तरण से सम्बन्धित है।'[2]

□ □

---

1. Information Science is 'a discipline which is concerned with the study of the properties and behaviour of information as well as the factors influencing the flow of information.'

—Prof. P. B. Mangla

2. Information Science is recognised as a complex multidisciplinary subject ranging from computer and tele-communications through cyburnetics to psychology, logic and techniques of classification and indexing, and as such the information work and information service may be defined briefly as proffessional disciplines concerned with the accumulations storage and transfer of recorded knowledge.

—Pauline Atherton

## अध्याय २

# सूचना वैज्ञानिक : व्यक्तित्व और गुण

सूचनाधिकारी (Information officer) या सूचना वैज्ञानिक (Information Scientist) उस व्यक्ति को कहते हैं जो कि किसी विशिष्ट पुस्तकालय या सूचना केन्द्र, सूचना संस्थानों की प्रकृति (Nature) और कार्य के अनुसार सूचना सुलभ करने का कार्य करते हैं। उसका एक विशेष पद होता है। वह पद महत्वपूर्ण और सम्मानित होता है। उसका मौलिक कार्य सूचना को सही ढंग से अर्थात् वैज्ञानिक विधि से उपयोगकर्त्ताओं को सुलभ कराने की व्यवस्था करना है। माँग किये जाने पर ही नहीं बल्कि माँग की सम्भावना को भी दृष्टिगत रखते हुये भी सूचना का चयन और प्रस्तुतीकरण करना उसका दायित्व होता है।

**गुण**

(१) सूचनाधिकारी/सूचना वैज्ञानिक में स्वाभाविक रूप से सूचना के स्रोतों का ज्ञान तथा सूचना चयन से विकीर्णन या प्रसार तक की प्रक्रियाओं में अभिरुचि होनी चाहिये।

(२) उसको मितभाषी होना चाहिये। अपनी बातों को संक्षेप में कहने की क्षमता और सोचने-विचारने तथा उन्हें व्यक्त करने की शक्ति स्पष्ट और निर्भीक होनी चाहिये।

(३) उसके मस्तिष्क की विचार-क्षमता तर्कपूर्ण (Logical) और विश्लेषणात्मक होनी चाहिये। साथ ही उसमें तत्क्षण निर्णय लेने की क्षमता भी होनी चाहिये।

(४) उसका व्यक्तित्व आकर्षक और उच्चकोटि का तथा प्रभावकारी होना चाहिये।

(५) उसमें सही, प्रामाणिक और सटीक सूचनायें सुलभ कराने में अभिरुचि होनी चाहिये। साथ ही आवश्यकता पड़ने पर विस्तृत जानकारी देने की क्षमता भी होनी चाहिये।

(६) उसको मनोवैज्ञानिक होना चाहिये और घबराहट से बचकर प्रत्येक उपयोगकर्त्ता को हैण्डिल करने की क्षमता होनी चाहिये।

(७) उसकी अभिव्यक्ति बिल्कुल स्पष्ट, निर्विवाद और भ्रमरहित होनी चाहिये।

(८) उसको मृदुभाषी तथा व्यवहार कुशल होना चाहिये। उसके व्यवहार से ऐसा लगना चाहिये कि सूचना प्रदान करने में वह हार्दिक अभिरुचि लेता है।

**योग्यता**

उपर्युक्त गुणों के अतिरिक्त सूचनाधिकारी में निम्नलिखित योग्यता होनो चाहिये।—

(१) उसको उस विषय का पूर्ण ज्ञान होना चाहिये जिस विषय में वह कार्यरत हो। उस विषय के प्राविधिक और पारिभाषिक पदों का भी ज्ञान उसे होना चाहिये।

(२) अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त उसको अधिक से अधिक विदेशी भाषाओं यथा अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रूसी और जापानी आदि का भी ज्ञान होना चाहिये।

(३) सूचना विज्ञान में विशेष प्रशिक्षण के साथ ही वह पुस्तकालय विज्ञान में भी प्रशिक्षित हो तो अधिक उपयुक्त रहेगा।

(४) उसको टेकनिकल विधियों जैसे अनुक्रमणिका बनाने, सारांश लिखने और रिपोर्टों को लिखने आदि का प्रैक्टिकल अभ्यास होना चाहिये।

**सम्मान**

पुस्तकालय की सामान्य सन्दर्भ सेवा से विशेष अध्ययनकर्त्ताओं, अनुसन्धान-कर्त्ताओं और विषय बिशेषज्ञों का कार्य नहीं चल सका तो उन्होंने स्वयं प्रलेखों आदि की अनुक्रमणिका आदि बनाने का कार्य प्रारम्भ किया किन्तु इन कार्यों का टेकनिकल ज्ञान न होने के कारण वे सफल न हो सके। वे विषय विशेषज्ञ होने के कारण अपने को पुस्तकालय-अध्यक्षों से श्रेष्ठ मानते रहे, उधर जब सूचना विज्ञान में प्रशिक्षित सूचनाधिकारी आये तो वे भी कम वेतन और कम सम्मान वाले पुस्तकालय-अध्यक्षों से अपने को उच्चतर (सुपीरियर) समझने लगे। उनका क्षेत्र सीमित होने और उस क्षेत्र में सूचनाओं के स्रोतों, चयन तथा उनके संग्रहण और प्रकोर्णन (प्रसार) की उन्नत और सूक्ष्म विधियों तथा यांत्रिक विधियों के ज्ञान और प्रयोग के कारण उनका महत्व और सम्मान बढ़ गया।

इसी प्रसंग में सूचना सेवा और सन्दर्भ सेवा के अन्तर को तथा सूचना सिद्धान्त को भी समझ लेना चाहिये।

## सूचना सेवा और सन्दर्भ सेवा

प्रत्येक पुस्तकालय में सन्दर्भ सेवा (रिफ्रेंस सर्विस) किसी न किसी रूप में दी जाती है। मध्यम श्रेणी के पुस्तकालय में इस कार्य को सन्दर्भ सहायक करता है। बड़े पुस्तकालयों में सन्दर्भ सेवा का अलग विभाग होता है। वहाँ सन्दर्भ पुस्तकालयाध्यक्ष अपने समस्त सन्दर्भ ग्रन्थों को सुव्यवस्थित कर के अपने स्टाफ के सहित बैठता है। वहाँ इन्क्वायरी डेस्क पर टेलीफोन तथा रेडी रिफ्रेंस के कुछ ताजे संस्करण वाले सन्दर्भ ग्रन्थ रखे रहते हैं। जिज्ञासु व्यक्ति (Inquairer) जो प्रश्न पूछते हैं उनका उत्तर दिया जाता है। यह एक मानवीय सेवा है जिसमें पाठकों को उनके अध्ययन और अनुसन्धान में सहानुभूतिपूर्वक सहायता की जाती है।

सन्दर्भ सेवा में पाठकों को उनकी अभीष्ट सूचनायें दी जाती हैं। अतः सन्दर्भ सेवा और सूचना सेवा में अन्तर का जानना आवश्यक है।

| सन्दर्भ सेवा | सूचना सेवा |
| --- | --- |
| १—यह परम्परागत व्यक्तिगत सेवा के रूप में मानी जाती है। | १—परम्परा के विपरीत अधिकतम लोगों को सेवा सुलभ करना इस सेवा का उद्देश्य होता है। |
| २—इस सेवा में सम्बन्धित प्रलेख को सुलभ करने पर बल दिया जाता है। | २—इस सेवा में ज्ञान को पूर्णरूप से सुलभ करने पर बल दिया जाता है। |
| ३—इसके अन्तर्गत जिज्ञासु को ज्ञान सामग्री या पाठ्य सामग्री को ओर निर्देश दिया जाता है और जिज्ञासु को वांछित सामग्री दे दी जाती है। आगे उसको स्वयं खोजना होता है। | ३—इस सेवा में जिज्ञासु की अभीष्ट सूचना को पूर्ण रूप से तैयार कर के प्रदान करने का प्रयास किया जाता है। |
| ४—इस सेवा में जिज्ञासु द्वारा माँग किये जाने या पूछे जाने पर सूचना प्रदान की जाती है। | ४—इस सेवा में जिज्ञासु द्वारा माँग किये जाने की प्रत्याशा (In anticipation of Demand) में भी सूचना प्रदान किये जाने की व्यवस्था पर बल दिया जाता है। |
| ५—इस सेवा में सन्दर्भ विभाग के द्वारा यह आशा की जाती है कि जिज्ञासु स्वयं आकर या लिखकर वांछित सूचना माँगेगा। | ५—इस सेवा में उपयोगकर्ताओं/जिज्ञासुओं को यथासम्भव पूर्ण और नवीनतम सूचना सुलभ कराने पर बल दिया जाता है। |

इस प्रकार दोनों सेवाओं में अन्तर होते हुये भी यदि सन्दर्भ विभाग, सूचना केन्द्रों की भाँति कार्य करता है तो यह सेवा सूचना सेवा कही जा सकती है। डॉ० रंगनाथन ने इसीलिए सूचना विज्ञान को सन्दर्भ सेवा का आदर्श और उच्चतम परिष्कृत रूप माना है।

## सूचना सिद्धान्त (Information Theory)

द्वितीय युद्ध के बाद ज्ञान के क्षेत्र में आशातीत विस्तार हुआ है। विश्वविद्यालयों और औद्योगिक संस्थानों की संख्या में भी उत्तरोत्तर विकास हुआ है और हो रहा है। ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में विशेष रूप से अध्ययन और अनुसन्धान हो रहे हैं। व्यवसायी वर्ग अपने-अपने क्षेत्र में एक दूसरे से आगे बढ़ जाने की होड़ और ललक में लगा हुआ है। इसमें सफल होने के लिए वे अपने-अपने उद्योग और व्यवसाय

में हुई नई और ताजी सूचनायें चाहते हैं। सूचना नई हो, यथेष्ट हो और प्रामाणिक हो तथा सुलभ हो तभी वे सहायक सिद्ध हो सकती हैं। यह कार्य दूर के नहीं अपितु अपने निकट के ही पुस्तकालय या सूचना केन्द्र से सम्भव हो सकता है। अतः अधिकांश व्यावसायिक और औद्योगिक संस्थानों ने अपने परिसर में ही सूचना केन्द्रों की स्थापना की और इसमें अपने-अपने व्यवसाय में सहायक सूचना सामग्री का संग्रह कराने लगे। उनमें सूचना वैज्ञानिक (Information Scientist), प्रलेखन अधिकारी (Document Officer) और सूचनाधिकारी (Information Officer) नियुक्त किये जाने लगे। नवीनतम सूचना-सामग्री का संग्रह उनमें हो तथा अपने व्यवसाय एवं उद्योग के लिए उपयोगी सूचना का चयन और प्रस्तुतिकरण उनका प्रमुख कार्य हो गया। ये सूचनाधिकारी प्रलेखों (Documents) को पढ़कर उनका विश्लेषण करने के बाद ताजी और प्रामाणिक सूचना को उपयुक्त उपयोगकर्त्ताओं के लिए समुचित प्रक्रिया द्वारा शीघ्रातिशीघ्र प्रस्तुत करते है। वे ऐसी चयनित सामग्री को प्रलेखन पत्रिकाओं और सूचना बुलेटिनों में प्रकाशित भी करते हैं जिससे अपने संस्थान के इस दिशा में कार्य करने वाले लोग उनका उपयोग कर सकें।

इसी प्रकार विश्वविद्यालयों तथा उच्च संस्थानों में भी विशेष अध्ययन और अनुसंधान में लगे विद्वानों के लिए भी शोध पुस्तकालयों और सूचना केन्द्रों की व्यवस्था की जाती है। वहाँ भी नवीनतम और प्रामाणिक सूचना को द्रुतगति से इन सब व्यक्तियों को सुलभ कराया जाता है जिनके लिए उनकी उपयोगिता होती है।

## सूचना का उपयोग

विभिन्न स्रोतों से उपलब्ध और उपयोग योग्य सूचनाओं का उपयोग पूर्णरूप से होना आवश्यक है। यदि ऐसा नहीं होता तो उनकी तैयारी पर किया गया समय और श्रम व्यर्थ हो जायेगा। अतः प्रत्येक सूचना प्रदायक सूचना केन्द्र को यह देखना चाहिये कि वह ज्ञान क्षेत्र के जिस या जितने क्षेत्र को सूचना सेवा के लिए अपनाते हैं उनके उपयोगकर्त्ताओं द्वारा सूचनाओं का भरपूर उपयोग होता है या नहीं ? यदि उपयोग नहीं हो पा रहा है तो कहाँ त्रुटि है। इसके लिए यह जानने का प्रयास करना चाहिये कि उपयोगकर्त्ताओं को किस प्रकार की सूचना चाहिये। इसके लिए उपयोगकर्त्ताओं का साक्षात्कार करना, सूचना केन्द्रों में प्राप्त होने वाली माँगों या जिज्ञासाओं को देखना-समझना चाहिये। साथ ही यह भी देखना चाहिये कि सूचना के स्तर और उपयोगकर्त्ताओं के स्तर में अन्तर तो नहीं है।

(१) इस प्रकार सूचना की आवश्यकताओं को समझने के बाद उनके उपयोगकर्त्ताओं को संक्षिप्त प्रशिक्षण दिया जाय। उसमें उनको सूचनाओं के उपयोग की विधि बताई जाय।

(२) अनुक्रमणिकाओं का उपयोग करना सिखाया जाय।

(३) सूचना केन्द्र द्वारा सूचना उपयोगकर्त्ताओं और सूचना वैज्ञानिकों को आमन्त्रित करके विचार गोष्ठी (सेमिनार) का आयोजन किया जाय। उसमें अपनी-अपनी कठिनाइयों पर विस्तारपूर्वक विचार-विमर्श किया जाय।

(४) सूचना केन्द्रों द्वारा सूचनाओं के उपयोगकर्त्ताओं के मार्ग दर्शन के लिए कुछ मार्गदर्शक प्रकाशन भी छापे जायें। जैसे, एजुकेशन एण्ड ट्रेनिंग ऑफ यूजर्स ऑफ सान्टिफिक एण्ड टेकनिकल इन्फार्मेशन आदि।

(५) राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सूचना संस्थाओं द्वारा बड़े स्तर पर कार्यक्रमों का आयोजन करके उपयोगकर्त्ताओं को टेकनिकल सहायता और सूचना सहयोग प्रदान किया जाय। उपयोगकर्त्ताओं को सूचना-सामग्री को दिखाकर उनके उपयोग करने की विधि बताई जाय। विशेष अध्ययन और अनुसन्धान में लगने पर प्रारम्भ में ही ऐसे लोगों का एक शिक्षण कार्यक्रम चलाया जाय जिसमें उनको प्रारम्भ से ही सूचना सामग्रियों का परिचय और उनकी उपयोग विधियों को सिखाया जाय और थोड़ा अभ्यास भी कराया जाय। इस प्रकार उपयोगकर्त्ताओं द्वारा सूचनाओं का भरपूर उपयोग होना सम्भव हो सकेगा।

□ □

अध्याय ३

# सूचना केन्द्र की कार्यविधि

सूचना के संचार के पूर्व प्रलेखन केन्द्र में जो कार्य-प्रवाह[1] है उसकी परम्परागत विधि क्या है? इसका जानना आवश्यक है। यह विधि लगभग इस प्रकार है :—

सब वैज्ञानिक साहित्य जो प्रलेख के रूप में है—संस्थान के टेकनिकल पुस्तकालय में प्राप्त होता है। उनको वहाँ से प्रलेखन इकाई को भेज दिया जाता है। ऐसा मानकर चलें कि वहाँ पर्याप्त संख्या में विषय विशेषज्ञ काम कर रहे हैं। वे लोग सब प्रकार के साहित्य का, जो काम का है, उपयोगी है, उसका संश्लेषण (Condensation) करने की कला से परिचित हैं। वे रिसर्च पेपर का सूचनात्मक सार तथा उपयोगी लेखों का संकेतात्मक सार उद्धरण पद्धति के अनुसार तैयार करते हैं। उनके पास इस काम के लिए १५ सेमी० × १० सेमी० के सादे कार्ड रहते हैं। विषय विशेषज्ञ टाइटिल के 'की वर्ड' (Key word) को भी सूचीटर्म अनुक्रमणी के लिए मार्क कर देते हैं। जहाँ 'की वर्ड' सही नहीं बैठते वहाँ विषय कार्ड पर अतिरिक्त 'की वर्ड' लिख देते हैं। इस तरह विषय विशेषज्ञों द्वारा जाँच पड़ताल और निरीक्षण कर लेने से कार्यप्रवाह नियन्त्रित हो जाता है। तब वह सब जर्नल जल्दी प्रलेखन अनुभाग को वापस भेज दिये जाते हैं, जहाँ उन पर अन्य प्रक्रिया की जा सके। CAS लिस्ट को प्रकाशित होने में विलम्ब न हो इसलिए विषय विशेषज्ञों की नियुक्ति और वेतन आदि के लिए पर्याप्त फण्ड होना चाहिये। विषय विशेषज्ञों द्वारा तैयार कार्डों के रंगीन गाइड कार्डों को आवश्यकतानुसार यथास्थान लगा कर पूर्व निर्धारित क्रम में व्यवस्थित (Arrange) कर लिया जाता है। फिर उन व्यवस्थित कार्डों को लेकर टाइपिस्ट उनका स्टेन्सिल काट कर साइक्लोस्टाइल होने पर शीट्स को स्टिच करके CAS लिस्ट या बुलेटिन के रूप में सरकुलेट कर दिया जाता है। प्रायः सूचना केन्द्रों में यही प्रक्रिया सामान्य रूप में अपनाई जाती है।

व्यवस्थित कार्डों पर संलेख (Entry) की गई व्यवस्थित कार्ड सूची एक फाइल के रूप में है जिसको सेन्ट्रल इन्फार्मेशन फाइल पद (Term) दिया जा सकता है। उन कार्डों को किसी वर्गीकरण पद्धति से विषयानुसार वर्गीकरण करके विषय-क्रम (सब्जेक्टवाइज) से लगाकर रखा जा सकता है। इससे सूचना संग्रहण और पुनर्प्राप्ति में कुछ सहायता मिल सकती है।

---

१. परस्पर जुड़े कार्य प्रवाह (Integrated Work Flow)

इस परम्परागत विधि में थोड़ा सुधार करके समय, श्रम और धन की बचत करते हुये प्रभावकारी सूचना सेवा प्रदान की जा सकती है। वह विधि इस प्रकार है।

आने वाले सामयिकों (Periodicals) का जब परीक्षण और जांच पड़ताल (Scanning) हो जाय तो उनमें विद्यमान अभीष्ट लेखों पर उद्धरण, सारणीयन आदि के लिए टिक मार्क कर दिया जाय। वाङ्मयात्मक उद्धरण के लिए स्टार मार्क कर सब चिह्नित मैटर को लेजर पेपर के बजाय सीधे स्टेन्सिल पेपर पर टाइप के लिए भेज दिया जाय। ये साइक्लोस्टाइल शीट्स सीधे करेन्ट अवेयरलेस बुलेटिन में स्टिच कर दी जाये और जिनको आवश्यकता हो उनमें वितरित कर दी जायें। यह नवीनतम विषय सामग्री के समान CAS के रूप में सेवा करेगी। उसके बाद उन साइक्लोस्टाइल शीट्स की अनुक्रमणिकाकार के पास यूनीटर्म इन्डेक्स में पोस्टिंग के लिए भेज दिया जाय।

इनका उपयोग सेन्ट्रल इन्फार्मेशन फाइल में कार्ड के रूप में होगा। साइक्लोस्टाइल मैटर को कैंची से काटकर २० सेमी० × ०२.५ सेमी० आकार के मोटे कार्डों पर चिपका दिया जाय। एक कार्ड पर केवल एक संलेख (Entry) चिपका दिया जाय। अब CIF और यूनीटर्म इण्डेक्स SDI सेवा के आधार के रूप में होंगे। CIF सब्जेक्ट प्रोफाइल के रूप में होगा। यूनीटर्म कार्ड CIF के इण्डेक्स के रूप में काम करेगा। लेख के सार को CIF कार्ड की पीठ पर टाइप कर देने से कोई भी उपयोगकर्त्ता उसे पढ़कर अपने टॉपिक के सम्बन्ध में स्पष्ट धारणा बना सकता है कि उससे उसका अपने अध्ययन या खोज में मदद मिल सकती है या नहीं।

□ □

अध्याय ४

# सूचना संग्रहण और पुनर्प्राप्ति

## ( INFORMATION STORAGE AND RETRIEVAL )

सामान्य रूप से सूचना विज्ञान के क्षेत्र में सूचना का अभिप्राय लेखक द्वारा किसी विषय पर व्यक्त विचार से है। उसको सूचना सामग्री में से खोजकर एकत्र करना और टेकनिकल विधि से उपयोग योग्य बनाना 'सूचना संग्रहण और पुनर्प्राप्ति' कहलाता है।

प्रलेखन और सूचना केन्द्रों के द्वारा तीन कार्य किये जाते हैं :—

(१) आगत प्रलेखों, सूचना स्रोतों को ध्यान-पूर्वक पढ़कर उपयोगी सामग्री को छाँटना।

(२) उच्च कोटि की छाँटी गई सामग्री का विवरण तैयार करना।

(३) उनको सुव्यवस्थित करके रखना और उपयोगकर्त्ता जिस रूप में चाहे उसको न्यूनतम समय में सुलभ करना।

यहाँ टेकनिकल विधि के सन्दर्भ में इतना जान लेना आवश्यक है कि सूचना संग्रहण (Information Storage) (SR) और सूचना संग्रहण और पुनर्प्राप्ति (Information Storage and Retrieval) (ISR) में दोनों पद (Term) सूचना विज्ञान के कार्य के बोधक हैं। प्रथम पद अर्थात् (Storage) का प्रयोग काल्विन मूर्स ने प्रलेखन के कार्य-कलापों को सूचित करने के लिए किया क्योंकि Storage (संग्रहण) विज्ञान के बिना Retrieval (पुनर्प्राप्ति) कैसे हो सकती थी। अतः उस पद को संशोधित करके Information Storage and Retrieval पद (Term) को स्थापित किया गया तो इन दोनों पदों (SR, ISR) के पद बोध में थोड़ा परिवर्तन हो गया। दोनों का प्रयोग अब यान्त्रिक पुनर्प्राप्ति (Mechanical Retrieval) या वास्तविक पुनर्प्राप्ति प्रक्रिया (Actual Retrieval Process) के सीमित अर्थ या भाव (Sense) में होने लगा।

### परिभाषा

सूचना पुनर्प्राप्ति (Information Retrieval) की परिभाषा निम्नलिखित है :—

संग्रह करके संचित सूचनाओं में से विषयानुसार किसी विशिष्ट विषय पर सूचना की खोज करके निकालना सूचना पुनर्प्राप्ति कहलाता है।[1]

---

1. "Searching and retrieval of information from storage according to specification by subject." —Calvin Moores

विषय के अनुसार विशिष्टीकृत प्रलेखों तक पहुँच करने की तथा उससे सम्बन्धित किसी भी विधि (युक्ति) और क्रिया को सूचना पुनर्प्राप्ति कहते हैं।[1]

इससे स्पष्ट है कि सूचना संग्रहण और पुनर्प्राप्ति एक प्रक्रिया (Process) है। इस प्रक्रिया में उपयोगकर्त्ताओं के लिए उपयोगी सूचनाओं के प्रलेखों का संग्रह किया जाता है तथा संग्रहीत प्रलेखों में विद्यमान सूचनाओं में से उपयोगकर्त्ताओं को उनके लिए अभीष्ट सूचना पुनर्प्राप्ति करके दी जाती है।

सूचना संग्रहण और पुनर्प्राप्ति प्रक्रिया को अपनाने से पहले अपने सूचना केन्द्र/प्रलेखन केन्द्र की वित्तीय क्षमता एवं समर्थता पर विचार करना चाहिये। उसके बाद अपने उपयोगकर्त्ताओं की आवश्यकता और उनके शैक्षिक स्तर को ध्यान में रखकर तब उसी के अनुकूल सूचना सामग्री का चयन और संग्रह करना चाहिये। ऐसा करने से ही सूचना सेवा सफल हो सकेगी।

## प्रकृति (Nature)

सूचना संग्रहण और पुनर्प्राप्ति की प्रक्रिया पर विचार करने के साथ उसकी प्रकृति पर भी विचार किया जाना चाहिये। इसके अन्तर्गत यह निश्चित कर लिया जाता है कि उपयोगकर्त्ता को मूल प्रलेख या उसकी प्रतिलिपि देना है या उसके प्रश्न का केवल उत्तर देना है अथवा उपयोगकर्त्ता को केवल आँकड़ों में सूचनायें देनी हैं। इस प्रकार प्रकृति का निश्चय कर लेने के बाद प्रलेखों की अनुक्रमणी बनाने में अनुक्रमणीकार को अनुक्रमणी की पद्धतियों में से कौन-सी पद्धति अपनाई जाय इसके निर्धारण में सहायता मिलेगी।

## प्रक्रिया (Process)

सूचना संग्रहण और पुनर्प्राप्ति सम्बन्धी कुछ प्रक्रिया होती है। इसके अन्तर्गत मुख्य रूप से चार चरण (Steps) होते हैं।

(१) अभिलेखन (Recording)

(२) संग्रहण (Storage)

(३) अभिज्ञान या पहचान (Identification)

(४) प्रस्तुति (Presentation)।

**(१) अभिलेखन**—इस प्रक्रिया के अन्तर्गत सूचना सामग्री में विद्यमान विषय का विश्लेषण (Analysis) किया जाता है। इससे विषयों का विभाजन हो जाता

---

1. "Retrieval is essentially concerned with the structure and operation of devices to select documentary information........"
—Vickery

है। यही विभाजन खोज का आधार बनता है। इसके बाद उसके प्रकाशन सम्बन्धी विवरणों को सूचीबद्ध कर लिया जाता है।

(२) संग्रहण—इस प्रक्रिया के अन्तर्गत अभिलेखनकृत क्रम के अनुसार उन सूचनाओं का संग्रह किया जाता है।

(३) अभिज्ञान या पहचान—इस प्रक्रिया के अन्तर्गत उसके उस विषय या टॉपिक का मानक वर्गीकरण पद्धति और मानक विषय शीर्षक सूचियों के द्वारा मान्य पद (Term) और विषय शीर्षक (सब्जेक्ट हेडिंग) भी निर्धारित कर लिया जाता है जिससे विश्लेषणकृत विषयों तथा उससे सम्बन्धित उप-विषयों आदि की स्पष्ट पहचान हो सके।

(४) प्रस्तुति—इस प्रक्रिया के अन्तर्गत उपयोगकर्त्ताओं की मांग के अनुसार अभीष्ट सूचना प्रस्तुत की जाती है। इस प्रक्रिया में सूचना जिस सूचना सामग्री में रहती है उसकी खोज अनुक्रमणिका को देख कर आसानी से कर ली जाती है।

□ □

अध्याय ५

# पद्धतियाँ और प्रविधियाँ

## ( SYSTEMS AND TECHNIQUES )

इस शीर्षक के अन्तर्गत सूचना विज्ञान में सहायक दो विषयों पर विचार किया जायेगा :—

(१) वर्गीकरण पद्धतियां (Classification Systems)

(२) प्राविधिक अनुक्रमणिकायें (Technical Indexes)

इनका सामान्य परिचय इस प्रकार है :—

**(१) वर्गीकरण पद्धतियाँ**—पुस्तकालयों में पुस्तकों को विषयों के अनुसार वर्गीकरण करके रखने के लिए कई पुस्तक वर्गीकरण पद्धतियों का आविष्कार हुआ है। इन पद्धतियों में से कुछ का निरन्तर विकास और सुधार भी होता रहा है। इसका लक्ष्य यह है कि लिखित ज्ञान के विस्फोट को नियन्त्रित करना सार्वभौम समस्या बन गई है। अतः वर्गीकरण पद्धति ऐसी हो जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार्य हो। यह पद्धति ऐसी हो जो केवल पुस्तकों को ही नहीं प्रलेखों के वर्गीकरण, सूचीकरण और अनुक्रमणीयन (Indexing) और व्यवस्थापन में उपयोग की जा सके। वह सार (Abstract) का वर्गीकरण कर सके। वह वाङ्मयसूचियों और संदर्भ सूचियों में विषय के अनुसार अलगाव कर सके। ऐसी वर्गीकरण पद्धति की आवश्यकता इसलिए है क्योंकि इसके द्वारा वर्गीकृत व्यवस्थापन (क्लैसीफाइड अरेंजमेन्ट) में बुलेटिनों में सार संक्षेप (Abstracts) को सबसे अधिक लोकेशन की आवश्यकता की पूर्ति होती है। इससे उस तक उपयोगकर्त्ताओं को पहुँच भी सुलभ हो जाती है। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर परिगणित वर्गीकरण पद्धतियां जिनमें रेडीमेड वर्गांक दिये हैं—जैसे ड्यूई की दशमलव वर्गीकरण पद्धति उपयोगी नहीं हो सकती। इसके लिए विषयों की सपक्ष (Faceted) विवेचित वर्गीकरण पद्धति होनी चाहिये।

इसके लिए वर्तमान समय में यूनिवर्सल डेसिमल क्लैसीफिकेशन (UDC) और डॉ० रंगनाथन की कोलन पद्धति उपयोगी सिद्ध हुई है। UDC का विस्तार होने पर भी वह अभी प्रलेखों के वर्गीकरण के लिए पूर्णरूप से सक्षम नहीं हो सकी है। अतः अब भी उसका संशोधन जारी है। जहाँ तक कोलन पद्धति का प्रश्न है वह UDC की अपेक्षा अधिक सक्षम है किन्तु इसका भी संशोधन होते रहना अनिवार्य है। इसका कारण यह है कि आज प्रलेख (Documents) इतने मिश्रित और अन्तर्विषयी आख्या (Titles) से छप रहे हैं कि उनका सूक्ष्म वर्गीकरण करना दुष्कर हो रहा है। डॉ० रंगनाथन जब विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष थे, उसी

बीच अलीगढ़ विश्वविद्यालय में आयोजित एक सेमिनार में आये थे। DC के संशोधन के प्रसंग में मेरे एक प्रश्न का उत्तर देते हुये उन्होंने कहा था कि "DC और UDC की तो बात ही छोड़िये। वे तो अभी ही प्रलेखों के वर्गीकरण में असफल हैं। कोलन पद्धति का भी यदि संशोधन और परिवर्धन न होता रहा तो अगले सौ वर्षों के बाद वह भी प्रलेखों के वर्गीकरण में असफल हो जायेगी।"

प्रलेखों के वर्गीकृत व्यवस्थापन में स्वतन्त्र रूप से सूचना पुनर्प्राप्ति योग्य होने के लिए गाइड के रूप में एक अनुवर्ण अनुक्रमणिका (Alphabetical Index) का होना अनिवार्य है। इसके लिए फिलहाल UDC के संशोधित संस्करण और कोलन वर्गीकरण पद्धति में से जो अपने प्रलेखन केन्द्र के लिए अनुकूल हो उसे अपनाया जा सकता है।

**(२) प्राविधिक अनुक्रमणिकायें (Technical Indexes)**—वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी आदि विषयों पर विपुल मात्रा में विभिन्न माध्यमों से सूचनायें प्रकाश में आ रही हैं। आज विश्व में ७२,००० पत्रिकायें (जर्नल) प्रकाशित हो रही हैं। आज विद्वत-समितियों (Learned Societies) की लगभग ३०,००० उपयोगी पत्रिकायें छप रही हैं। उनमें लगभग २ करोड़ लेख प्रतिवर्ष विज्ञान और प्रौद्योगिकी विषयों पर छपते हैं। वार्षिक रिपोर्टों और पुस्तकों तथा पुस्तिकाओं की संख्या अलग है। साहित्य के इस विपुल उत्पादन को 'सूचना विस्फोट' (Information Explosion) कहा जाता है। उपयोगकर्त्ताओं, विद्वानों और शोधकर्त्ताओं तक उनका विकीर्णन (Dissemination) के लिए आवश्यक है कि उन सूचनाओं का प्रभावकारी विधि से नियन्त्रण किया जाय। इसमें विलम्ब से बचने के लिए 'सूचना संग्रहण और पुनर्प्राप्ति पद्धतियाँ' आवश्यक हैं।

सूचना के इस प्रवाह के ज्वार की रोकथाम के लिए भगीरथ प्रयास की आवश्यकता है। इसके लिए कुछ सूचना संग्रहण और पुनर्प्राप्ति पद्धतियाँ (ISR Systems) विकसित हुई हैं और उपयोग में भी लाई जा रही हैं। इनमें से कुछ कम्प्यूटराइज्ड (Computerised) सूचना पुनर्प्राप्ति पद्धतियाँ भी हैं। परम्परागत कार्ड कैटलॉग से लेकर आधुनिक on-Line Retrieval System तक सभी पद्धतियों में Key-Words का चुनना आवश्यक है। अनुक्रमणिका (Index) के आधार पर ही अपने अभीष्ट विषय तक पहुँच हो सकती है। इसलिए अनेक अनुक्रमणिका पद्धतियों का निर्माण हुआ है जो उपयोग में आ रही हैं।

अनुक्रमणीयन एक पद आधारित प्रक्रिया है। इसका लक्ष्य प्रलेख में चर्चित सभी सम्बन्धित टॉपिक का समीप से पहिचान करना और उनका वर्णन करना है। प्राचीन काल में किसी ग्रन्थ में आये हुये सब शब्दों को अनुवर्ण (Alphabetical) क्रम से व्यवस्थित कर ग्रन्थ में जहाँ-जहाँ वे शब्द आये हों उनके पृष्ठों का अंक या अन्य रूप में सन्दर्भ दे देते थे। जैसे 'वैदिक वर्ड कन्कार्डेन्स' आधुनिक अनुक्रमणिकी पद्धति उसी का परिष्कृत और विकसित रूप है।

सूचना संग्रहण और पुनर्प्राप्ति में अनुक्रमणिका का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इसीलिए अनुक्रमणीयन (Indexing) के क्षेत्र में सबसे अधिक खोज की गई। किसी विषय, उप-विषय और टॉपिक का यदि अनुक्रमणिका में उपयोगकर्त्ताओं, शोधकर्त्ताओं को उपयुक्त शीर्षक न मिला तो उनकी अभीष्ट अध्ययन सामग्री न मिल सकेगी। अतः अनुक्रमणिका के विषय में विस्तारपूर्वक जानना आवश्यक है।

**अनुक्रमणिका**—अनुक्रमणिका अंग्रेजी के Index शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। इन्डेक्स (Index) शब्द लेटिन के 'Indicare' शब्द से उत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है-निर्देश देना। सर्वप्रथम अनुक्रमणिका १६४० ई० में तैयार की गई जो कि चौदह पृष्ठों की गणित एवं ज्योमेट्री विषय पर थी। इसका नाम 'Index Capitum' था।

द्वितीय अनुक्रमणिका थियोलॉजी की पुस्तक हेतु 'Indexrerument Ver-borum' शीर्षक के अन्तर्गत तैयार की गई है। इसमें वर्णानुक्रम पद्धति को अपनाया गया। इसका वास्तविक विकास १८वीं शताब्दी में हुआ जब कि एलेक्जेंडर क्रडन ने बाइबिल के शब्दों Concordance की एक अनुक्रमणिका तैयार की जिसमें सभी बाइबिल सम्बन्धी धार्मिक एवं ऐतिहासिक पुस्तकों के शब्दों को सम्मिलित किया गया था। १८वीं शताब्दी में दो प्रसिद्ध अनुक्रमणिकायें तैयार की गई—

(1) Encyclopaedia Britanica Index

(2) Poole's Great Index

इसमें उस शताब्दी में प्रकाशित सभी सामयिकों की सूची थी। १९०१ ई० में अनेक संस्थानों ने अनुक्रमणिका प्रकाशित करने का कार्य अपने हाथ में लिया है। जैसे—

(1) Wilson & Co., New York.

(2) Library Association, London.

(3) Columbia University Press, New York.

(4) New York Times, N. Y.

(5) INSDOC, Delhi.

**अनुक्रमणीकरण (Indexing)**

**परिभाषा**—"अनुक्रमणिका एक पद्धति के अनुसार व्यवस्थित सूची है जिसमें प्रत्येक पद (Item) की इतनी पर्याप्त सूचना दी जाती है जिससे उसे पहिचाना एवं खोजा जा सके।"

— ई० एम० आर० डिटमस (Ditmas)

एल० शोर (Shore) ने इसकी परिभाषा निम्नवत् दी है—

"यह एक क्रमबद्ध रूप से सुव्यवस्थित सूची है जो कि प्रत्येक लेख के सम्बन्ध में सूचना प्रदान करती है जिससे उसको पहचाना जाय, खोजा जाय एवं प्राप्त किया जा सके।"

**महत्त्व**—उपरोक्त परिभाषा को दृष्टि में रखते हुये इसकी विशेषताओं को निम्न रूप में अंकित किया जा सकता है—

(अ) अनुक्रमणिका की सहायता से पुस्तक तथा सामयिकों से सम्बन्धित विषय-वस्तु की जानकारी प्राप्त की जा सकती है तथा मूल पाठ्य-सामग्री एवं विषय-वस्तु तक पहुँचा जा सकता है।

(आ) इसके साथ अंकन (Notation) का प्रयोग होने के कारण सारणी तक पहुँचा जा सकता है।

(इ) इसके उपलब्ध रहने से समय, श्रम एवं धन की बचत होती है।

(ई) ये किसी सामयिक में से अभीष्ट सूचना प्राप्त करने में उपकरण (Tool) का कार्य करते हैं।

(उ) इससे पाठकों के विशिष्ट-विषय-अभिगम की सन्तुष्टि होती है।

सूचना को दो माध्यम से पाया जा सकता है—

(१) प्रत्यक्ष खोजना—समय लगाना।

(२) अनुक्रमणिका के माध्यम से खोजना—समय कम लगाना, क्योंकि जहाँ अभीष्ट एकल (Isolate) का उपयोग किया गया है, अनुक्रमणिका वहाँ भेज देती है। वहाँ पर पाठक को अभीष्ट सूचना मिल जाती है क्योंकि अनुक्रमणिका में पृष्ठ संख्या, सामयिक का नाम, लेख के लेखक का नाम आदि सूचना दी रहती है।

**आवश्यकता**

अनुसन्धानकर्त्ता यदि अभीष्ट विषय पर कितना साहित्य है यह जानना चाहे तो उसे अनुक्रमणिका की आवश्यकता पड़ती है। आज पाठ्य-सामग्री इतनी व्यापक एवं विभिन्न रूपों में सामने आ रही है कि उस अनुपात में क्रय करना, एक समस्या बन गई है। साथ ही प्रत्येक पुस्तकालय आर्थिक दृष्टिकोण से इतने सम्पन्न नहीं होते कि सब को क्रय कर सकें और न ही सभी पाठ्य-सामग्री सभी पुस्तकालय के लिए उपयोगी होती है। यदि उपरोक्त तथ्यों का समाधान हो भी जाय तो सम्पूर्ण साहित्य के व्यवस्थापन एवं स्थान की समस्या आती है। यही कारण है कि ग्रन्थालय में अनुक्रमणिका एवं संक्षेप सामयिकों को क्रय किया जाता है। इसके न होने से सामयिकों को पढ़ने (Consult) में उपयोगकर्त्ता का बहुत समय और श्रम व्यर्थ जाता है तथा इतने पर भी अभीष्ट सामग्री न प्राप्त हो तो आश्चर्य नहीं है। यह भी हो सकता है कि खोज करते-करते उपयोगकर्त्ता (User) थक जाय और हताश होकर खोज कार्य ही बन्द कर दे। इसके विपरीत अनुक्रमणिका से अभीष्ट सामग्री शीघ्रता से प्राप्त होती है क्योंकि यह एक स्वच्छ दर्पण के समान है जिसमें पाठ्य-सामग्री का पता सरलता से लगाया जा सकता है।

**उद्देश्य**—इसका प्रमुख उद्देश्य है अभीष्ट विषय या एकल (Isolate) प्राप्ति हेतु पुस्तकों या सामयिक प्रकाशनों में वर्णित या सम्बन्धित अन्य प्रलेखों (Documents) में प्रकाशित सूक्ष्म विचारों से शीघ्रतापूर्वक सम्बन्ध स्थापित करना। इसके अभाव में उपयोगकर्त्ताओं को सम्पूर्ण सामयिक सूची को खोजना एवं देखना

(Consult) पड़ता है जबकि अनुक्रमणिका में समस्त सामयिकों में प्रकाशित सम्पूर्ण लेखों की आख्यात्मक सूची अथवा सारगर्भित व्याख्यात्मक सूची होती है। इसी कारण इसे पीरियाडिकल्स इंडेक्स (Periodicals Index) कहते हैं।

प्रकार—थामसन (Thompson) ने अनुक्रमणिका के निम्नलिखित प्रकार बताये हैं—

(१) **वैचारिक अनुक्रमणिका** (Concept Indexing)—इस प्रकार की अनुक्रमणिका में बहुत महत्त्वपूर्ण तथा सारगर्भित सामग्री अंकित की जाती है।

(२) **विस्तृत** (Exhaustive)—इसमें मूल प्रलेख सम्बन्धी अधिकतम सूचना अंकित की जाती है। अतः इसमें पाठकों के सभी प्रकार के अभिगम संतुष्ट हो सकते हैं।

(३) **विशिष्ट विषय अनुक्रमणिका**—इसमें रचना का शीर्षक अंकित होता है जो कि उसके विविध अभिगम को सन्तुष्ट करता है।

(४) **संश्लेषण** (Synthesis)—इसमें विषयों का पारस्परिक सम्बन्ध संक्षेप में दिखाया जाता है।

(५) **भारित** (Weighted)—इसमें इस बात पर जोर दिया जाता है कि यह विशिष्ट विषय किससे सम्बन्धित है जिसके सन्दर्भ में वह तैयार किया जाता है।

अनुक्रमणिका की मुख्य दो विधियाँ हैं—

(१) परम्परागत विधि (Conventional method of indexing)

(२) अपरम्परागत विधि (Non-conventional method of indexing)

(१) प्रथम के निम्नलिखित भेद हैं—

(अ) **विशिष्ट वर्णक्रम**

इसके दो विशिष्ट उपभेद हैं—

(i) अक्षर-प्रत्यक्षर (Letter by letter)

(ii) शब्द-प्रतिशब्द (Word by word)

(ब) वर्गीकृत वर्णक्रम (Classified Alphabetical Order)

(स) वर्गक्रम अनुक्रमणिका (Classified Indexing)

## सूचना-संग्रहण एवं पुनर्प्राप्ति पद्धतियाँ
## (Information Storage and Retrieval Systems)

(१) परम्परागत पद्धतियाँ (Conventional Systems)

(Alphabetical Subject Indexing)

.1 आनुवर्णिक विषय अनुक्रमणीयन (Alphabetical Subject Indexing)

.11 आनुवर्णिक विशिष्ट विषय अनुक्रमणीयन (Alphabetical Specific Subject Indexing)

.१२ आनुवर्णिक वर्गीकृत विषय अनुक्रमणीयन (Alphabetico-classed Subject Indexing)
.२ वर्गीकृत अनुक्रमणीयन (Classified Indexing)
.३ श्रृङ्खला अनुक्रमणीयन (Chain Indexing)
.३१ पोप्सी (POPSI)
.३२ प्रेसी (PRECIS)

(२) अपरम्परागत पद्धतियाँ (Non-Conventional Systems)
.१ समन्वयक अनुक्रमणीयन (Co-ordinate Indexing)
.११ छिद्रित कार्ड पद्धति (Punched Card System)
.१११ हस्त संचालित (Hand Sorted)
.११११ खण्ड कार्ड अनुक्रमणीयन (Featwa Card Indexing)
.१११२ कोरनुचा कार्ड अनुक्रमणीयन (Edge-Notched Card Indexing)
.११२ मशीन संचालित (Machine Sorted)
.११२१ जैटोकोडिंग पद्धति (Zatocoding System)
.११२२ पीक-ए-बू पद्धति (Peek-a-boo System)
.११२३ कम्प्यूटर संचालित पद्धतियाँ (Computerised System)
.११२३१ आधार शब्द अनुक्रमणीयन (Key-word Indexing)
.११२३११ क्विक पद्धति (KWIC System)
.११२३१२ क्वोक पद्धति (KWOC System)
.११२३१३ क्वैक पद्धति (KWAC System)
.११२३१४ क्विक पद्धति (KWWC System)
.११२३१५ वाडेक्स पद्धति (WADEX System)
.११२३१६ कीटल्फा पद्धति (KEYTALPHA System)
.११२३१७ चक्रात्मक अनुक्रमणीयन पद्धति (Cycle Indexing System)
.१३२३२ उद्धरण अनुक्रमणीयन पद्धति (Citation Indexing System)
.१२ एकपदीय अनुक्रमणीयन (Uniterm Indexing)
.२ प्रकाशकीय पद्धतियाँ (Optical Systems)
.२१ मिनी-कार्ड सेलेक्टर पद्धति (Mini-Card Selector System)
.२२ फिल्मोरेक्स पद्धति (Felmorex System)
.२३ रैपिड सेलेक्टर पद्धति (Rapid Selector System)

इनके अतिरिक्त स्लिक अनुक्रमणिका (SLIC Index or Selective listing in Combination), रिलेशनल अनुक्रमणिका (Relational Index), कम्प्यूटर मुद्रित अनुक्रमणिका (Computer Printed Index) और (On-line System) आदि पद्धतियाँ हैं।

इनमें से कुछ पद्धतियों का परिचय निम्नलिखित है—

**(ब) वर्गीकृत वर्णक्रम**—मेटकाफ आदि विचारकों ने विशिष्ट वर्णक्रम का समर्थन किया है। वर्गीकृत वर्णक्रम में विषय शीर्षकों को अकारादिक्रम में व्यवस्थित किया जाता है तथा उस शीर्षक के अन्तर्गत आने वाली प्रविष्टियों को उस शीर्षक के अन्तर्गत व्यवस्थित कर दिया जाता है।

वर्णक्रम की दूसरी अपनी समस्या है। प्रथम तो इसमें प्रत्येक विचार (Concept) को ठीक रूप से एक शब्द प्रदान करना न तो सम्भव होता है, न ही प्रत्येक शब्द प्रत्येक धारणा का प्रतिनिधित्व करता है। साथ ही अकारादिक्रम में भी सभी सम्बन्धित पद (Terms) अनुक्रमणिका में स्थान-स्थान पर बिखर जाते हैं तथा इन्हें परस्पर सम्बन्धित करना एक समस्या है। साथ ही इसमें एक व्यावहारिक समस्या भी है। प्रथम तो विषय-शीर्षक मानकीकृत नहीं है तथा इनमें अनेक अन्तर होते हैं। साथ ही अनुक्रम में स्थान-स्थान पर बिखरे पदों को संयोजित एवं परस्पर सम्बन्धित करने की स्तरीय तकनीक का अभाव है।

**(स) वर्गक्रम अनुक्रमणिका**—इस पद्धति के अनुसार अनुक्रमण (Alphabetisation) पारस्परिक अकारादिक्रम में शब्दों तथा विषय शीर्षक के अनुसार न होकर एक प्रचलित वर्गीकरण प्रणाली के अनुसार पदों (Terms) को संयोजित करना होता है। वर्गीकरण एक ऐसी तर्कसंगत प्रणाली होती है जिसमें परस्पर सम्बन्धित विषय एक स्थान पर एकत्रित किये जाते हैं। सम्बन्धित विषय को एक स्थान पर लाने के अतिरिक्त इस प्रणाली से सन्दर्भ प्रविष्टियों की आवश्यकता नहीं होती। शार्प के अनुसार वर्गीकरण प्रणाली प्रविष्टियों से नहीं वरन् एकलों (Isolate) के आधार पर की जाती है और इसी कारण सदैव परस्पर सम्बन्धित विषय एक स्थान पर आ जाते हैं। फलस्वरूप अन्तर्निर्देश (क्रास रिफ्रेंस) की आवश्यकता न्यूनतम हो जाती है। यद्यपि इस प्रणाली में प्रत्येक प्रविष्टि को वर्गीकरण की योजनानुसार एक वर्गाङ्क दिया जाता है तथा उन्हें उसी क्रम में व्यवस्थित किया जाता है पर वस्तुतः कोई भी वर्गीकरण प्रणाली स्वयं पूर्ण नहीं होती किन्तु (Brajant के अनुसार) सम्पर्क के लिए किसी भी प्रणाली में वर्णक्रम में व्यवस्थापन आवश्यक है।

**(२) अपरम्परागत विधि (Non-conventional Method of Indexing)**—जब सूचना प्रदान करने के लिए अनुक्रमणिका पद्धतियों में से पूर्व-वर्णित पद्धतियों को छोड़ कर अन्य यांत्रिक विधि जैसे Edge Notch Punch Card, यूनिट कार्ड सिस्टम, कम्प्यूटर, पिक ए वो आदि में से किसी को अपनाते हैं तो यह Non-conventional Method कहलाता है। यहाँ इनका संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है :—

**(१) Edge Notch Punch Card**—इसे Item Term Entry System भी कहते हैं। यह प्रणाली पंच्ड कार्ड की सभी प्रणालियों में सरलतम व प्राचीनतम मानी जाती है यद्यपि औद्यागिक एवं व्यापारिक संस्थानों में यह लम्बे समय से प्रचलित

है तथापि प्रलेखन व सन्दर्भ सेवा के लिए यह नवीन ही है। इसका प्रयोग गत दो दशकों से अधिक होने लगा है।

इसमें ८"×५" के कार्ड का प्रयोग होता है, जिनके किनारे पर छोटे-छोटे छेद एक पंक्ति में होते हैं। कीशार्ट के प्रामाणिक पत्रक पर ऐसे एक्कीस छेद होते हैं। इन छेदों को एक-एक अंक दे दिया जाता है। प्रत्येक अंक व छेद को एक धारणा या पद या विशेषता एक प्रमुख विषय माना जाता है। उदाहरण के लिए पुस्तकालय विज्ञान विषय को एक्कीस तक मुख्य विशेषताओं या उपशीर्षकों जैसे संगठन, वर्गीकरण, सूचीकरण आदि में बाँट दिया जाता है तथा कार्ड के किनारे पर लगे छेदों को एक-एक नम्बर और विषय दे दिया जाता है। एक कार्ड एक प्रलेख के लिए होता है अर्थात् 'एक कार्ड एक विषय सिद्धान्त' अपनाया जाता है। कार्ड पर प्रलेख का समस्त वाङ्-मयात्मक विवरण (Bibliographical details) लिख दिये जाते हैं। इस प्रकार एक प्रलेख का एक कार्ड बना कर प्रलेख में जो भी विशेषतायें हों उन अंकों वाले छेदों के किनारे वी (V) के आकार में काट दिया जाता है। माना कि संगठन को नम्बर एक, प्रलेखन को नम्बर दो, सूचीकरण को नम्बर तीन, वर्गीकरण को नम्बर चार छेद दिये गये। अब सूचना पुनः प्रतिष्ठापन (I. R.) के लिए सभी पत्रकों से सम्बन्धित विषय या विशेषताओं आदि में एक पतली सुई आदि प्रविष्ट की जाती है जो पत्रक ऊपर की ओर किनारे में काटे गये हैं वे नीचे गिर जायेंगे, उन पर प्रलेख का विवरण है। वही पाठक को प्रदान किये जाते हैं। जैसे यदि कोई प्रलेखन पर सूचना चाहे तो प्रलेखन छेद नम्बर दो है। अब नम्बर दो के छेद में सुई डाल कर कार्ड ऊपर उठाते हैं जिन कार्डों में प्रलेखन की सूचना होगी उनके किनारे कटे होंगे, वही कार्ड नीचे गिर जायेंगे। एक से अधिक विषयों के लिए यही प्रक्रिया एक से अधिक बार अपनाते हैं।

**आकार एवं प्रक्रिया**—यह मानक आकार का कार्ड होता है। एक कार्ड एक प्रविष्टि के लिए उपयोग करते हैं। इसमें मुख्यतया निम्न प्रक्रियायें अपनाते हैं—

(i) कार्ड को तैयार करना तथा प्रत्येक कार्ड का नम्बर देना। इसके लिए कोड का प्रयोग करते हैं।

(ii) वाङ्मयात्मक सूचना अंकित करना।

(iii) कार्ड को सुव्यवस्थित करना।

(iv) अभीष्ट एकल (Isolate) पर वी (V) आकार देना, जितने एकल हैं उतने स्थान पर वी (V) आकार दिया जाता है।

(v) कार्ड को पंच करना।

(vi) सूचना खोजना एवं प्रदान करना।

**हानि**—किसी विषय पर एक्कीस (निश्चित एकल) से अधिक भाग (विषयांश) होने पर समस्या उत्पन्न होती है। ऐसी दशा में यह स्कीम असफल हो जाती है क्योंकि कार्ड का उपयोग एक निश्चित सीमा तक ही किया जा सकता है।

यांत्रिकता कम पायी जाती है फलस्वरूप कभी-कभी कार्डों की छँटाई ठीक से नहीं हो पाती है।

इसमें प्रत्येक धारणा के लिए हर बार नीडिलिंग (सुई प्रविष्ट) करना भी एक समस्या है। इसी कारण से इसमें समय भी काफी लगता है तथापि यह विशेष पुस्तकालय के लिए उपयोगी है।

(२) Peak A Boo System—यह पद्धति पीकेबल और पीफोल के नाम से भी जानी जाती है। इसका सर्वप्रथम प्रयोग W. E. Batten ने किया था। इसके बाद शनैः-शनैः इसका सूचना पुनः प्राप्ति हेतु प्रचार किया गया। इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें एक कार्ड में एक विषय या आर्टिकल सम्बन्धी सूचना को छेद करके लिखा जाता है जो कि क्रमिक रूप में सुव्यवस्थित रहते हैं। सूचना प्राप्त करने हेतु इसे फाइल करके रोशनी के सामने रखते हैं। जिन पत्रकों (कार्डों) में हो कर रोशनी दिखाई देती है उनको पृथक् कर लेते हैं और पूरी रोशनी पार होने पर सरलता से प्रलेख प्राप्त किया जा सकता है।

(३) Unit Card System or Uniterm Indexing—इसके आविष्कारक Mortimor Faubo माने जाते हैं। यह विशेष रूप से यूनीटर्म तथा कोआरडीनेट शब्दों पर आधारित है। यूनीटर्म सूचना प्राप्त करने के प्रतीक हैं जो प्रायः मूल पुस्तक की विषय-वस्तु तथा विचारों का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस पद्धति में विषय-वस्तु को अति लघु विचारों का स्वरूप प्रदान किया जाता है जिसे ही टर्म या यूनीटर्म कहते हैं। यह केवल एक शब्द के होते हैं, इन्हें संक्षेप में 'की वर्ड' (Key Word) भी कहते हैं जो कि ८"×५" के पत्रक पर अंकित किये जाते हैं।

**प्रक्रिया**—इस प्रणाली में किसी भी प्रलेख के प्राप्त होते ही निम्नलिखित क्रियायें की जाती हैं :—

(१) उस प्रलेख को परिग्रहण संख्या एवं क्रमिक संख्या प्रदान करना।

(२) प्रत्येक प्रलेख के लिए उसकी विषय-वस्तु का प्रतिनिधित्व करने वाले शब्द का चयन करना।

(३) प्रत्येक यूनीटर्म या की वर्ड को एक पत्रक प्रदान करना जो प्रायः १२.७×७.८ सेमी० के माप के होते हैं।

(४) प्रत्येक पत्रक पर यूनीटर्म के साथ क्रमिक संख्या तथा परिग्रहण संख्या लिखना।

(५) प्रत्येक कार्ड को दस भागों में विभाजित करना जो कि ०-९ तक होते हैं। इसमें टर्म का स्थान ऊपर छोड़ दिया जाता है।

(६) यूनीटर्म से सम्बन्धित प्रलेख आने पर उनकी क्रमिक संख्या अन्तिम अंक (डिजिट) के हिसाब से पत्रक पर अंकित कर दी जाती है। यदि एक प्रलेख दो

यूनीटर्म का प्रतिनिधित्व करता है तो दोनों से सम्बन्धित होने पर दोनों पत्रकों पर उसकी क्रम संख्या अंकित कर दी जाती है।

(७) इसे प्रायः वर्णानुक्रम में सुव्यवस्थित करते हैं।

(८) अन्तिम प्रक्रिया सूचना प्राप्त करने एवं उसे पुनर्व्यवस्थित करने की होती है।

यदि इस प्रणाली के सभी गुण तथा कार्यों का उचित मूल्यांकन किया जाये तो प्रलेखों की प्राप्ति सही तथा न्यूनतम समय में हो सकती है।

**(४) कम्प्यूटर (Computer)**—वर्तमान समय में यांत्रिकता सूचना पुनर्प्राप्ति (I. R.) में एक क्रान्तिकारी समाधान प्रस्तुत करती है जिनमें से कम्प्यूटरों का अपना विशेष महत्त्व है विशेषकर अंकित कम्प्यूटर (Digit Computer) का। परन्तु इस निर्जीव यन्त्र से हमारे कार्यों में सहायता मिलती है। इसको तभी समझा जा सकता है जब कि उसके साथ एक कुशल संचालन व्यवस्था हो। यही कारण है कि इसके क्षेत्र में निरन्तर शोध कार्य होते रहते हैं। केण्ट (Kent) ने इसे प्रशासक, गणितज्ञ, विद्युत कार्यकर्त्ता, अभियांत्रिक, लेखाकार आदि नामों से पुकारा है। तात्पर्य यह है कि यह सेवा, लेखाकार, विद्युतदक्षता, प्रशासक, गणितज्ञ सेवाओं का मिला-जुला रूप है। निःसन्देह कम्प्यूटर द्वारा जिस गति से कार्य किया जाता है वह मनुष्य के लिए सम्भव नहीं है। इतना होने पर भी कम्प्यूटर प्रलेख में अंकित विषय-वस्तु तथा भाषा को पढ़ने में समर्थ नहीं होता है जब तक कि उसे मनुष्य द्वारा यह सब प्रदान न किया जाय। कम्प्यूटर की इसी कमी ने इसके समर्थकों तथा प्रलेखनविदों (Documentationists) के लिए एक समस्या उत्पन्न कर दी है। यही कारण है कि आज भी इसमें नये-नये शोध कार्य हो रहे हैं जिसका लक्ष्य है किसी ऐसे तकनीक का विकास किया जाय जो यन्त्र स्वयं प्रलेख की भाषा का अध्ययन कर सके और उसका उसी भाषा में संग्रह कर सके। इतना होने के साथ-साथ यह भी है कि कम्प्यूटर प्रलेखों का वर्गीकरण नहीं कर सकता है। वर्णनात्मक फाइल का व्यवस्थापन भी मनुष्य द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार यन्त्र एवं मनुष्य का परस्पर सम्बन्ध होना अनिवार्य सा है।

अब यह प्रश्न उठता है कि सूचना पुनर्प्राप्ति के क्षेत्र में यह कितना सहायक है। इस प्रश्न के समाधान में Vickery ने सूचना पुनर्प्राप्ति की सम्पूर्ण प्रक्रियाओं का अध्ययन कर यह निष्कर्ष निकाला है कि यन्त्र का उपयोग केवल सूचनाओं को ढूंढ़ने के लिए ही किया जा सकता है। इस क्षेत्र में संग्रह के लिए, प्रलेखों का चयन, अनुक्रमणी के निर्माण तथा संकेतों के निर्माण आदि कार्यों के लिए यन्त्र आदि पर अधिक आश्रित नहीं रहा जा सकता है। यन्त्र का उपयोग केवल अनुक्रमणिका की खोज (Research of Index) में किया जा सकता है। किन्तु इसके लिए भी प्रलेख के सम्बन्धित सन्दर्भ का निर्धारण कर निबन्ध की खोज के लिए विवरण का उपयोग आवश्यक है। इस प्रकार शुरू से अन्त तक मानवीय मार्गदर्शन प्रदान करने पर मशीन

केवल समय एवं श्रम की बचत कर सकती है। मशीनों के स्वयंचालित होने की सम्भावना कम है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण समस्या यांत्रिक साधनों में आर्थिक होती है। बहुत लोगों का विचार है कि जितना धन इन यन्त्रों पर व्यय किया जाता है, उतने ही धन से पारस्परिक तथा आर्थिक मितव्ययी साधनों में सुधार कर बहुत सीमा तक लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सकती है।

कम्प्यूटर के तीन भाग होते हैं—

(i) Soft Ware—Instruction through language.

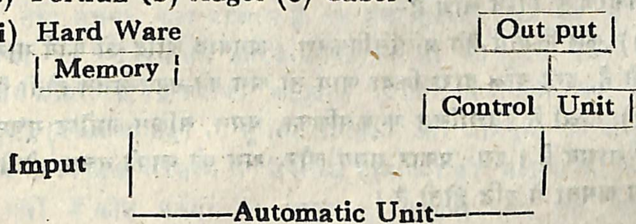
(ii) Hard Ware—कम्प्यूटर के भौतिक अंग

(iii) Out put—परिणाम

(i) Soft Ware के अन्तर्गत मुख्यतया तीन भाषाओं का प्रमुख रूप में प्रयोग होता है—

(a) Fortran (b) Adgol (c) Cabol।

(ii) Hard Ware




कम्प्यूटर आवश्यकता पड़ने पर अपनी स्मृति (Memory) से सूचना को निकालता है। यह कार्य इम्पुट (जिसमें सूचना सामग्री एकत्र रहती है) और कन्ट्रोल यूनिट (जो बटनों का एक चौकोर स्थान होता है) की सहायता से होता है। मेमोरी में असीमित नम्बर दिया रहता है जिसमें सूचना अन्तर्निहित होती है। इसमें से कोई सूचना प्राप्त करने हेतु उस विषय के अंकन को कन्ट्रोल यूनिट से दबाते हैं। यथा पाँच एवं सात नम्बर के विषय-वस्तु को निकालना है तो पहले पाँच तथा बाद में सात नम्बर का बटन दबाते हैं तो यह कन्ट्रोल यूनिट से आटोमेटिक यूनिट द्वारा जुड़ जाता है जिसे फिर से भविष्य में उपयोगार्थ मेमोरी सुरक्षित रख लेते हैं जो बाद में कन्ट्रोल यूनिट द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। बड़े कम्प्यूटर में बटन दबाने की प्रक्रिया न करके मानक आकार के फलक पर लिख देते हैं जो कम्प्यूटर द्वारा स्वयं जुड़ जाता है और गुणात्मक रूप में संख्या आ जाती है। यह कन्ट्रोल यूनिट द्वारा सम्भव होता है।

**नये कम्प्यूटर**—लंदन में हाल ही में एक ऐसा कम्प्यूटर टर्मिनल प्रारम्भ किया गया है जिससे अप्रशिक्षित लोग भी हस्तलिखित सूचनायें कम्प्यूटर या संचार प्रणाली में प्रविष्ट कर सकेंगे। 'माइक्रोपैड' नामक यह संसार का प्रथम कम्प्यूटर टर्मिनल है जो डाटपेन या पेंसिल से लिखी गयी सामग्री को स्वीकार कर लेगा।

यह टर्मिनल आकार में एक छोटे टाइपराइटर से भी छोटा है तथा इसमें

अपना अलग माइक्रोप्रोपेलर लगा हुआ है जो प्रत्येक हस्तलिखित वर्ण को पहचान कर उसे (कोड में) परिवर्तित करने के बाद मुख्य कम्प्यूटर को प्रेषित कर देता है। किसी आपरेटर या टाइपिस्ट की सहायता लिए बिना यह कोई भी लिखित सामग्री किसी भी कम्प्यूटर में प्रविष्ट की जा सकती है।

इस व्यवस्था से अस्पतालों में मरीजों को बहिरंग रोगी या आपात विभाग से सीधे पंजीकृत किया जा सकेगा। सुपर बाजार अपने माल की जाँच उन स्थानों से सीधे कर सकेंगे जहाँ माल उतारा जाता है तथा कारखानों के स्टोरकीपर अब अधिक दक्षता से अपने माल की चौकसी रख सकेंगे।[1]

आजकल कम्प्यूटर द्वारा क्युमेलेटिव इण्डेक्स एवं एडवांस इण्डेक्स भी तैयार किये जाते हैं।

## पूर्णतया यांत्रिक प्रणाली से हानि-लाभ

Vickery के अनुसार यांत्रिक साधनों से लाभ और हानि का विचार करने पर यांत्रिकीकरण से निम्न लाभ हैं—

(१) कुछ क्रियायें जैसे प्रतिलिपिकरण, अनुवाद आदि जो कार्य मानवीय श्रम से किये जाते हैं, इन्हें यन्त्र द्वारा किया जाय तो श्रम की बहुत बचत होती है।

(२) यन्त्रों से स्वचालित अनुक्रमणिका, चयन, संक्षिप्त अभीष्ट सूचना, सूचना पुनर्प्राप्ति में सम्भव है। इस प्रकार समय और श्रम की काफी बचत होती है। साथ ही उत्पादन क्षमता में वृद्धि होती है।

## हानि

(१) यन्त्र मनुष्य से कम लचीले माने जाते हैं जिससे इसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन एवं संशोधन की कम सम्भावना होती है। फिर संशोधन आदि बार-बार नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें अनेक समस्यायें आती हैं यथा धन, समय, श्रम और निरन्तर प्रयोग आदि।

(२) ये अत्यन्त व्ययकारक होते हैं। अतः प्रत्येक पुस्तकालय के लिए इनका उपयोग सम्भव नहीं है।

(३) यन्त्रो के खराब हो जाने की स्थिति में (चाहे यन्त्र का एक ही भाग हो) सम्पूर्ण व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो जाती है जबकि मानवीय व्यवस्था में ऐसा नहीं होता क्योंकि प्रत्येक इकाई स्वतन्त्र रूप से कार्य करती है।

(४) यन्त्रों का संचालन भी यन्त्रों की भांति कठिन कार्य होता है। इनके संचालन के लिए विशेष रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होती है, जिनकी बुद्धिमत्ता, अनुभव आदि ही यन्त्र को अपने कार्य में सफल बनाते हैं।

ए० के० मुकर्जी का कथन है कि यान्त्रिक प्रणाली को अपनाने से पूर्व उसे मानवीय क्षमता से तुलनात्मक रूप में देख लेना चाहिये।

□ □

---

१. अमृत प्रभात, अक्टूबर, १९७९ ई०।

अध्याय ६

# सूचना प्रकीर्णन

## ( DISSEMINATION OF INFORMATION )

### आवश्यकता

विश्व में शिक्षा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के साथ-साथ तत्सम्बन्धी विषयों के क्षेत्र में लिखित सामग्री में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है। प्रत्येक विषय के क्षेत्र में मासिक, त्रयमासिक, अर्धवार्षिक सामयिकों (पीरियाडिकल्स) का प्रकाशन इतने बड़े पैमाने पर हो रहा है कि विद्वान् और अनुसंधानकर्त्तागण हैरान हैं और पुस्तकालय तथा सूचना केन्द्र परेशान हैं कि उन सबका संग्रह कैसे करें। उनमें प्रकाशित लेखों को कैसे सूचीबद्ध करके उपयोगकर्त्ताओं को सुलभ करायें। शैक्षिक, वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय संस्थाओं की खोज रिपोर्टों, विचारगोष्ठियों के विवरणों तथा इतिवृत्तों (Proceding) ने सूचना सामग्री में और अभिवृद्धि कर दी है। ज्ञान-विज्ञान की इन विशाल परिमाण में उपलब्ध सामग्रियों की यदि उपेक्षा कर दी गई तो ये कुछ वर्षों में कीट पतंगों का आहार हो जायेंगी और उन विद्वानों का परिश्रम व्यर्थ हो जायेगा जिन्होंने इनका सृजन विशेष अध्ययन और अनुसंधान के लिए किया है। अतः इनमें विद्यमान सूचनाओं का संग्रह करके उनको वर्तमान और भावी पीढ़ी के अध्येताओं और शोधकर्त्ताओं को उनके उपयोग योग्य बनाकर सुलभ कराना एक महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय हित का कार्य है। टेकनिकल शब्दों में बढ़ी हुई और निरन्तर बढ़ती हुई इन सूचना सामग्रियों में विद्यमान सूचनाओं को उपयोग के लिए सुलभ करने को सूचना प्रकीर्णन (Dissemination of Information) कहते हैं।

### सूचना स्थानान्तरण (Information Transfer)

इस पद का निर्माण M. Wetsman ने अपनी पुस्तक 'इन्फार्मेशन सिस्टम्स सर्विसेज ऐण्ड सेन्टर्स' में १९७२ ई० में किया। उनका मानना है कि ज्ञान की इकाई के उद्गम बिन्दु से लेकर उपयोगकर्त्ताओं के पास उसके प्रसार या विकीर्णन तक गुजरने वाली समस्त प्रक्रियाओं की कड़ी जो उस ज्ञान को उपयोग योग्य रूप में रूपान्तरित करनी है वह, इन्फार्मेशन ट्रान्सफर सिस्टम के अन्तर्गत आती है।

सूचना की पुनर्प्राप्ति और उसके विकीर्णन का कार्य किसी जिज्ञासु की जिज्ञासा या प्रार्थना से प्रारम्भ होता है या किसी प्रणाली के माध्यम से जो कि अपने ग्राहकों के लिए नियमित रूप से चयनित प्रसार सेवा (SDI) प्रक्रिया के अन्तर्गत किसी सूचना का सार, उद्धरण, प्रतिलिपि, आँकड़े, अन्य भाषा में अनुवाद आदि प्रस्तुत करता है। सूचना-केन्द्र सूचना का विश्लेषण,

छानबीन, नये क्रम में पुनः व्यवस्थापन करके उसको अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी बनाता है। इसीलिए सूचना वैज्ञानिक सूचना का संग्राहक, व्यवस्थापक तथा सम्पादक भी होता है।

Dissemination of information के लिए information transfer के अतिरिक्त information communication शब्द का भी प्रयोग किया जाता है।

**विकीर्णन प्रविधियाँ (Techniques of Dissemination)**

सूचना प्रकीर्णन के लिए प्रलेखों की अनुक्रमणिका बनाना, प्रलेखों का सारांशीकरण करना, प्रलेखों का प्रदर्शन करना, प्रलेखों का सरकुलेशन, आँकडों का संकलन, समाचारों का संक्षेपण, वाङ्मयसूचियों का निर्माण और सूचना बुलेटिन का प्रकाशन आदि प्रमुख प्रविधियों को अपनाया जाता है।

**सूचना प्रकीर्णन की श्रेणियाँ (Categories of information dissemination)**

मुख्य रूप से सूचना प्रकीर्णन को दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है :—

(१) गतानुदर्शी अभिज्ञता सेवा (Retrospective Awareness Service)

(२) सामयिक अभिज्ञता सेवा (Current Awareness Service)

इनका परिचय इस प्रकार है :

**(१) गतानुदर्शी अभिज्ञता सेवा**—वह सूचना सेवा कहलाती है जिसके अन्तर्गत बीते हुये समय (भूतकालीन) के प्रलेखों में विद्यमान सूचनाओं को उपयोगकर्त्ता को दिया जाय या उससे अवगत कराया जाय।

स्पष्ट है कि ऐसी सूचनायें तो विशेष अध्ययन और अनुसंधान में केवल पृष्ठभूमि बताने के लिए होती हैं। वैसी सूचनायें अन्य स्रोतों से भी प्राप्त हो जाती हैं। अतः इस श्रेणी की सेवा का महत्त्व सामयिक अभिज्ञता सेवा की अपेक्षा कम होता है।

**(२) सामयिक अभिज्ञता सेवा**— उस प्रकार की सूचना सेवा को कहते हैं जिसमें केवल सामयिक (Current) अर्थात् नई से नई (नवीनतम) सूचनायें उपयोगकर्त्ताओं को उनके लिए सुलभ की जा सकें।

**प्रकीर्णन विधियाँ**

सामयिक सूक्ष्म प्रलेखों (Micro documents) में विद्यमान सूचनाओं के प्रकीर्णन की कई विधियाँ हैं।

उनमें से एक विधि यह है कि प्रलेखों को उपयोगकर्त्ताओं के पास पर्याय क्रम (बारी-बारी) से भेज कर पढ़ा दिया जाय। दूसरी विधि यह है सूक्ष्म प्रलेखों की विषय सूचियों को उपयोगकर्त्ताओं के पास भेज दिया जाय। उनमें से जो प्रलेख

उनके काम का हो उस प्रलेख की प्रतिलिपि वे पुस्तकालय से प्राप्त कर लें। तीसरी विधि यह है कि प्रलेखों की सार पत्रिका (Abstract Bulletin) में प्रकाशित करके उपयोगकर्त्ताओं को सुलभ कर दी जाय। उनमें से जो प्रलेख उनके काम का हो उसकी माँग वे पुस्तकालय से करके उसको प्राप्त करें।

**चयनित सूचना प्रकीर्णन (Selective Dissemination of Information)**

सूचना सामग्री के अथाह सागर को मथकर बनाई गई भारी भरकम प्रलेखन सूचियों आदि में अपने लिए उपयोगी सूचनाओं की खोज में लगे विद्वानों, विशेषज्ञों और शोधकर्त्ताओं के लगने वाले समय और श्रम को बचाने के उद्देश्य से चयनित सूचना प्रकीर्णन की विधि का आविर्भाव हुआ। इस प्रणाली में कुछ चुनी हुई उच्च कोटि की पत्रिकाओं में प्रकाशित प्रलेखों में विद्यमान सूचनायें शोधकर्त्ताओं, विशेषज्ञों और विशेष अध्ययन में लगे व्यक्तियों को दी जाती हैं।

**परिभाषा**

चयनित सूचना प्रकीर्णन के अंग्रेजी पर्याय Selective Dissemination of Information के आदि अक्षरों को लेकर संक्षेप में इस सेवा को SDI कहा जाता है। इसकी परिभाषा इस प्रकार है :—

'चयनित प्रकीर्णन सेवा किसी संस्था के अन्तर्गत दी जाने वाली वह सेवा है जो जिस किसी स्रोत से प्राप्त हुई सूचनाओं को संस्था के उन स्थलों तक पहुँचाती है जहाँ उनकी चाह और तात्कालिक उपयोग की सम्भावना सबसे अधिक हो।'

इस परिभाषा से स्पष्ट है कि यह सूचना-सेवा किसी संस्था या संस्थान के अन्तर्गत विशेष अध्ययन में लगे लोगों को उस संस्था द्वारा (उसके सूचना केन्द्र द्वारा) चयनित करके दी जाती है।

डॉ० रंगनाथन ने इस सेवा को उपयोगकर्त्ताओं के लिए मुस्तैदी से दी जाने वाली निथरी सटीक सेवा कहा है।

**विधियाँ**

चयनित सूचना प्रकीर्णन सेवा निम्नलिखित दो विधियों से प्रदान की जाती है—

(१) परम्परागत विधि (Conventional Method)
(२) अपरम्परागत विधि या यांत्रिक विधि (Non-Conventional Method or Mechanical Method)

पहली विधि में पुस्तकालय या सूचना केन्द्र में पहले उपयोगकर्त्ताओं की अभिरुचि और माँग वाले विषयों की एक सूची बना लेते हैं। उसके बाद उन विषयों पर अपने यहाँ उपलब्ध सूचनायें छाँट कर क्रमबद्ध करके रख लेते हैं। उपयोगकर्त्ताओं द्वारा अपने विषय पर सूचना माँगने पर उनको संचित सूचनायें उपलब्ध करा देते हैं।

यह विधि कर्मचारियों की शैक्षिक योग्यता, सूझ-बूझ और स्मरणशक्ति पर आधारित होने के कारण सफल सूचना सेवा नहीं प्रदान कर सकती।

दूसरी विधि में पहली विधि के दोषों और कमियों को दूर करके उसको अपेक्षाकृत अधिक समर्थ और सक्षम बनाया गया है। इसे कम्प्यूटर आदि की सहायता से यान्त्रिक बनाया गया है। इसमें मानव-मस्तिष्क की स्मरण शक्ति और व्यक्ति की सूझ-बूझ का सहारा न के बराबर लिया जाता है।

इस विधि की प्रक्रिया क्रमशः इस प्रकार होती है :—

(१) उपयोगकर्त्ता पार्श्वचित्र निर्माण (Preparation of User's Profile)
(२) प्रलेख पार्श्वचित्र का निर्माण (Preparation of Document Profile)
(३) उपयोगकर्त्ता पार्श्वचित्र तथा प्रलेखन पार्श्वचित्र का मिलान (Matching of user's Profile with Document Profile)
(४) सूचना प्रेषण (Presentation of Information)
(५) पुर्नानिवेशन अथवा उत्तर का अभिलेखन (Feed back or Recording)
(६) पार्श्वचित्रों का पुनर्समायोजन (Readjustment of Profile)
(७) उपयोगकर्त्ता की माँग पूर्ति (Meeting of User's Demand)

उपर्युक्त प्रक्रिया से स्पष्ट है कि इस यान्त्रिक विधि को अपनाने पर पहले चयनित सूचना को प्राप्त करने वाले उपयोगकर्त्ताओं की एक सूची बनाकर उनके नाम का अलग-अलग कार्ड बनाकर उस पर उनके अभीष्ट विषय का विवरण टेकनिकल सांकेतिक भाषा या पदों में लिख लिया जाता है। यह उपयोगकर्त्ता का पार्श्वचित्र या प्रोफाइल है। इसी प्रकार पुस्तकालय या सूचना केन्द्र में प्राप्त प्रलेखों के विषयों के विषय शीर्षकों को भी उसी प्रकार टेकनिकल सांकेतिक भाषा या पदों (Terms) में लिख लिया जाता है। इसके बाद दोनों का मिलान किया जाता है। दोनों विषय विवरणों में समानता होने पर उपयोगकर्त्ता को तद्विषयक तैयार सूचना, जिस रूप में उपलब्ध हो प्रेषित कर दी जाती है। उसके बाद यदि उपयोगकर्त्ता का कोई उत्तर आता है तो तदनुसार उपयोगकर्त्ता के पार्श्वचित्र (Profile) में सुधार कर लिया जाता है जिससे भविष्य में उस सुधार के अनुसार उसको अभीष्ट सूचना सेवा प्रदान की जा सके। ऐसा कुछ तभी होता है जब उपयोगकर्त्ता अपने पूर्व लिखित विषय में कुछ संशोधन या परिवर्द्धन करे। उपयोगकर्त्ता जब किसी प्रलेख की माँग करे तो उसको टंकित या फोटो कापी भेजने की व्यवस्था की जाती है।

**संस्थान के सूचना-केन्द्र**

यदि किसी संस्थान के साथ पुस्तकालय संलग्न हो और उसमें सूचना इकाई (Information Unit) अलग हो तो जिस विशिष्ट (Special) पुस्तकालय से

सम्बद्ध या संलग्न हो, उस पुस्तकालय में जितना वैज्ञानिक और टेकनिकल साहित्य आता है उसके आधार पर सामयिक अभिज्ञता सूचियाँ (Current Awarelists) छापनी चाहिये। उन सूचियों में प्रलेखों का संक्षिप्त प्रतिवेदन (रिपोर्ट्स), लेख तथा पैटेन्ट आदि सुव्यवस्थित रूप में दिया जाय। इससे अनुसंधानकर्त्ताओं और उस संगठन के कर्मचारियों को भी नवीनतम विकास की जानकारी मिल सकेगी ज्ञानक्षेत्र के जिस विषय में वे अभिरुचि रखते हों। संक्षेपण कार्य को माँग के अनुसार विविध प्रकार के सार (Abstract) संकेतात्मक, सूचनात्मक, तारनुमा आदि तथा टिप्पणियों को भी दिया जाय। इन सूचियों का प्रकाशन प्रलेखन-केन्द्र यदि पाक्षिक (Fortnightly) कर सके तो उपयोगी रहेगा। नियमित रूप से सूची का प्रकाशन न होने से उसका महत्त्व घट जाता है।

## प्रमाण-उद्धरण (Citation)[1]

जिस प्रलेखन में कोई Text या उसका भाग पाया जाय, उसका सन्दर्भ दिया जाय। इसकी सबसे अधिक उपयोगिता वाङ्मयात्मक (Bibliographical) कार्य में होती है। Citation के कई रूप (Forms) होते हैं। इसमें सामयिकों (Periodicals) के टाइटिल का सही संक्षिप्त रूप देना चाहिये। केमिकल ऐब्सट्रैक्ट्स (Chemical Abstracts) में सामयिकों के संक्षिप्त रूप (Abbreviated form) तथा List of Periodicals Abstracted को पढ़ने से संक्षिप्त रूपों के नियमों की जानकारी हो सकती है। करेन्ट अफेयरर्स लिस्ट्स में लेख, टेकनिकल रिपोर्ट, सेमिनार की प्रोसीडिंग, कांफ्रेंस की प्रोसीडिंग और पैटेन्ट्स आदि सभी दिये जाते हैं। उनके नामों के संक्षिप्त रूप बनाकर लिखने में एकरूपता होनी चाहिये। इसके लिए सम्पादक यदि अथार्टीफाइल रखें तो सुविधाजनक होगा।

लेख (आर्टिकिल) के विवरण में प्रलेख की संख्या, लेखक का नाम और पता, जर्नल का नाम (टाइटिल), खण्ड, अंक, पृष्ठ संख्या प्रकाशन वर्ष और लेख का नाम दिया जाता है। टेकनिकल रिपोर्ट, कांफ्रेंस प्रोसीडिंग और पैटेन्ट में प्रलेख की संख्या के बाद लेख का नाम लिखा जाता है।

## सार और उद्धरण (Abstract and Extracts)

C. S. List में जो Citation दिया जाय उसके साथ उसका संक्षेपण दिया जाना चाहिये। यह संक्षेपण (Condensation) चाहे सार हो, उद्धरण हो या टिप्पणी हो। प्रलेख पर टिप्पणी तब लिखी जाती है जब प्रलेख जिस विषय पर हो उसका टाइटिल तद्नुरूप उसका स्पष्ट बोधक न हो। जहाँ तक सार (Abstract) का प्रश्न है छोटे सूचना केन्द्रों में संकेतात्मक (Indicative) सार CA में देना

---

1. A citation is a reference to a text or part of a text identifying the document in which it may be found.

ठीक होता है। सूचनात्मक सार (Informative Abstract) लिखने में अपेक्षाकृत अधिक बौद्धिक क्षमता चाहिये। तदनुरूप योग्यता सम्पन्न व्यक्ति छोटे सूचना केन्द्रों में प्रायः नहीं मिलते। किसी उद्धरण और सूचनात्मक सार के सम्पादन में और संरचना (Structure) में भी अन्तर होता है, यद्यपि संक्षेपण दोनों में होता है। सार को तैयार करने में उपयोगकर्त्ताओं को ध्यान में रखते हुए प्रलेख या लेख में जो भाव हों उसको थोड़ा स्पष्ट और विस्तृत करते हुये व्यवस्थापन (Arrangement) पाठकों के लिए सहायक क्रम में (Helpful Sequence) में होना चाहिये। सार की संरचना लेख में विद्यमान भाव या अवधारणा की पंक्तियों (Arrays) पर आधारित होती है जिनके उद्देश्य, विधि, प्रविधियाँ, उपकरण, परिणाम और निष्कर्ष इस क्रम में रखा जाना चाहिये।

□ □

अध्याय ७

# सूचना प्रकीर्णन में यांत्रिक सहायता

जब किसी सूचना केन्द्र में सन्दर्भ सामग्री/सूचना सामग्री कम रहती है तो किसी प्रकार की सूचना को ढूंढ़ निकालने का कार्य सरल रहता है किन्तु जब विविध प्रकार की सूचना स्रोतों से चयनित सामग्री विशाल परिमाण में एकत्र हो जाती है तो उसकी भरकम सूचियों को देखना भी एक कठिन कार्य हो जाता है। तब सूचना श्रम (Manual) विधि से सूचियाँ बनाना अनुक्रमणिका आदि तैयार करके उपयोग-कर्त्ताओं को उनकी अभीष्ट सूचना सुलभ करना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में यांत्रिक (Mechanical) विधियाँ और कम्प्यूटर आदि का सहारा लेना अनिवार्य हो जाता है। सूचना विज्ञान के क्षेत्र में भी ऐसा ही किया गया। उदाहरण के रूप में MARC और MEDLARS को लीजिये।

(१) MARC का पूरा नाम Machine Readable Catalogue है। इसका प्रारम्भ एक परीक्षण के रूप में लाइब्रेरी आफ कांग्रेस ने १९६५ ई० में प्रारम्भ किया जिसका उद्देश्य सूची संलेखों को मैग्नेटिक टेपों पर मशीन रीडेबुल कैटलाग के रूप में परिवर्तित करना था। टेप रीलों को इस कार्यक्रम में परिणत कर भाग लेने वाले सभी पुस्तकालयों को भेजे जाते हैं जो अपनी सूचियों के लिए सूची संलेख उसके आधार पर तैयार करते हैं। १९६८ ई० से BNB ने अपनी सूचियों को MARC टेपों पर निर्मित करना प्रारम्भ किया जिससे BNB के प्रयोगकर्त्ताओं ने इन टेपों से उपयुक्त एवं आवश्यक वस्तुओं का विवरण स्थानीय आवश्यकता के अनुसार प्राप्त कर संलेख प्रस्तुत करना प्रारम्भ किया। MARC टेपों का महत्त्व बड़े पुस्तकालयों में अधिक है जहाँ पर सूचना सम्बन्धी कार्य अत्यावश्यक माने जाते हैं।

(२) MEDLARS का पूरा नाम मेडिकल लिटरेचर एनालिसिस ऐण्ड रेट्रिवल सिस्टम (Medical Literature, Analysis Retrieval System) है। इसका प्रारम्भ संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में १९६३ ई० में यूनाइटेड स्टेट्स नेशनल लाइब्रेरी आफ मेडिसिन ने किया। पहले इस पुस्तकालय का नाम 'सर्जन जनरल लाइब्रेरी' था। औषधि विज्ञान के क्षेत्र में तथा Bio-medical के क्षेत्र में सूचना संग्रह (Information Storage) तथा सूचना पुनर्प्राप्ति की व्यवस्था को ध्यान में रखते हुये इलेक्ट्रानिक आंकड़ों की प्रोसेसिङ्ग के रूप में विकसित करने के लिए इस प्रोजेक्ट का प्रारम्भ हुआ। आयुर्विज्ञान (Medical Science) के क्षेत्र में विश्व की सभी भाषाओं में प्रकाशित वाङ्मय को संकलित करने का काम नेशनल लाइब्रेरी ऑफ मेडिसिन करती है। इसके अतिरिक्त मेडिसिन कांफ्रेन्सों की रिपोर्टों तथा प्रासीडिंग्स, मोनोग्राफ तथा अन्य प्रकार के आयुर्विज्ञान के प्रलेखों का संग्रह भी यह

लाइब्रेरी करती है। इन सभी प्रकार के आवश्यक विवरणों को मेडलर्स सिस्टम के अनुसार प्रस्तुत किया जाता है। मेडलर्स जनवरी, १९६४ ई० से २३०० मेडिकल साइन्स की सामयिकों (Periodicals) में प्रकाशित शोध निबन्धों (रिसर्च आर्टिकिल्स) की अनुक्रमणिका प्रस्तुत करती है। दिसम्बर, १९७० ई० तक इस प्रकार १.३ करोड़ लेखों का संग्रह किया गया था। मेडलर्स द्वारा प्रस्तुत व्यवस्था के माध्यम से जो कम्प्यूटराइज्ड इन्फार्मेशन सिस्टम है उससे अनेक प्रकार के पक्षों से सम्बन्धित सूचना को प्रदान किया जा सकता है। अधिकतम लोगों को सूचना प्रदान की दृष्टि से मेडलर्स का विकेन्द्रीकरण भी कर दिया गया है। उसकी अनेक शाखायें और केन्द्र संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में कर दिये हैं जो सूचना सामग्री का संग्रह फार्मुलेशन तथा प्रोसेसिङ्ग करते हैं जिससे जगह-जगह पर जिज्ञासुओं तथा शोधकर्त्ताओं को सूचना प्राप्त हो सके। इसका एक केन्द्र यूनाइटेड किंगडम में मेडलर्स सर्विस प्रदान करने हेतु स्थापित किया गया है जिसको ओस्टी (OSTI) कहते हैं। इसका पूरा नाम Office of Scientific and Technical Information है। ग्रेट ब्रिटेन में मेडलर्स सर्विस का मुख्य केन्द्र नेशनल लेण्डिङ्ग लाइब्रेरी है।

स्वतः चालित और नियन्त्रित प्रक्रिया (Automation Process) से यू० एस० नेशनल लाइब्रेरी आफ मेडिसिन जिन अनुक्रमणिका का प्रकाशन करती है उसका नाम Index Medicus है। यदि कोई डाक्टर चाहे तो अपने एक सौ तक प्रश्नों का उत्तर न्यूनतम समय में प्राप्त कर सकता है। अमेरिका स्थित NASA (National Aeronautics and Space Administration) में भी आटोमेशन प्रोसेस का प्रयोग होता है।

□ □

अध्याय ८

# कम्प्यूटर का आगमन

## यांत्रिक पद्धतियाँ

सूचना संग्रह और पुनर्प्राप्ति की कम्प्यूटराइज्ड पद्धतियाँ भी आविष्कृत और विकसित हो रही हैं। उनकी ओर वैज्ञानिक तथा सूचना वैज्ञानिक आदि अधिक आकृष्ट हो रहे हैं। यद्यपि सामान्य सूचना केन्द्रों में कम्प्यूटर का होना अभी बहुत दूर है फिर भी कम्प्यूटराइज्ड सूचना पद्धति का सामान्य ज्ञान होना आवश्यक है।

कम्प्यूटर पद का अर्थ मशीन है जो कि सूचना को प्राप्त करता है, दक्षता-पूर्वक तैयार करके उसका संचार करता है। यह कार्य वह अत्यधिक तीव्र और अबाध गति से करता है।

द्वितीय महायुद्ध के बाद इलेक्ट्रोनिक युग का आरम्भ हुआ। इसी युग में कम्प्यूटर का जन्म हुआ। इस मशीन का सेवा क्षेत्र विस्तृत है। यद्यपि इसका निर्माण पुस्तकालय सेवाओं को लक्ष्य में रखकर नहीं किया गया था किन्तु उसकी उपयोगिता इस क्षेत्र में लाभदायक सिद्ध हुई है। आज पुस्तकालय के अनेक कार्य कम्प्यूटरों द्वारा किये जाने लगे हैं। सूचना सेवा के क्षेत्र में सूचना संग्रह और पुनर्प्राप्ति की अनेक पद्धतियाँ कम्प्यूटरों पर आधारित हैं। अनुक्रमणिका बनाने में KWIC, KWOC, KWAC आदि पद्धतियाँ कम्प्यूटर आधारित हैं। PRECIS और पैप्सी आदि पद्धतियों में कम्प्यूटर की सहायता ली जाती है। MARC जैसी वाङ्मयात्मक सेवायें (Biboliographical Services) कम्प्यूटर के बिना नहीं दी जा सकती हैं।

सूचना विज्ञान और प्रलेखन के क्षेत्र में वाङ्मयसूचियों का संकलन और सम्पादन, वाङ्मयात्मक सूचना पुनर्प्राप्ति, अनुक्रमणिकाओं का निर्माण और अनुवाद कार्य में कम्प्यूटर का सराहनीय योगदान रहा है। प्रलेख की विषय-वस्तु का विश्लेषण, विश्लेषित विषय-वस्तु का वैज्ञानिक रूप में व्यवस्थापन और आवश्यकता पड़ने पर इस प्रलेख की प्रस्तुति आदि में जहाँ तक सम्भव हो कम्प्यूटर की सहायता लेने का प्रयास किया जा रहा है। भारत में भी इन्सडॉक आदि अनेक संस्थानों में सूचना सेवा में कम्प्यूटर का प्रयोग प्रारम्भ हो गया है।

## स्वतः चालित सारणीयन (Automatic Abstracting)

कम्प्यूटर के सहारे आटोमेटिक ऐब्सट्रैक्टिंग के काम का प्रयास इसलिए प्रारम्भ हुआ कि हाथ से इस काम का करने में समय अधिक लगता है और प्रलेख के सार को पढ़ने की प्रतीक्षा लम्बे समय तक पाठकों को करनी पड़ती है। इस कमी को दूर करने के लिए CAS और अनुक्रमणीयन सामयिकों (Indexing Periodicals) ने कुछ सीमा तक प्रयास किया और चाहा कि उपयोगकर्ताओं को कम से

कम प्रतीक्षा करनी पड़े। लेकिन वे सारणीयन पत्रिका (Abstracting Journals) का उद्देश्य पूरा नहीं कर सकीं। दूसरी ओर कम्प्यूटर का आटोमेटिक इण्डेक्सिंग में प्रयोग प्रारम्भ हुआ किन्तु कम्प्यूटर तो सूचना विज्ञान की टेकनिकल विधियों को लेकर बने नहीं थे, अतः उनको अपने कार्य के अनुकूल ऐडजेस्ट करने में कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं। सोचा यह गया था कि अनुवाद की भाँति CAL या CAS बुलेटिन भी कम्प्यूटर द्वारा निर्बाध रूप से छप जायेगी किन्तु प्रलेख के विषय को वर्णन करने के लिए आवश्यक शब्दों की समस्या आड़े आ गयी। फलतः प्रगति अतिमन्द रही। इस बीच हाईस्पीड कम्प्यूटर द्वारा छपाई का साधन उपलब्ध हुआ तो 'करेन्ट कैमिकल पेपर्स' आदि की भाँति CAS की सूचियाँ भी छप सकती हैं फिर भी कम्प्यूटर द्वारा आटोमेटिक एब्सट्रैक्टिंग का प्रयास जारी है।

### सूचना का चयनात्मक विकीर्णन
### (Selective Dissemination of Information)

प्रत्येक वैज्ञानिक चाहता है कि उसकी अभिरुचि से सम्बन्धित सूचना के सामयिक (Periodical) उसको प्राप्त हों और उसके लिए उन्हें (वैज्ञानिक) साहित्य के अथाह सागर में गोता न लगाना पड़े। ऐसी आटोमेटिक सामयिक सूचना की आपूर्ति सूचना के चयनात्मक विकीर्णन के द्वारा सम्भव है। वैज्ञानिक साहित्य के अम्बार से आवश्यक सूचना छाँटकर विषय वाङ्मयसूची के साथ प्रलेखों की सूची उपयोगकर्त्ता और अनुसन्धानकर्त्ताओं को उनकी माँग उनके विषयों पर नियमित अन्तराल पर मिलती रहे ऐसी व्यवस्था SDI सेवा द्वारा की जाती है। H. P. LUHN ने १९५९ ई० में सूचना पुनर्प्राप्ति (IR) की नवीनतम टेकनिक पर आधारित कम्प्यूटर के माध्यम से CAS या SDI का सुझाव दिया था। इसी वर्ष उन्होंने यांत्रिक KWIC अनुक्रमणीयन पद्धति का प्रारम्भ किया। कम्प्यूटराइज्ड चयनित विकीर्णन सेवा (SDI) में आवश्यक प्रलेखों में प्रतिपादित विषय वस्तु को विषय की प्रोफाइल से मिलाकर देखा जाता है। दोनों में मेल खाने पर (मैच होने पर) तथा उपयोगकर्त्ताओं की प्रोफाइल से भी मेल खाने पर उस प्रलेख को SDI सेवा के लिए चुना जाता है। यह कार्य इलेक्ट्रानिक डिजिटल कम्प्यूटर द्वारा होता है। कम्प्यूटराइज्ड SDI सेवा दो श्रेणी की होती है। एक साधारण और एक विशेष। साधारण श्रेणी की सेवा में प्रसिद्ध और उपयोग में प्रचलित पदों का प्रयोग विषयों के शीर्षक के रूप में किया जाता है। विशेष श्रेणी विधि में उपयोगकर्त्ता की प्रोफाइल के लिए पर्याय कोश आदि की सहायता से मानकीकृत पदों का चयन किया जाता है। कम्प्यूटराइज्ड SDI सेवा का प्रयोग संयुक्त-राष्ट्र अमेरिका (USA) में सब से अधिक हो रहा है। इन्स्टीट्यूट आफ साइन्टिफिक इन्फार्मेशन फिलाडेल्फिया SDI सेवा को व्यावसायिक रूप में चला रहा है।

कम्प्यूटराइज्ड SDI सेवा महँगी सेवा पड़ती है क्योंकि कम्प्यूटर स्वयं महँगे हैं। अतः सामान्य संस्था की पहुँच के बाहर हैं। अतः मैनुअल विधि से SDI सेवा

मध्यम दर्जे के सूचना केन्द्रों के लिए अधिक उपयोगी है। इसको ऐसे विधि से किया जाय कि समय की बचत हो और सेवा मुस्तैदी से की जा सके।

इसके लिए ऐसा किया जा सकता है कि संस्थान में जितने प्रमुख जर्नल और प्रलेख आते हों उनको सब से पहले SDI केन्द्र को भेज दिया जाय। वहाँ सभी प्रलेखों की अनुक्रमणिका बना ली जाय और अनुक्रमणिका के संलेखों को यूनीटर्म कार्डों पर लिख लिया जाय। इन प्रलेखों का वाङ्मयात्मक विवरण लेजर शीट पर प्रलेखों के क्रमांक के साथ टाइप करा लिया जाय। उन लेजर सीटों की जिल्दबन्दी करा ली जाय तो सब्जेक्ट लेजर तैयार हो जायेगा। उपयोगकर्त्ता को प्रोफाइल प्राप्त होने पर सम्बन्धित यूनीटर्म कार्ड को निकाल कर उससे मिलान कर लिया जाय। यूनीटर्म कार्ड प्रलेख की संलेख संख्या (प्राप्तिक्रम संख्या) को बतायेगा। लेजर शीट में पहले के आये हुये प्रलेख आगत क्रम से लिखे हुये मिलेंगे। इन आगत क्रमांकों पर वाङ्मयात्मक विवरण टाइप किये हैं। उनको अनुसंधानकर्त्ताओं को नियमित अन्तराल पर भेज दिया जाय। विषय शीर्षकों की एक अथार्टीफाइल अनुवर्ण क्रम से रखी जाय जिसमें नये विषय शीर्षक अन्तर्निर्देश संलेखों को यथास्थान लगाया जा सके। मैनुअल विधि से तैयार की गई यह सूचना, विकीर्णन सेवा के उपयोगकर्त्ताओं के लिए लाभकारी सिद्ध होगी।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सूचना (Information) की प्राप्ति के लिए सूचना पद्धतियाँ और प्रौद्योगिकी का जन्म और विकास हुआ। यह सूचना चाहे प्रकाशित या अप्रकाशित, मूल साहित्य के रूप में हो या सार (Abstract) रूप में हो या वाङ्मयात्मक सन्दर्भ (Bibliographical reference) के रूप में हो, उनको प्राप्त करने की विधि चाहे मैनुअल हो या मेकेनिकल हो कम्प्यूटरों के आ जाने से मेकेनिकल पद्धतियों के विकास में उत्तरोत्तर विकास हो रहा है।

फिर भी अभी बहुसंख्यक पुस्तकालयों/प्रलेखन केन्द्रों और सूचना केन्द्रों के लिए मैनुअल पद्धतियाँ (श्रम विधियाँ) अच्छी हैं क्योंकि कम्प्यूटर सब के लिए सुलभ नहीं हैं। उसका रख-रखाव दुःसाध्य है और उसके प्रयोग में टिकाऊ विधियों का स्वरूप अभी स्थिर नहीं हुआ है।

□ □

# पारिभाषिक शब्दावली

| | |
|---|---|
| Abstract | सार, सारांश |
| — Bulletin | — पत्रिका |
| Abstracted Periodical | सारयुक्त सामयिक |
| Abstracting | सारणीयन |
| Acknowledgement | कृतज्ञताज्ञापन |
| Alphabet | वर्णमाला |
| Alphabetical | आनुवर्णिक |
| Analysis | विश्लेषण |
| Annotation | टिप्पणी |
| Announcement | विज्ञापन |
| Appendix | परिशिष्ट |
| Arrangement | व्यवस्थापन |
| Bastard title | संक्षिप्त आख्या पृष्ठ |
| Bibliographical | वाङ्मयात्मक |
| — Description | — वर्णन |
| — Index | — अनुक्रमणिका |
| — Note | — टिप्पणी |
| — Organisation | — संगठन |
| — Research | — अनुसन्धान |
| — Survey | — सर्वेक्षण |
| Bibliography | वाङ्मयसूची |
| — Analytical | — वैश्लेषिक |
| — Annotated | — सटिप्पण |
| — Abstracted | — सारांशीकृत |
| — Author | — लेखक |
| — of Bibliography | वाङ्मयसूचियों की वाङ्मयसूची |
| — Closed | — आवृत |
| — Complete | — पूर्ण |
| — Comprehensive | — विस्तृत |
| — Critical | — आलोचनात्मक |
| — Current | — सामयिक |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | Bibliography | | वाङ्मयसूची |
| — | Descriptive | — | विवरणात्मक |
| — | Document | — | प्रलेख |
| — | General | — | सामान्य |
| — | Historical | — | ऐतिहासिक |
| — | Incunabula | — | आदिमुद्रित ग्रन्थ |
| — | Intelectual | — | बौद्धिक वाङ्मयसूची |
| — | Literary | — | साहित्यिक |
| — | Material | — | भौतिक |
| — | National | — | राष्ट्रीय |
| — | Numerative | — | परिगणनात्मक |
| — | Open | — | अनावृत |
| — | Personal (Bio) | — | व्यक्तिगत सचरित |
| — | Physical | — | भौतिक |
| — | Textual | — | पाठलोचनात्मक |
| — | Practical | — | व्यावहारिक |
| — | Primary | — | प्रमुख |
| — | Printer | — | मुद्रक |
| — | Reference | — | सन्दर्भ |
| — | Regional | — | क्षेत्रीय |
| — | Retrospective | — | भूतकालीन |
| — | Secondary | — | गौण |
| — | Selective | — | चयनीकृत |
| — | Special | — | विशिष्ट |
| — | Subject | — | विषय |
| — | Title | — | आख्या |
| — | Systematic | — | व्यवस्थित |
| — | Trade | — | व्यावसायिक |
| — | True | — | वास्तविक |
| — | Universal | — | सार्वभौम |

| | |
|---|---|
| Bibliothical | पुस्तकालय सम्बन्धी |
| Binding | जिल्दबन्दी |
| Block book | ठप्पा मुद्रित ग्रन्थ |
| By and on | तत् तथा तदुपरि |

| | |
|---|---|
| By and about | तद् तथा तद्विषयक |
| Cancel | निरसन, निरस्त |
| Catchword | सूचक शब्द |
| Conventional | परम्परागत |
| Chain | शृङ्खला |
| Chronological order | कालक्रमिक |
| Citation | उद्धरण |
| — Indexing | — अनुक्रमणिका |
| Classics | श्रेण्य ग्रन्थ |
| Classified | वर्गीकृत, अनुवर्ग |
| Code | संहिता |
| Code Number | संकेत संख्या |
| Collectioner | संग्राहक |
| Collecting | फर्मा मिलना |
| Collation | पत्रादि विवरण |
| Colophon | पुष्पिका |
| Composition | अक्षर योजन |
| Copy | प्रति, प्रतिलिपि |
| Copyright | सर्वाधिकार, स्वत्वाधिकार |
| Corrigendum | शुद्धिपत्र |
| Cumulative Book Index | समेकित ग्रन्थ अनुक्रमणिका |
| — List | — सूची |
| Current Awareness Service | सामयिक अभिज्ञता सेवा |
| — list | — सूची |
| Dedication | समर्पण |
| Description | वर्णन |
| — full standard | — पूर्णमानक वर्णन |
| — Medium | — मध्यम |
| — Short | — संक्षिप्त |
| Dissemination of Information | सूचना प्रकीर्णन |
| Document | प्रलेख |
| Documentation | प्रलेखन |
| — list | — सूची |
| — Periodical | सामयिक |

| | |
|---|---|
| — Officer | प्रलेखन अधिकारी |
| — Service | — सेवा |
| — Work | — कार्य |
| Edition | संस्करण |
| Endpaper | पोस्तीन |
| Engraving | उत्कीर्णन |
| Entry | संलेख |
| Errata | शुद्धिपत्र |
| Explicits | ग्रन्थ का अन्त विवरण |
| Facet | पक्ष |
| Facsimile | प्रतिकृति |
| Fake | जाली |
| Farmat | आकार-प्रकार |
| Finishing | बंधोत्तर अलंकरण |
| Forwarding | जिल्दबन्दी का प्रारम्भिक कार्य |
| Frontispiece | मुखपृष्ठ चित्र |
| Gathering | मुड़ी गड्डी |
| Gothic | जर्मन काला टाइप |
| Headline | शीर्ष रेखा |
| Head title | शीर्ष आख्या |
| Holograph | ग्रन्थकार पाण्डुलिपि |
| Ideography | भावात्मक लेखन |
| Index | अनुक्रमणिका |
| Indexing | अनुक्रमणीयन |
| Illustration | चित्रण |
| Impression | छाप, संस्करण |
| Imprints | मुद्रण |
| Incipits | ग्रन्थ का आदि विवरण |
| Incunabula | आदिमुद्रित ग्रन्थ |
| Information | सूचना |
| — Centre | — केन्द्र |
| — Dissemination | — प्रकीर्णन |
| — Officer | — अधिकारी |
| — Retrieval | — सूचना पुनर्प्राप्ति |
| — Science | — सूचना विज्ञान |

| | |
|---|---|
| — Scientist | सूचना वैज्ञानिक |
| — Storage | — संग्रहण |
| — and Retrieval | — और पुनर्प्राप्ति |
| Library Catalogue | पुस्तकालय सूची |
| Lithography | शिला मुद्रण |
| Margin | हाशिया |
| Material | सामग्री, भौतिक |
| Microfilm | अणु चित्र |
| Non-conventional | अपरम्परागत |
| — Method | — विधि |
| Pagination | पृष्ठांकन |
| Palaeography | पुरालिपिशास्त्र |
| Paper | कागज |
| Papyrus | पेपिरस |
| Parchment | अजाचर्म |
| Phonetic | ध्वन्यात्मक |
| Pictography | चित्रलिपि |
| Profile | पार्श्वदृश्य |
| Recto | दक्षिण पृष्ठ |
| Reprint | पुनर्मुद्रण |
| Reprography | पुनर्प्रतिलिपिकरण |
| Reprographic Service | — |
| Research | अनुसन्धान |
| Retrospective Awareness Service | मतानदर्शी सेवा |
| Script | लिपि |
| Select Bibliography | चयनात्मक वाङ्मयसूची |
| Selective Dissemination of Information (SDI) | चयनित सूचना प्रकीर्णन (एस डी आई) |
| Signature | फर्मा नम्बर |
| Subject Bibliography | विषय वाङ्मयसूची |
| System | पद्धति |
| Title | आख्या (ग्रन्थ नाम) |
| Title page | आख्या पृष्ठ |
| Typography | टाइप सम्बन्धी विधा |

| | |
|---|---|
| Translation | अनुवाद |
| — Service | — सेवा |
| Trend Report | प्रवृत्ति रिपोर्ट |
| Undated | तिथि विहीन |
| Universal Bibliography | सार्वभौम वाङ्मयसूची |
| User | उपयोगकर्त्ता |
| Variant | पाठभेद |
| — edition | पाठभेदीय प्रति |
| Variorum | सर्वभाष्य संस्करण |
| Verso | वामपृष्ठ |
| Wood cut | ठप्पा (लकड़ी का) |
| World Bibliography | सार्वभौम वाङ्मयसूची |
| Writing | लेखन |
| — Ideography | — भावात्मक |
| — Pictographic | — चित्रात्मक |
| — Phonetic | — ध्वन्यात्मक |
| — Material | लेखन सामग्री |

□ □

# अनुक्रमणिका

□ □

# संक्षिप्त पद सूची

ASLIB एसोसिएशन आफ स्पेशल लाइब्रेरी ऐण्ड इन्फार्मेशन ब्यूरो
CAS करेन्ट अवेयरनेस सर्विस
DESIDOC डिफेन्स साइन्स इन्फार्मेशन ऐण्ड डाकुमेन्टेशन
DRTC डाकुमेन्टेशन रिसर्च ऐण्ड ट्रेनिंग सेन्टर
FCI फीचर कार्ड इन्डेक्सिंग
FID इन्टरनेशनल फेडरेशन फार डाकुमेन्टेशन
IASLIC इण्डियन एसोसिएशन आफ स्पेशल लाइब्रेरीज ऐण्ड इन्फार्मेशन सेन्टर
ICSSR इण्डियन कौउन्सिल आफ स्पेशल साइंस रिसर्च
ICSU इन्टरनेशनल काउन्सिल आफ साइंटिफिक यूनियन्स
IFLA इन्टरनेशनल फेडरेशन आफ लाइब्रेरी एसोसिएशन
INIS इन्टरनेशनल न्यूक्लियर इन्फार्मेशन सर्विस
INSDOC इण्डियन नेशनल साइंटिफिक डाकुमेन्टेशन सेन्टर
IRANDOC इरानियन डाकुमेन्टेशन सेन्टर
IRIS इन्टरनेशनल इन्फार्मेशन सिस्टम फार ऐग्रिकल्चरल साइंसेज ऐण्ड टेक्नालाजी
ISI इण्डियन स्टैण्डर्ड इन्स्टीट्यूट
KEYTALPHA कीटर्म अल्फाबेटिकल इन्डेक्स सिस्टम
KWAC कीवर्ड आगमेन्टेड इन कन्टेक्स सिस्टम
KWIC कीवर्ड इन कन्टेक्स्ट
KWOC कीवर्ड आउट आफ कन्टेक्स्ट सिस्टम
KWWC कीवर्ड विद कन्टेक्स्ट सिस्टम
MARC मशीन रीडेबुल कैटलाग
MEDALAR मेडिकल लिटरेचर एनालिसिस ऐण्ड रिट्रिवल सिस्टम
NISSAT नेशनल इन्फार्मेशन सिस्टम इन साइंस ऐण्ड टेक्नोलाजी
PANSDOC पाकिस्तान नेशनल साइंटिफिक ऐण्ड टेक्निकल डाकुमेन्टेशन सेन्टर
POPSI पास्चुलेट बेस्ड परमूटेड सब्जेक्ट इन्डेक्सिंग
PRECIS प्रिसर्वड कन्टेक्स्ट इन्डेक्सिंग सिस्टम
SDI सेलेक्टिव डिस्समिनेशन आफ इन्फार्मेशन
SENDOC स्माल इन्टरप्राईजेज नेशनल डाकुमेन्टेशन सेन्टर
SLA स्पेशल लाइब्रेरी एसोसिएशन
THAIDOC थाई डाकुमेन्टेशन सेन्टर
UNESCO यूनाइटेड नेशन्स एजुकेशनल साइंटिफिक कल्चरल आर्गनाइजेशन्स
VINITI आल यूनियन इन्स्टीट्यूट आफ साइंटिफिक ऐण्ड टेकनिक्स इन्स्टीट्यूट
WADEX वर्ड ऐण्ड आर्थर इन्डेक्स सिस्टम ।

□ □

साहित्य भवन प्रा० लिमिटेड, इलाहाबाद

द्वारा प्रकाशित

## पुस्तकालय विज्ञान साहित्य

- पुस्तकालय विज्ञान परिचय — द्वारका प्रसाद शास्त्री
- पुस्तकालय विज्ञान — द्वारका प्रसाद शास्त्री
- पुस्तकालय वर्गीकरण सिद्धान्त और प्रयोग — द्वारका प्रसाद शास्त्री
- पुस्तक चयन और संदर्भ सेवा — द्वारका प्रसाद शास्त्री
- सार्वभौम हिन्दी लेखक सारणी — द्वारका प्रसाद शास्त्री
- सूचीकरण : प्रायोगिक — द्वारका प्रसाद शास्त्री
- वर्गीकरण : प्रायोगिक — द्वारका प्रसाद शास्त्री
- पुस्तक चयन एवं रचना — चन्द्रकान्त शर्मा
- पुस्तक चयन और पुस्तकालय विज्ञान की अन्य दिशाएँ — डॉ० रामेश्वरनारायण 'रमेश'